vafre izfrosnu

fo"k;

ÞNÙkhlx<+ ds yksd ukV~; % nqxZ ftyk ds fo'ks"k lanHkZ esaß

;w-th-lh- y?kq 'kks/k&ifj;kstuk

lanHkZ Øekad **F.No. MH-13/202002/XII/15-16/CRO-GEN/4081**

fo'ofo|ky; vuqnku vk;ksx] e/; {ks=h; dk;kZy;] Hkksiky

dks

izsf"kr

Mk- ¼Jherh½ izfrek feJk
eq[; vuqla/kkudrkZ
lgk;d izk/;kid ¼fgUnh½
fHkykbZ efgyk egkfo|ky;] fHkykbZ
fHkykbZ] nqxZ ¼N-x-½

Hkfedk

छत्तीसगढ के नैसर्गिक वैभव की भाँति इसकी संस्कृति एवं लोक साहित्य भी अत्यंत समृद्ध व हृदयग्राही है। लोकगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य एवं लोकनाट्य इत्यादि विधा में स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सबसे अधिक लोकप्रियता छत्तीसगढ़ के पंडवानी एवं लोकनाट्य नाचा को ही मिली है।

"छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य दुर्ग जिला के विशेष संदर्भ में" लघु परियोजना के अंतर्गत प्रथम अध्याय में छत्तीसगढ़ का परिचय दिया गया है जिसमें उसकी भौगोलिक, सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश एवं छत्तीसगढ़ का नामकरण इत्यादि छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर का एवं दुर्ग जिला का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। लोक नाट्य नाचा, गम्मत के संरक्षण संवर्धन में दुर्ग जिला का योगदान अक्षुण्ण है।

अध्याय दो के अंतर्गत छत्तीसगढ़ के प्रमुख लोकनाट्य भतरा नाट, रहस्य एवं नाचा का वर्णन किया गया है। नाचा गम्मत जो दुर्ग जिला में अत्यधिक समृद्ध एवं लोकप्रिय है इसलिये नाचा–गम्मत का इतिहास क्रमिक विकास के चरण व उस काल में उसकी स्थिति, उसके पात्र मंचीय प्रवृत्तियाँ उसके संचालन की विधियों का सविस्तार विवेचन है।

तृतीय अध्याय में दुर्ग जिला के विशेष, शिखर पुरूष जिनके अथक परिरम एवं समर्पण से लोकनाटय का संरक्षण संवर्धन एवं उसके विकास के स्वप्न साकार रूप ले सके एवं उसकी संतरंगी छटा न केवल छत्तीसगढ़ न केवल देश अपितु विश्व स्तर पर बिखरी, के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रस्तुत किया गया है। नाट्य निर्देशक, लेखक, की रामहृदय तिवारी के अवदान को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है क्योंकि परियोजना आरंभ अवधि से लगातार में उनके संपर्क में रही उन्होंने विषय संदर्भित समस्त बिन्दुओं की सूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की। नाट्य निर्देशक के रूप में उनके बातचीत के दौरान उनके समर्पित कृतित्व के दिग्दर्शन हुए। स्व.दाऊ मंदरा जी एवं स्व. रामचंद्र देशमुख तथा महासिंग चन्द्राकर ने जो

लोकनाट्य नाचा, गम्मत के जनक परिष्कृतकर्त्ता उसे एक उत्कृष्ट मंच प्रदान किया। उनके व्यक्तित्व कृतित्व की जानकारी दी गई है।

चतुर्थ अध्याय में लोकनाट्य के बदलते परिवेश दशा एवं दशा के संबंध में चर्चा की गई है।

पंचम अध्याय में साक्षात्कार के अंतर्गत श्री रामहृदय तिवारी, वरिष्ठ नाट्य निर्देशक, लेखक, डॉ. शैलजा चंद्राकर एवं श्रीमती रजनी रजक से मैंने साक्षात्कार किए एवं उनके अनुभवों एवं विषयांर्गत अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जिसे प्रस्तुत किया गया है।

बालोद जिला के ग्राम अर्जुन्दा के लोकरंग के संस्थापक, लेखक पात्र श्री दीपक चंद्राकर से वहाँ के विशेष आयोजित कार्यशाला में बातचीत हुई। संस्मरण के रूप में वहाँ की अविस्मरणीय यादों को प्रस्तुत किया गया है तथा लोकनाट्य से संबंधित समय–समय पर लिए गये। जो फोटोग्राफ विषय को जीवंत बनाने हेतु प्रस्तुत किया गया है। अध्याय 6 विषयांतर्गत उपसंहार प्रस्तुत किया है।

तत्पश्चात् संदर्भग्रंथ सूची दर्शायी गई है, इस प्रकार मैंने लघुशोध परियोजना माइनर रिसर्च। छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य : दुर्ग जिला के विशेष संदर्भ में "विषय के अंतर्गत विशेष रूप नाचा, गम्मत की संपूर्ण विवेचना पर आधारित पर विशेष रूप से अपने शोध कार्य को केन्द्रित किया है, जिसमें रामहृदय तिवारी जी को प्रमाण करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। लोकनाट्य को गरिमा प्रदान करने वाले महामना दाऊ मदराजी, महासिंह चंद्राकर, रामचंद्र देशमुख, मदन निषाद इत्यदि युग पुरूष दिवंगत हो चुके हैं। श्री तिवारी जी अपने 77 वर्ष की इस उम्र के पड़ाव में अपने घर के पुस्तकालय से लगाकर बड़ी विनम्रता एवं प्रसन्नतापूर्वक शोध सामग्री के रूप में अपने ज्ञान, अनुभव व निर्देशकीय प्रवीणता से मेरे इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया। पढ़कर तो हम बहुत कुछ जानते ही है, किन्तु लोकनाट्य के क्षेत्र में अनुभवी वरिष्ठ निर्देशक के साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप से उनकी भोगी हुई बातें निश्चित ही अत्यंत प्रभावकारी व प्रमाणित होती है। और इसका सौभाग्य मुझे मिला। डॉ. शैलजा चंद्राकर भी दीपक चंद्राकर जी, रजनी रजक,

शैलजा चन्द्राकर, महावीर अग्रवाल जी एवं अन्य रंगमंचीय संस्थाओं के प्रति में आभार व्यक्त करती हूँ। लोकरंग संस्था में मैंने प्रत्यक्ष रूप से उसकी विशिष्टता एवं कलात्मक बारीकियों को समझा। में अपने महाविद्यालय श्री पूर्व प्राचार्य डॉ. जेहरा हसन, वर्तमान प्राचार्या डॉ. संध्या मदन मोहन, सहकर्मी डॉ. भावना पांडे, डॉ. स्वर्णलता वर्मा, डॉ. कंचना शाही व विभागाध्यक्ष डॉ. निशा शुक्ला के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरा उत्साहवर्धन एवं सहयोग प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त मैं उस क्षेत्र व अन्यत्र को सभी रचनाकारों एवं लेखकों के प्रति कृतज्ञता स्थापित करती हूँ। जिनकी पुस्तकों को पढ़कर मैंने अपना यह कार्य पूर्ण किया। विशेष रूप से मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मध्य क्षेत्रीय कार्यालय भोपाल की आभारी हूँ। जहाँ से मुझे उस लघु परियोजना की स्वीकृति प्राप्त हुई।

NÙkhlx< d ykdukV; % nqx ftyk d fo'k"k lnHk e

vuØe

v/;k;&1	NÙkhlx< dk lkekU; ifjp; • भूमिका • समाजिक, भौगोलिक, सांस्कृति एंतिहासिक परिवेश • छत्तीसगढ का नामकरण • दुर्ग जिले का परिचय	1&69
v/;k;&2	NÙkhlx< d i.e[k ykdukV;& Hkrj ukV] jgl ,o ukpk&xEer नाचा का उद्‌भव, मंचीय विशेषताएँ, पात्र वातावरण एवं अन्य महत्वपूर्ण बिंदुबों का विवेचन	70&139
v/;k;&3	ukV; funs'kd jkeân; frokjh dk NÙkhlx< d ykdukV; e vonku • लोकनाट्य के जनक मंदराजी, महासिंह चंद्राकर एवं रामचंद्र देशमुख का संक्षिप्त परिचय एवं कृतित्व • लोकनाट्य से जुड़े अन्य विभिन्न कलाकारों का संक्षिप्त परिचय	140&188
v/;k;&4	ykd ukV; ukpk dk cnyrk Lo:i % n'kk ,o fn'kk	189&203
v/;k;&5	ykdukV; l tM egRoi.k O;fDr;k l lk{kkRdkj • श्री रामहृदय, तिवारी, डॉ. शैलजा चंद्राकर, रजनी रजक, दीपक चन्द्राकर अर्जुन्दा का लोकरंग एवं एक संस्मरण • लोक नाट्य से संदर्भित फोटोग्राफ	204&239
	lnfHkr xzFk lph	240&242

v/;k;&1
NÙkhlx< dk lkekU; ifjp;

1-1 Lkkekftd] Hkkxksfyd] lkaLd`fr ,sfrgkfld ifjos'k

1-2 NÙkhlx< dk ukedj.k

1-3 nqxZ ftys dk ifjp;

v/;k;&1
NÙkhlx< dk lkekU; ifjp;

छत्तीसगढ़ केवल धान का कटोरा ही नहीं, अपितु यह छोटा भू–भाग दुनिया के उन गिने–चुने हिस्सों में एक है जिसे प्रकृति ने अथाह खनिज भण्डार और अकूत नैसर्गिक संपदा दी है। कृषि प्रधान व आदिवासी बहुत इस क्षेत्र में लौह अयसक, कोयला, बॉक्साइट, चूना–पत्थर एवं सीसा जैसे दुर्लभ अयस्क का देश का एकमात्र भण्डार अपने आप में एक मिसाल है। भारतीय इस्पात प्राधिकरण का भिलाई संयंत्र, एन.टी.पी.सी. के कोरबा व सीपत में ताप विद्युत संयंत्र, भारत एल्युमिनियम कॉर्पोरेशन कोरबा एवं विविध क्षेत्रों में निजी क्षेत्र के अनेक महत्वपूर्ण उपक्रमों ने विश्व के औद्योगिक मानचित्र पर प्रदेश का नाम अंकित किया है। वस्तुतः छत्तीसगढ़ अब पिछड़ा प्रदेश नहीं वरन् विकास के मार्ग पर द्रुतगामी एक विकासशील राज्य है, जो आने वाले दशकों में देश का सर्वाधिक विकसित एवं सम्पन्न राज्य होगा।

'धान का कटोरा' कहा जाने वाला छत्तीसगढ़ अंचल मध्यप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के द्वारा भारत के हृदय प्रदेश 'मध्यप्रदेश' से पृथक होकर 01 नवम्बर 2000 को भारतीय संघ का 26वॉ राज्य बन गया। नवनिर्मित राज्य का मानचित्र ध्यान से देखने पर समुद्री घोड़े (Hippocampus or Sea horse) के समान दिखाई पड़ता है। राज्य की राजधानी रायपुर है। आरंभ से ही छत्तीसगढ़ की अपनी अलग संस्कृति रही है। यद्यपिइ स भू–भाग में ऐतिहासिक काल में अनेक उथल–पुथल हुए किन्तु आज भी इसकी भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टता जीवन्त रूप में विद्यमान है, और यही इसके पृथक राज्य बनने का आधार है। प्राचीन समय में यह प्रांत 'दक्षिण कोसल' के नाम से जाना जाता था। स्वतंत्रता के पश्चात् देश की विभिन्न रियासतों के साथ प्रांत की कुल 14 रियासतों को 01 जनवरी 1948 को भारतीय संघ में विलय हुआ। ये रियासतें थी – बस्तर, कांकेर, राजनांदगांव, खैरागढ़, छुईखदान, कवर्धा, सक्ती, सारंगढ़, रायगढ़, जशपुर, उदयपुर (धरमजयगढ़), सरगुजा (अंबिकापुर), कोरिया (बैकुण्ठपुर) तथा चांगभखार

(भरतपुर–जनकपुर) आदि। मुगल, मराठा काल में यह क्षेत्र छत्तीसगढ़ इसलिए कहा जाने लगा क्योंकि इस क्षेत्र में कल्चुरि वंश की रतनपुर शाखा के विभिन्न राजाओं व जमींदारों के 36 किले थे। छत्तीसगढ़ 1961 में मध्यप्रांत अर्थात मध्यप्रदेश का पूर्वाचल बना और ठीक 44 वर्षो के साथ के पश्चात् पृथक राज्य बना।

इस राज्य की भौगोलिक सीमाएँ 17^0 से $23^07'$ उत्तरी अक्षांश तक तथा $80^040'$ से $83^038'$ पूर्वी देशांतर के मध्य विस्तृत है। इस प्रदेश के उत्तर एवं दक्षिणतम बिन्दुओं के बीच की दूरी 360 कि.मी. एवं पूर्व से पश्चिमत् बिन्दुओं के बीच की दूरी लगभग 140 कि.मी. है। इसका कुल क्षेत्रफल 1,35,194 वर्ग किलोमीटर है जो मध्य प्रदेश राज्य का 30.48% एवं भारत का 4.10% है। छत्तीसगढ़ राज्य मध्यप्रदेश के दक्षिण–पूर्व में स्थित है, यही कारण है कि यह मध्यप्रदेश का पूर्वाचल कहा जाता था। प्रदेश की सीमा भारत के 6 राज्यों की सीमाओं से घिरी हुई है। उत्तर में उत्तरप्रदेश व मध्यप्रदेश के सीधी जिले, उत्तर पूर्व में झारखण्ड, मध्य एवं दक्षिण पूर्व में उड़ीसा, दक्षिण में आंध्रप्रदेश, दक्षिण पश्चिम में महाराष्ट्र, मध्य–पश्चिम में मध्यप्रदेश के मंडला व बालाघाट जिले तथा पश्चिमोत्तर में मध्यप्रदेश के शहडोल व डिंडोरी जिलों द्वारा इसकी सीमाएँ निर्धारित होती है। यह प्रदेश अपने निकटतम समुद्र बंगाल की खाड़ी से लगभग 400 कि.मी. दूर स्थित है जिसकी समुद्र औसतन ऊँचाई लगभग 500 मीटर है। इस प्रकार यह प्रदेश हरियाणा व मध्यप्रदेश के समान पूर्णतः भू–आवेष्ठित होने के साथ न तो इसकी सीमाएँ समुद्र को, और न ही अंतर्राष्ट्रीय सीमा को स्पर्श करती है।

प्रदेश खनिज संपत्ति की दृष्टि से विशेष धनी है। यहाँ लगभग 25 प्रकार के खनिज गोंडवाना और धरवाड़ शैली समूहों में मिलते हैं। स्वातंत्रयोत्तर काल में यहाँ नियोजित उत्खनन आरंभ हुआ। यहाँ औद्योगिक विकास का आधार कोयला है, जिससे उद्योगों को ऊर्जा मिलती है। अन्य प्रमुख खनिज लोहा, बॉक्साइट, टिन, हीरा, डोलोमाइट, चूना आदि उल्लेखनीय है। नियोजित काल में क्षेत्र में कोयला पानी की प्रचुरता के कारण ताप विद्युत गृह स्थापित किये गये। कोरबा इसका केन्द्र है। आज प्रदेश के पास लगभग 1500–1600 मेगावाट विद्युत उपलब्धता के साथ 300–350 मेगावाट अतिशेष विद्युत है।

यहाँ संसाधनों की तुलना में विकास अत्यंत धीमा एवं कम हुआ, किन्तु पिछले 20 वर्षो में वन और खनिज पर आधारित उद्योग प्रधानता से स्थापित हो रहे हैं जिनमें लोहा, इस्पात एवं सीमेंट, लकड़ी उद्योग उल्लेखनीय है। इन वर्षो में निजी क्षेत्र प्रदेश में सक्रिय हुआ है। केन्द्रीय उपक्रमों में एन.एम.डी.सी. बैलाडीला, सेल भिलाई, एन.टी.पी.सी. एवं बाल्को कोरबा तथा कोल इंडिया बिलासपुर प्रमुख है। बिलासपुर के समीप में एन.टी.पी.सी. का प्रदेश में दूसरा प्लांट बन रहा है।

bfrgkl

प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ 'दक्षिण कोसल कहलाता था। संभवतः इस क्षेत्र में उत्तम गुणवत्ता के कोसा की प्रचुरता के कारण इसे कोसल संज्ञा प्राप्त हुई। कोसा आज भी छत्तीसगढ़ की पहचान है। इतिहासकार प्यारेलाल गुप्त के अनुसार मर्यादा पुरूषोत्तम राम की माता कौशिल्या, कोसलाधीश की पुत्री थी, और बिलासपुर का 'कोसला' ग्राम यहां की राजधानी था अर्थात् छत्तीसगढ़ की दक्षिण कोसल अभिधा कम से कम उतनी ही प्राचीन है, जितनी रामकथा। इस प्रकार रामायण काल से ही प्रदेश की एक पृथक भौगोलिक, सांस्कृति पहचान थी। तब से लगभग 17वीं शताब्दी तक इसे दक्षिण कसेल कहा जाता रहा। ऐतिहासिक काल में यह क्षेत्र सर्वप्रथम मौर्य, फिर सातवाहन, गुप्त, वाकावट साम्राज्यों का अंग रहा। इसके बाद यहां नलवंश की (दक्षिणी हिस्से में) और अंततः सोमवंशियों की स्वतंत्र सत्ता कायम हुई। सिरपुर के सोमवंशियों के पतन के बाद कल्चुरी यहां के अधिपति बने। 16वीं शताब्दी तक कलचुरियों की सत्ता क्षीण होने पर मंडला के गोंड़वाना राज्य का कुछ समय तक यहां हिस्से में (रतनपुर को छोड़कर शेष भाग में) आधिपत्य रहा। अंततः नागपुर के भोंसला राज्य ने छत्तीसगढ़ को 1741 ई. में मराठा राज्य का अंग बना लिया। इस अवधि तक हमें इस क्षेत्र का नाम दक्षिण कोसल अथवा रतनपुर राज्य (मुगलकाल में, अबुल फजल ने रतनपुर राज्य संबोधित किया है) मिलता है। दक्षिण कोसल को संभवतः मराठा काल में ही गढ़ों की संख्या अथवा अधिकता के आधार पर बंदोबस्त के दृष्टिकोण से (प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से) छत्तीसगढ़ कहा जाने लगा। इस प्रकार छत्तीसगढ़ अभिधा अधिकतम तीन सौ वर्षो से अधिक प्राचीन नहीं है।

or:eku e: NÙkh I x< dh fLFkfr

छत्तीसगढ राज्य में पॉच संभाग रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, बस्तर एवं सरगुजा है तथा 27 जिले हैं जो इस प्रकार है– कबीरधाम, कांकेर, कोरबा, कोरिया, जशपुर, जांजगीर, दंतेवाड़ा, दुर्ग रायपुर, बिलासपुर, ध्मतरी, महासमुंद, रायगढ़, राजनांदगांव, सरगुजा, बेमेतरा, सुकमा, बीजापुर, कोंडागांव, मुंगेली, बलौदाबाजार, बलरामपुर, नारायणपुर, बस्तर, रायगढ़, गरियाबंद, सूरजपुर।

tula[;k – 2011 की जनगणना के अनुसार छत्तीसगढ की जनसंख्या 2 करोड़ 55 लाख 45 हजार 991 है। लिंग अनुपात 1000/951 है। पुरूषों की संख्सा 1,04,32,426 तथा स्त्रियों की संख्या 1,03,43,530 है। जनसंख्या का घनत्व 134 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

साहित्य में 'छत्तीसगढ़' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 15वीं सदी में खैरागढ़ राज्य के राजा लक्ष्मीनिधि राय के चारण कवि दलराम राव द्वारा 1497 ई. में किया जाना प्राप्त होता है, किन्तु इतिहास में छत्तीसगढ़ की स्वतंत्र राजनैतिक–सांस्कृतिक सत्ता की कल्पना कवि गोपाल मिश्र द्वारा सर्वप्रथम की गई प्रतीत होती है। ये राजा राजसिंह (1689–1712 ई.) के राजाश्रय में थे। इन्होंने अपनी कृति 'खूब तमाशा' में रतनपुर राज्य के लिये सर्वप्रथम छत्तीसगढ़ शब्द का प्रयोग किया था। इसके बाद 'तवारीख–ए–हैहयवंशीय' राजाओं की' एवं रतनपुर का इतिहास लिखने वाले बाबू रेवाराम ने 1896 ई. में 'विक्रमविलास' नामक अपने ग्रंथ में इस राज्य को छत्तीसगढ़ संज्ञा दी है।

वस्तुतः मराठों के आगमन के पश्चात् छत्तीसगढ़ एक पृथक राजनीतिक इकाई के रूप में देखा जाने लगा था। मराठों ने पहले इस अपना एक सूबा बनाया। राजकुमार बिंबाजी (1758–87 ई.) के बाद 1818 ई. तक मराठा सूबेदार ही यहाँ के शासक थे। बिंबाजी के समय बस्तर में महान हल्बा क्रांति 1773–79 ई. हुई, जिससे निपटने राजा के मराठा सैन्य सहायता हेतु विवश होना पड़ा, जिसने राजा दरियादेव (1777–1800 ई.) को मराठों का राजनिष्ठ बना दिया। सैनय सहयोग के प्रभाव में हुई 06 अप्रैल, 1878 ई. की संधि, जिसमें 59,000 रूपये की वार्षिक

'टकोली' सम्मिलित थी, ने बस्तर राज्य को मराठों की अधीनता में ला दिया। अब नागपुर राज्य की दृष्टि में बस्तर भी छत्तीसगढ़ सूबे का अंग था, और यहाँ से अन्य जमींदारियों की भांति उन्हें निश्चित 'टकोली' प्राप्त होती थी। इस तरह संपूर्ण दंडकारण्य अर्थात् स्वतंत्र बस्तर राज्य छत्तीसगढ़ का अंग बन गया। कालांतर में बस्तर के राजाओं ने मराठा सत्ता की अवमानना के प्रयास किये, जिससे भोंसलों को 'टकोली' हेतु युद्ध भी करना पड़ा। 1818 से 1854 ई. तक छत्तीसगढ़ में नागपुर से भेजे गये जिलेदार सत्तासीन रहे, एवं 1818 से 1830 ई. के मध्य ब्रिटिश नियंत्रण के साथ वे 1854 ई. तक यहाँ राज्य करते रहे। 1854–55 में छत्तीसगढ़ ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया। जब 1861 ई. में मध्यप्रांत का गठन हुआ तब छत्तीसगढ़ इसके पांच संभागों में से एक था। 1905 में इसके एक जिले संबलपुर (उड़िया भाषा क्षेत्र) को तत्कालीन बंगाल प्रांत के उड़ीसा में तथा सांस्कृतिक समानता के कारण बंगाल के छोटा नागपुर (बिहार) के अंतर्गन आने वाली पांच रियासतों जशपुर, सरगुजा, उदयपुर, चांगभखार व कोरिया को मध्यप्रांत संभाग में मिला दिया गया। इस तरह वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य का मानचित्र 1905 में बन गया था। इस समय संपूर्ण क्षेत्र में कुल 14 रियासतें थीं।

सर्वप्रथम छत्तीसगढ़ राज्य की स्पष्ट कल्पना करने वाले व्यक्ति थे – विद्वान, साहित्यकार, हरिजन सेवक, स्वतंत्रता सेनानी पंडित सुंदरलाल शर्मा, जिन्होंने 1918 में अपनी पांडुलिपि में छत्तीसगढ़ राज्य का स्पष्ट रेखाचित्र खींचते हुए इसे इस प्रकार परिभाषित किया था – जो भू–भाग उत्तर में विंध्यश्रेणी व नर्मदा से दक्षिण की ओर इंद्रावती व ब्राह्मणी तक है, जिसके पश्चिम में वेनगंगा बहती है और जहाँ पर गढ़ नामवाची ग्राम संज्ञा है; जहाँ पर सिंगबाजा का प्रचार है, जहाँ स्त्रियों का पहनावा (वस्त्रप्रणाली) प्रायः एक वस्त्र है तथा जहाँ धान की खेती होती है, वही भू–क्षेत्र छत्तीसगढ़ है। इस प्रकार पंडित शर्मा ने छत्तीसगढ़ की विशिष्ट एवं सर्वथा भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक सत्ता को परिभाषित करते हुये इसके पृथक राजनैतिक सत्ता की वकालत अप्रत्यक्ष रूप में आज से आठ दशक पूर्व ही कर दी थी। उनकी यह पांडुलिपि एक राजनैतिक दस्तावेज है, तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विचारकों के विवेचनार्थ एक समर्थ सामग्री है। इन्हें गांधी जी ने अपना

गुरू (अछूताद्धार के क्षेत्र में) स्वीकार किया था, अतः पंड़ित शर्मा के 'कंडेल सत्याग्रह' की सफलता ने छत्तीसगढ़ को राष्ट्र के राजनैतिक नक्शे में अंकित किया। छत्तीसगढ़ की राजनैतिक जागृति से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी जी सहित चोटी के अनेक राजनैतिक यात्राएँ की। इन घटनाओं से देश में छत्तीसगढ़ की पृथक एवं स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता स्थापित हुई एवं अब पृथक राज्य का दावा स्थापित हो चुका था।

NÙkhl x<+ gcZy LVsV

गत् 04 जुलाई, 2001 को मुख्यमंत्री द्वारा छत्तीसगढ़ को हर्बल स्टेट के रूप में विकसित करने की घोषणा की गई। प्रदेश के वनों से प्राप्त जड़ी–बेटियों से उपचार के लिये प्रदेश के दस स्थानों पर वन औषधालय खोलने का निर्णय भी लिया गया है, साथ ही वन औषधियों की खेती को प्रोत्साहन करने की नीति का अवलंबन करने की भी घोषणा की गई। वनौषधि से कृषकों को अतिरिक्त आय की पर्याप्त संभावना है। वनौषधि के साथ वनोपज पर आधारित वस्तुओं का उत्पादन संबंधित क्षेत्रों में ही किये जाने की नीति पर जोर दिया जा रहा है, ताकि वनोपज संग्रहणकर्त्ता समुदाय तथा वनोपज देने वाले क्षेत्र के लोगों को उनके क्षेत्रों से प्राप्त नैसर्गिक संपदा का पूर्णलाभ प्राप्त हो सके। उल्लेखनीय है कि प्रदेश में लगभग 1200 प्रजातियाँ ऐसी है, जिनमें औषधीय गुण मौजूद है।

gcZy ou e.Myksa dk xBu

प्रदेश जैवविविधता से परिपूर्ण क्षेत्र है। वनस्पति देश की महत्वपूर्ण जैव संपदा है, जो न केवल पारिस्थितिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, अपितु इनके औषधीय गुण चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं। चयनित सात वनमण्डल– जशपुर, बिलासपुर, उत्तर बिलासपुर, दक्षिण रायपुर, धमतरी, नारायणपुर एवं जगदलपुर आदि है।

fHkykbZ bLikr la;a=

दुर्ग जिले में स्थित भिलाई इस्पात संयंत्र न केवल छत्तीसगढ़ वरन् संपूर्ण भारत का औद्योगिक तीर्थ है। भिलाई इस्पात संयंत्र के विश्व के औद्योगिक नक्शे में

भी महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। भारतीय इस्पात प्राधिकरण की इसक इकाई का निर्माण पूर्व सोवियत संघ के वित्तीय व तकनीकी सहयोग से हुआ। संयंत्र की स्थापना हेतु अनुबंध पर हस्ताक्षर 02 फरवरी, 1955 को दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत किये गये। संयंत्र स्थल हेतु भिलाई का चयन 14 मार्च, 1955 को किया गया। प्रारंभिक चरण में संयंत्र की वार्षिक उत्पादन की क्षमता 10 लाख टन इनगाट इस्पात या 7.50 लाख टन तैयार इस्पात निश्चित की गई।

i.e[k ufn;k¡ % mn~xe rFkk izokg

egkunh

जिस प्रकार नर्मदा नदी को मध्यप्रदेश की जीवन रेखा कहा जाता है उसी प्रकार महानदी को छत्तीसगढ़ की की जीवन रेखा कहा जा सकता है। महानदी को 'चित्रोत्पला' अथवा 'कनकनंदिनी' भी कहते हैं। यह नदी धमतरी के पास सिहावा पर्वत से निकलकर राजिम होती हुई बलौदाबाजार की उत्तरी सीमा तक जाती है इसके पश्चात् पर्वू की ओर मुड़कर यह रायपुर जिले को जांजगीर–चांपा जिले से अलग करती है। यह नदी अंत में कटक (उड़ीसा) के पास एक बड़ा डेल्टा बनाकर बंगाल की खड़ी में मिल जाती है। उड़ीसा में इस नदी पर प्रसिद्ध हीराकुण्ड बांध बनाया गया है। संपूर्ण छत्तीसगढ़ का मैदान इसके जलग्रहण क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

प्रमुख नगर & इसके तट पर बसे प्रमुख नगरों में शिवरीनारायण, राजिम, दुर्ग है।

bUnzkorh

यह नदी कालाहांडी (उड़ीसा) जिले के धरमगढ़ तहसील में स्थिल 4 हजार फीट ऊँची मुंगेर पहाड़ी से निकली है। यह पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हुई जगदलपुर जिलसे से 40 कि.मी. दूरी पर चित्रकोट जलप्रपात बनाती है। महाराष्ट्र से छत्तीसगढ़ की सीमा बनाती हुई दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती है। और अंत में छत्तीसगढ़–महाराष्ट्र–आंध्रप्रदेश के सीमा संगम पर भोपालपट्टनम से दक्षिण की ओर कुछ दूरी पर राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 202 पर स्थित भद्रकली के समीप गोदावरी में मिल जाती है। इसकी प्रदेश में लंबाई 264 कि.मी. है। इसकी प्रमुख

सहायक नदियों में कोटरी, निबरा, बोरडिग, नारंगी, उत्तर की ओर से तथा नंदीराज, चिंतावागु इसके दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व दिशाओं में मिलती है। दक्षिण–पश्चिम की ओर से डंकनी एवं शंखनी इस नदी में मिलती है। इस नदी पर बोधघाटी परियोजना प्रस्तावित है।

प्रमुख नगर & जगदलपुर, बारसूर प्रमुख है।

f'koukFk

यह नदी महानदी की बड़ी सहायक नदी है। इस नदी का उद्‌गम अंबागढ़ चौकी तहसील के 625 मीटर ऊँची पानाबरस पहाड़ी क्षेत्र से हुआ है। यह नदी राजनांदगांव, दुर्ग, बिलासपुर तथा जांजगीर–चांपा जिलों में होतु हुए जांजगीर जिले के सोन लोहरसी के पास (रायपुर से लगी सीमा पर) महानदी में जाकर मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हाफ, आगर, मनियारी, अरपा, खारून, लीलागर, तांदुला, खरखरा, अमनेर, खोरसी, जमुनिया आदि प्रमुख है। इसकी प्रदेश में लंबाई 290 कि.मी. है।

प्रमुख नगर :– अंबागढ़ चौकी, राजनांदगांव, दुर्ग, धमधा, नांदघाट है।

glnk

यह महानदी की दूसरी बड़ी सहायक नदी है। यह नदी कोरिया जिले के सोनहट तहसील में स्थित देवगढ़ की पहाड़ियों (सोनहट के समीप) से निकलकर कोरिया, कोरबा, जांजगीर–चांपा जिलों में होते हुए महानदी से शिवरीनारायण में मिलकर पवित्र संगम बनाती है। इस नदी पर कोरबा जिले में हसदेव–बांगों परियोजना निर्मित है। कोरबा तामप विद्युत गृह में आपूर्ति के लिए दर्री के समीप बैराज बना हुआ है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ गज, अहिरन, चोरनाई, तान आदि है। इस नदी की लंबाई प्रदेश में 176 कि.मी. है।

fjgn

इसका उद्‌गम मातिरिंगा पहाड़ी (अंबिकापुर तहसील, पूर्वी सरगुजा) से हुआ है। यह सरगुजा जिले में दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होते हुए उत्तर प्रदेश के

सोनभद्र जिले के चोपन के समीप सोन में मिल जाती है। प्रदेश में इसकी लंबाई 145 कि.मी. है। प्रदेश की सीमा पर रिहंद बांध जिसका आधा हिस्सा उत्तर प्रदेश में (गोविंद वल्लभ पंत सागर) पड़ता है। प्रमुख सहायक नदियाँ, गोवरी, मोरन, माहन आदि है। इसके प्रवाह क्षेत्र में पूर्वी सरगुजा जिले हैं।

dUgkj

इस नदी का उद्‌गम बगीचा तहसील की बखोना चोटी से हुआ है। यह जशपुर जिले की उत्तरी सीमा से निकलकर सरगुजा जिले में दक्षिण–पूर्व से पूर्वोत्तर की ओर बहते हुये छत्तीसगढ़–झारखण्ड सीमा बनाते हुये उत्तरप्रदेश के सोनभद्र जिले में प्रवेश कर चोपन रेलवे स्टेशन से कुछ दूरी पर कोटा नामक स्थान के समीप सोन में मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ सिंदुर, गलफुला एवं पेंगन है। इसकी प्रदेश में कुल लंबाई लगभग 115 कि.मी. है।

ekM

यह नदी अंबिकापुर जिले के मैनपाट से निकली है। यह सरगुजा, जशपुर, जांजगीर–चांपा जिलों में उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होते हुए जांजगीर जिले की सीमा पर चंद्रपुर के समीप महानदी में मिल जाती है। इसकी प्रदेश में कुल लंबाई 155 कि.मी. है।

vjik

इस नदी का उद्‌गम बिलासपुर जिले के पेंड्रा–लोरमी के पठार में स्थित खोडरी पहाड़ी (पेंड्रा तहसील में) से हुआ है। इसका प्रवाह बिलासपुर जिले में उत्तर–पश्चिम से दक्षिण की ओर होते हुए बलौदाबाजार के उत्तर में कुछ दूरी पर बरतोरी के समीप ठाकुरदेवा नामक स्थान पर शिवनाथ नदी में मिल जाती है। प्रदेश में इसकी लंबाई 100 कि.मी. है। इसकी सहायक नदी खारून पर रतनपुर के पास खूंटाघाट नाम जलाशय का निर्माण किया गया है।

lcjh@dkykc

इस नदी का उद्‌गम उड़ीसा के कोरापुट जिले से हुआ है। यह गोदावरी की दूसरी बड़ी सहायक नदी है। यह दंतेवाड़ा जिले में पश्चिम से पूर्व फिर उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होते हुए आंध्रप्रदेश के खम्मम जिले में भ्रदाचलम के पश्चिम में लगभग 50 कि.मी. की दूरी पर गोदावरी से मिल जाती है। प्रदेश में कुल लंबाई 173 कि.मी. है। इस नदी में स्टीमर तथा नाव द्वारा परिवहन होता है।

gkni

यह शिवनाथ नदी की सहायक नदी है। इसका उद्‌गम कवर्धा जिले के कांदावाड़ी पहाड़ी से हुआ है। इसका प्रवाह कवर्धा एवं दुर्ग जिलों में दक्षिण से उत्तर की ओर होता है। प्रदेश में कुल लंबाई 88 कि.मी. है। यह सिमगा से लगभग 7 कि.मी. ऊपर दुर्ग जिले में जिले की सीमा पर शिवनाथ नदी में मिल जाती है।

ijh

यह महानदी की सहायक नदी है। इसका उद्‌गम रायपुर जिले की बिंद्रानवागढ़ के समीप लगभग 500 मीटर ऊँची भातृगढ़ पहाड़ी से हुआ है। यह नदी उत्तर–पश्चिम दिशा की ओर बहती हुई राजिम में महानदी से मिल जाती है।

bc

इस नदी का उद्‌गम जशपुर जिले के बगीचा तहसील के पाण्डरापाट में रानीझूला नामक स्थल से हुआ है। यह नदी उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर जशपुर जिले में बहती हुई महानदी में जाकर मिल जाती है। इसकी प्रदेश में कुल लंबाई 87 कि.मी. है। बगीचा से कुछ ही दूरी पर 'रानी झूला' एक ऊँची पहाड़ी पर 'ईब नदी' का उद्‌गम स्थल है। छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में बहने वाली लगभग 202 किलोमीटर लंबी ईब नदी 'महानदी की सहायक नदी है। ईब नदी अपनी रेत में पाये जाने वाले प्राकृतिक स्वर्ण कणों के लिए भी काफी प्रसिद्ध है। यहाँ सोनझरिया इस कार्य में लगे रहते हैं।

efu;kjh

यह नदी बिलासपुर जिले के उत्तर–पश्चिम में लोरमी पठार से निकली है। यह दक्षिण–पूर्व भाग में बिलासपुर तथा मुंगेली तहसील की सीमा बनाती हुई प्रवाहित होती है। मनियारी की सहायक नदियाँ आगर, छोटी नर्मदा तथा घोंघा है। इनके उद्‌गम मुखण्डा पहाड़ बेलपाल के कुण्ड से तथा लोरमी के पहाड़ी क्षेत्र है। छोटी नर्मदा का उद्‌गम बेलपान इस क्षेत्र का पवित्र स्थल माना जाता है। मनियारी नदी पर खुडिया अथवा मनियारी जलाशय का निर्माण किया गया है।

yhykxj

इस नदी का उद्‌गम कोरबा की पूर्वी पहाड़ी है। यह इस क्षेत्र से निकलकर दक्षिण में बिलासपुर एवं जांजगीर जिलों की सीमा बनाती हुई शिवनाथ नदी में मिल जाती है। प्रदेश में इसकी लंबाई 135 कि.मी. है।

rkanyk

यह शिवनाथ नदी की प्रमुख सहायक नदी है। तांदुला नदी का उद्‌गम कांकेर जिले के भानुप्रतापपुर के उत्तर में स्थित पहाड़ियाँ है। 34 कि.मी. प्रवाहित होने के पश्चात् इस नदी में बालोद तथा आदमाबाद के पास सूखा नाला मिलता है। इसी स्थान पर तांदुला बांध का निर्माण किया गया है, इससे दुर्ग जिले में नहरों द्वारा सिंचाई होती है तथा तांदुला काम्प्लेक्स से भिलाई संयंत्र को जल आपूर्ति होती है। दुर्ग जिले में नदी का प्रवाह क्षेत्र 20140 वर्ग कि.मी. तथा यहाँ लंबाई 64 कि.मी. है।

[kk:u

यह शिवनाथ नदी की सहायक नदी है। इसका उद्‌गम दुर्ग जिले के दक्षिण–पूर्व में पेटेचुवा के समीप है। यह नदी 80 कि.मी. उत्तर की ओर प्रवाहित होकर जामघाट के समीप शिवनाथ में मिल जाती है। दुर्ग जिले में नदी की लंबाई 128 कि.मी. है तथा प्रवाह क्षेत्र 19980 वर्ग कि.मी. है। यह जिले के प्रवाह क्षेत्र का

23.0 प्रतिशत है। रायपुर जिले में नदी की लंबाई 80 कि.मी. तथा प्रवाह क्षेत्र 2700 वर्ग कि.मी. है।

tkd

जोंक रायपुर के पूर्वी क्षेत्र का जल लेकर बलौदाबाजार तहसील में मरकारा नामक स्थान से पूर्व की ओर महानदी के उत्तर तट पर स्थित शिवरीनारायण के ठीक विपरीत दक्षिण तट पर मिलती है। रायपुर जिले में नदी की लंबाई 90 कि.मी. तथा प्रवाह क्षेत्र 2480 वर्ग कि.मी. है, जो जिले के प्रवाह क्षेत्र का 11.70 प्रतिशत है।

ckjkbZ unh

यह कोरबा के पठार क्षेत्र से निकलकर दक्षिण की ओर बढ़ती हुई महानदी में मिल जाती है। इसका प्रवाह क्षेत्र लगभग 1810 वर्ग कि.मी. है।

dkVjh

यह इंद्रावती की सबसे बड़ी सहायक नदी है। इसका उद्‌गम राजनांदगांव जिले की मोहला तहसील से हुआ है। इसका अपवाह क्षेत्र दक्षिण–पश्चिम सीमा पर राजनांदगांव के उच्च भूमि में है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हुई राजनांदगांव कांकेर, बस्तर जिलों से होती हुई महाराष्ट्र में प्रवेश कर बस्तर जिले की सीमा पर इंद्रावती जो कि जिले की सीमा बनाती है, मैं नदी के उत्तरी छोर में मिल जाती है।

Mduh vkSj 'kf[kuh

दक्षिण–पश्चिम में इंद्रावती की सहायक नदियाँ डंकनी तथा शंखनी है। डंकनी नदी किलेपाल एवं पाकनार की डांगरी से निकली है। शंखनी का उद्‌गम बैलाडिला पहाड़ी के 4000 फीट ऊँचे नंदीराज शिखर से हुआ है। डंकनी–शंखनी का संगम दंतेवाड़ा में होता है। संगम पर प्रसिद्ध दंतेश्वरी देवी का मंदिर है।

ukjaxh unh

इसका उद्‌गम जगदलपुर जिले की उत्तर–पूर्वी सीमा पर स्थित मकड़ी नामक स्थान के समीप है। नारंगी नदी चित्रकोट प्रपात के निकट इंद्रावती से

मिलती है। इसमें उत्तर पूर्व बस्तर की कोंडागांव तहसील के अधिकांश भूमि का जल संग्रहित होता है।

x|njk unh

यह नदी बस्तर जिले के नारायणपुर तहसील से निकलकर छोटे डोंगर की चट्टानों के बीच से अबूझमाड़ की वनाच्छित पहाड़ियों से प्रवाहित होती हुई इंद्रावती में बारसूर के समीप मिल जाती है।

Ckk?k

बाघ नदी राजनांदगांव जिले की कुलझारी पहाड़ी से निकलती है। यह वेनगंगा प्रवाह तंत्र की एक शाखा है जो राजनांदगांव जिले की पश्चिमी सीमा का निर्धारण करती हुई महाराष्ट्र में प्रवेश कर मध्यप्रदेश की दक्षिण–पूर्वी सीमा बनाती हुई बालाघाट जिले में वेनगंगा से मिल जाती है।

इस तरह उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि छत्तीसगढ़ के पहाड़ी और ऊँचे पठारी प्रदेशों से सभी दिशाओं में नदियाँ बहती है। इनमें जल की मात्रा पर्याप्त है अतः सिंचाई एवं बिजली विकास की पर्याप्त संभावनाएँ उपलब्ध है।

NÙkhlx< dh ie|[k tutkfr;k dk fooj.k

xkM

गोंड अपनी 41 उपजातियों के साथ न केवल छत्तीसगढ़ राज्य की अपितु भारत की भी प्रमुख जनजाति है। गोंड शब्द की व्युत्पत्ति तेलुगु शब्द 'कोंड' से मानी जाती है, जिसका अर्थ 'पर्वत' है। ये द्रविड़ियन भाषा–समूह की बोली बोलते हैं। इनका पारंपरिक व्यवसाय शिकार और मछली मारना था परन्तु अब ये कृषि करते हैं या खेतिहर मजदूर है। गोंड के साथ कई बहिर्विवाही टोटम समूह है। इसमें ममेरे–फुफेरे भाई–बहनों के बीच विवाह को अधिमान्यता दी जाती है। सामान्य तयशुदा विवाह के अलावा सेवा विवाह, पलायन विवाह और पैठु विवाह का भी इनमें प्रचलन है। बस्तर में गोंड की तीन प्रमुख उपजातियाँ पाई जाती हैं – मारिया,

मुरिया और डोरला। छत्तीसगढ़ में गोंड जनजाति प्रमुख रूप से बस्तर में निवास करती है।

vc>ekfM;k

बस्तर के दक्षिण–पश्चिम की ओर पर्वतीय शिखर पर लगभग डेढ़ हजार वर्ग मील में फैला 'अबूझमाड़' क्षेत्र सघन वनों से आच्छादित है। अबूझमाड़ क्षेत्र में निवास करने वाले 'अबूझमाड़िया' या 'हिलमारिया' की अपनी विशिष्ट पहचान है। यह गोंड की एक उप जाति है, जो इस क्षेत्र की दुर्गमता के कारण बाह्य जगत से कटी हुई है।

dokj ;k duokj

ये प्रमुख रूप से छत्तीसगढ़ के पठारी भागों में रायगढ़, सरगुजा और बिलासपुर जिलों में पाये जाते हैं। यह अपनी उत्पत्ति महाभारत के 'कौरव' से मानते हैं। ये कृषि व्यवसाय और मजदूरी करके अपना जीवन–यापन करते हैं। उनका पारंपरिक व्यवसाय सेना में कार्य करना था। ये सदरी बोली बोलते हैं, जो इंडो–आर्यन भाषा परिवार में आती है। कंवार आठ अंतर्विवाही उप समूहों में बंटे हैं – तनवार, कमलबंसी, पैकरा, दूधकंवर, राठिया, छंटी, छेखा तथा राउतिया।

Hkrjk

यह जनजाति प्रमुख रूप से बस्तर और रायपुर के दक्षिण भाग में निवास करती है। भतरा जनजाति की उत्पत्ति के बारे में ठीक से कुछ ज्ञात नहीं है। संभवतः भतरा शब्द की व्युत्पत्ति 'भृत्य' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'सेवक'। आज भी बड़ी संख्या में भतरा घरेलू नौकर और चौकीदारी का कार्य करते हैं। पहले ये स्थानांतरित कृषि करते थे परन्तु अब ये स्थायी कृषि करते हैं। इनके तीन उपभेद है – पीत, अमनैत, और सान, जिनके सदस्य विवाह के पहले एक दूसरे के घर भोजन ग्रहण नहीं करते। ये कई बहिर्विवाही टोटम गोत्र समूह में बंटे है।

gyck

ये प्रमुख रूप से बस्तर में तथा दक्षिणी रायपुर में निवास करते हैं। अन्य जनजातियों की अपेक्षा ये विकसित और सम्पन्न स्थिति में हैं, क्योंकि ये भूमि स्वामी है। इनकी तीन प्रमुख उपजातियाँ हैं– बस्तरिया, छत्तीसगढ़िया और मरेठिया। इनमें से छत्तीसगढिया और मरेठिया आपस में विवाह करते हैं परन्तु बस्तरिया केवल अपने समूह में विवाह करते हैं। इनकी बोली में उड़िया, छत्तीसगढ़ी और मराठी का विचित्र मिश्रण है। अधिकांश हलबा कबीरपंथी हो गए है और वे माँस–मंदिरा से दूर रहते हैं। इनकी वेश–भूषा, बोली तथा सामाजिक समूह इन्हें गोंड से पृथक करता है।

mjko

यह द्रविड़ियन जनजाति छोटा नागपुर की प्रमुख जनजाति है, जो छत्तीसगढ़ में रायगढ़, जशपुर और सरगुजा जिलों में निवास करती है। यहां ये सामान्यतः 'धांगर' के नाम से जाने जाते हैं जिसका अर्थ है – विशेष शर्त पर रखे गए कृषि श्रमिक। यहीं इनकी आजीविका का प्रमुख स्त्रोते है। द्रविड़ियन शाखा के होते हुए भी ये गोंड से पृथक बोली बोलते हैं जिसे कुरूख कहते हैं। ये कई बहिर्विवादी टोटम–समूह गोत्र में बंटे हुए है।

fc>okj

यह जनजाति मुख्य रूप से रायपुर और बिलासपुर जिले में निवास करती है और अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक अच्छी स्थिति में है। यह द्रविड़ियन जनजाति मण्डला तथा बालाघाट के बैगा जनजाति की एक शाखा है परन्तु अब ये बैगा से अपने संबंधों को नकारते हैं तथा एक अलग जनजाति के रूप में विकसित हो गए है। बिंझवार शब्द की व्युत्पत्ति 'विन्ध्य' पहाड़ी से मानी जाती है। ये 'विन्ध्यवासिनी देवी' की पूजा करते हैं। इनके अनुसार इनके पूर्वज बिंझाकोप से लम्पा (जो संभवतः बालाघाट से लम्टा सा बिलासपुर से लाफागढ़ है) की ओर प्रवजित हुए।

Hkkfj ;k

ये छत्तीसगढ़ में प्रमुख रूप बिलासपुर जिले में पाए जाते हैं। यह द्रविड़ जनजाति भारिया–भूमिया के नाम से भी जानी जाती है। भूमिया अर्थात् 'मिट्टी का देवता'। किवंदती है कि जब कौरव–पांडव युद्ध के दौरान पांडव के दिन खराब गुजर रहे थे तब अजुर्न ने 'भारू घास' हाथों में भरकर, दबाकर कई मानवों को बनाया जिन्होंने कौरवों से युद्ध किया। इन्हीं के वंशज भारिया हैं।

lkojk@lkoj

ये सांवर और सांवरा, साहरा आदि नाम से जाने जाते हैं। यह कोलरियन कुटुम्ब की एक शाखा है। सांवरा नाम की उत्पत्ति के बारे में मतभेद है। छत्तीसगढ़ में सांवरा अपनी मूलधारा से बहुत पहले कट जाने के कारण अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ खो चुके हैं तथा स्थानीय बोली बोलते हैं। ये लरिया तथा उरिया दो प्रमुख भागों में बंटे हैं। छत्तीसगढ़ में सांवरा उन्नत कृषक है।

cSxk

ये द्रविड़ियन जनजाति छत्तीसगढ़ में बिलासपुर, कवर्धा और राजनांदगांव जिले में निवास करती है। इसकी सात उपजातियाँ हैं – बिंझवार, भारोतिया, नरोतिया, राइभाईना, कहभईना कोंडवन या कुंडी तथा गोंडवैना। ये सभी बहिर्विवाही समूह है। इनमें से बिंझवार अब स्वयं को बैगा जनजाति नहीं मानते। इनकी उत्पत्ति के बारे में मान्यता है कि ईश्वर ने नंगा बैगा और नंगा बैगिन को बनाया जो पृथ्वी पर प्रथम मानव है। इनकी दो संताने हुई जिनमें से प्रथम बैगा और दूसरा गोंड के रूप में विकसित हुआ। एक अन्य मान्यता के अनुसार प्रथम बैगा ने एक दिन में दो हजार साल वृक्षों को काट दिया। ईश्वर ने उसे वृक्ष की राख पर कुछ दाने कुटकी डालकर कुछ माह विश्राम करने के लिए कहा।

vxfj ;k

यह एक छोटी द्रविड़ियन जनजाति है जिसे गोंड की एक शाखा माना जाता है। ये अपने विशिष्ट व्यवसाय के कारण एक अलग उपजाति के रूप में जाने जाते

हैं जो लौह अयस्क से लोहा बनाने का/गलाने का व्यवसाय करते हैं। इनके नाम की व्युत्पत्ति 'आग' अर्थात् अग्नि से हुई है। गोंड के समान ही यह कई बर्हिर्विवाही टोटम गोत्रों में बंटे हुए है। इन पर हिन्दू संस्कृति का बहुत प्रभाव पड़ा है।

Hkuk

ये प्रमुख रूप से बिलासपुर जिले में पाए जाते हैं। इनकी उत्पत्ति कंवर और बैगा के सम्मिश्रण से मानी जाती है। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है। भैना दो उपजातियों के हैं – लरिया या छत्तीसगढ़ी भैना तथा उड़िया भैना। इसके अलावा भी दो अन्य उपजातियाँ हे।

/kuokj

यह आदिम–जनजाति प्रमुख रूप से बिलासपुर के पहाड़ी क्षेत्र में निवास करती है। ये 'धनुहर' के नाम से भी जाने जाते हैं। ये शिकार के लिए धनुष–बाण का प्रयोग करते हैं। ये संभवतः गोंड या कंवर जनजाति की एक शाखा है या इन दोनों जनजातियों का सम्मिश्रण। धनवार अपनी उत्पत्ति गोंड से मानते हैं और इनके समूह पारिवारिक नाम कंवर से समानता रखते हैं।

dekj

रायपुर जिले में निवासरत् अत्यंत पिछड़ी जनजाति 'कमार' भारत शासन द्वारा घोषित मध्य प्रदेश की अत्यंत पिछड़ी जनजाति में से एक है। 'कमार' की उत्पत्ति के संबंध में अनेक भ्रांतियाँ है।

इनके जीवन–यापन का प्रमुख साधन कृषि है ये आज भी कुछ स्थानों पर स्थानांतरित कृषि करते हैं, साथ ही शिकार, मछली पकड़ना, कंद–मूल संग्रह तथा बांस की टोकरी इत्यादि बनाकर अपना जीवन यापन करते हैं। यद्यपि कमार गोंड की एक शाखा मानी जाती है, परन्तु गोंड के समान इनकी उपजातियाँ नहीं है।

dkjok

यह जनजाति प्रमुख रूप से सरगुजा–रायगढ़ तथा बिलासपुर जिले में निवास करती है। यह कोलेरियन परिवार की जनजाति हैं, जो 'कोरबोर', 'सिंगली'

या 'कोरवा' बोली बोलते हैं। यह 'कोल' या 'मुंडा' जनजाति की एक शाखा है। भारत शासन ने 'पहाड़ी कोरवा' को उनके अत्यधिक पिछड़ेपन के कारण अत्यंत पिछड़ी जनजाति के अंतर्गत शामिल किया है।

ukxf'k;k

ये रायगढ़ और सरगुजा जिले में निवास करते है। ये स्वयं को किसान कहते हैं तथा 'सदरी' बोली बोलते हैं, जो मुंडारी भाषा समूह की एक शाखा मानी जाती है। इनकी उत्पत्ति 'नागवंशिया' अर्थात् नागम से हुई, इसलिये ये सर्प के वंशज मानते जाते हैं। इनके तीन अंतर्विवाही समूह है – तेलहा, धुरिया, तथा सेंदुरिया, जो विवाह के समय क्रमशः तेल, वर के पैर की धूल तथा सिंदूर लगाते हैं। इनके शारीरिक लक्षण मुंडा से समानता दर्शाते हैं।

e>okj

ये 'मांझी' या 'मांझिया' के नाम से भी जाने जाते हैं। यह एक मिश्रित जनजाति है जिसकी उत्पत्ति गोंड, मुंडा और कंवार जनजाति से हुई है। ये प्रमुख रूप से रायगढ़ तथा सरगुजा जिले में निवास करते हैं। मांझी अर्थात् 'मुखिया'। मांझी का अर्थ नाव खेने वला भी है। रायगढ़ जिले के मांझी मछुआरे है तथा ये मुंडा और संथाल से समानता दर्शाते हैं। इनके कई टोटम समूह है।

[kjokj

ये खरवार या खरिया या खैरया के नाम से भी जाने जाते हैं। ये प्रमुख रूप से बिलासपुर और सरगुजा जिले में निवास करते हैं। खेरवार शब्द की उत्पत्ति 'खैर' से मानी जाती है, क्योंकि ये खैर वृक्ष की छाल से कत्था निकालने का कार्य करते हैं और कैमूर पहाड़ी के खेरवार की उत्पत्ति गोंड तथा सांवा के सम्मिश्रण से मानी जाती है।

Hkqft;k

यह जनजाति मुख्य रूप से रायपुर जिले में पाई जाती है जो द्रविड़ियन जनजाति हैं इसकी दो उपजातियाँ हैं – 'छिदा भुंजिया' और चौखटिया भुंजिया'।

छिदा भुंजिया बैगा के वंशज माने जाते हैं जबकि चौखटिया भुंजिया की उत्पत्ति गोंड स्त्री और हलबा पुरूष से मानी जाती है जबकि चारों ओर से गोंड जनजाति से घिरे होने के बावजूद गोंडी नहीं बोलते बल्कि छत्तीसगढ़ी बोली बोलते हैं।

ikj/kh

'पारधी' मराठी शब्द 'पारधू' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है 'आखेट'। इन्हें बहेलियों के साथ शामिल किया गया है। पारधी अपनी उत्पत्ति गोंड पूर्वज से मानते हैं। इनके आठ उपभेद है। इनमें से एक उपवर्ग 'कारगर' कहलाता है जो केवल काले रंग के पक्षियों का शिकार करते हैं छत्तीसगढ़ के बस्तर, रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर और रायपुर जिलें में पारधी निवास करते हैं।

[kfj;k

यह आदि कोलारियन जनजाति बिलासपुर, रायगढ़ और सरगुजा जिले में निवास करती है। यह मुंडा और सांवरा जनजाति से संबधित जान पड़ती है। रायगढ़ जिले में इनकी दो उपजातियाँ हैं – 'दूध खरिया' और 'डेलकी खरिया'। इनमें से डेलकी खरिया मिश्रित प्रकार के माने जाते हैं।

xMkck ;k xMck

यह जनजाति बस्तर, रायगढ़ और बिलासपुर जिले में पाई जाती है। यह मुंडारी या कोलेरियन समूह की जनजति है। ये स्वयं को 'गुडन' के नाम से पुकारते हैं। ये बोझा ढोकर अपना जीवन–यापन करते हैं और कुछ कृषि भी करते हैं।

पर्यटन के दृष्टिकोण से छत्तीसगढ़ में ऐतिहासिक, पुरातात्विक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्राकृतिक, वन्य जीवन एवं औद्योगिक महत्व के स्थलों की प्रचुरता है, जो हर वर्ग के पर्यटकों को आकर्षित करने में सक्षम है। संक्षिप्त में छत्तीसगढ़ के पर्यटन स्थलों का जिलेवार परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है, जो क्रमशः निम्नानुसार है।

- NÙkhlx< dh jkt/kkuh % jk;iqj uxj ,d ifjp;

चौदहवीं सदी के अंतिम चरण में रतनपुर के कल्चुरी राज्य से एक शाखा अलग हो गई एवं उसने रायपुर को अपनी राजधानी बनाया। वर्तमान रायपुर का अभ्युदय खारून नदी के तट पर स्थित रायपुरा ग्राम से होता है, यह स्थल आज पुरानी बस्ती के नाम से जाना जाता है। कल्चुरी वंश के रतनपुर के राजा राय ब्रम्हदेव इस अंचल में सन् 1401 में प्रविष्ट हुये तथा रायपुरा ग्राम को प्रशासन हेतु उपयुक्त समझ कर उसे राजधानी का रूप दिया एवं नगर बसाया। रायपुर की ऐतिहासिकता देखी जाये तो उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार नगर का वर्तमान भूखंड 5वीं शताब्दी में पाण्डुवंश के आधिपत्य में रहा, फिर लगभग 700 वर्षो के दीर्घशासन कल्चुरियों का रहा। 1741 ई. के मराठा आक्रमण के पश्चात् यह क्षेत्र हैहयवंशियों के हाथ्रे से निकलकर मराठों के आधिपत्य में चला गया लगभग 80 वर्ष पश्चात् 1818 के तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध और मराठों की पराजय से संपूर्ण छत्तीसगढ़ अंग्रेजों के नियंत्रण में चला गया, जो 1830 तक चला। पुनः 1831 से 1854 तक मराठे रहे और अन्ततः 1854 ईसवीं में यहाँ अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हुआ जो 1947 तक चला। 1818 में अंग्रेज कर्नल एगेन्यू जो कि ब्रिटिश नियंत्रण काल में छत्तीसगढ़ के द्वितीय प्रशासक (1818–25 ईसवीं) हुये (प्रथम कैप्टन एडमन्ड अल्पकालीन थे) ने छत्तीसगढ़ की राजधानी रतनपुर से रायपुर स्थानांतरित की। 1861 में मध्यप्रांत के गठन के पश्चात् 1862 ईसवीं में छत्तीसगढ़ एक पृथक संभाग बना जिसका मुख्यालय रायपुर बना। रायपुर राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक – 06 (मुम्बई–कोलकाता मार्ग) पर स्थित छत्तीसगढ़ की राजधानी है साथ ही यह प्रदेश का प्रमुख व्यवसायिक एवं औद्योगिक केन्द्र भी है एवं देश के सभी भागों से सड़क, रेल एवं वायु मार्ग से जुड़ा हुआ है।

n'kuh; LFky

रायपुर में स्थित दर्शनीय स्थल दूधाधारी मठ, महामाया मंदिर, किला या गढ़ के अवशेष (सन् 1460 में राजा भुनेश्वर देव द्वारा निर्मित), बूढ़ा तालाब, भण्डारपुरी मंदिर, गोपाल मंदिर, रहस्यमय शिव मंदिर आदि प्रमुख है। यहाँ स्थित महंत

घासीदास संग्रहालय भी महत्वपूर्ण है जो राजनांदगांव रियासत के परोपकारी राजा महंत घासीदास द्वारा सन् 1875 में अंचल के लिए (एक विभागीय संग्रहालय के रूप में) स्थापित किया गया।

uUnu dkuu ¼oU; izk.kh vH;kj.k½

नन्दन कानन रायपुर शहर से भिलाई की ओर राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक–06 पर 12 कि.मी. से दायीं ओर 03 कि.मी. भीतर स्थित है। यह एक लघु जीवन उद्यान है, जिसका रखरखाव वन विभाग की वन्य जीव शाखा द्वारा किया जाता है।

fxjkS/kiqjh ¼lrukeh lekt dk rhFkZLFky½

बिलासपुर से लगभग 80 किलोमीटर तथा शिवरीनारायण से मात्र 12 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है – गिरौधपुरी। छत्तीसगढ़ की पावन–भूमि एवं महानदी के किनारे स्थित पवित्र गांव गिरौधपुरी में सोमवार माघ पूर्णिमा 18 दिसम्बर, 1756 को घासीदास का जन्म हुआ था, जो आगे चलकर संत घासीदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

rikHkwfe

गिरौधपुरी से 2 किलोमीटर पूर्व दिशा में पहाड़ी पर ओरा व घोरा वृक्ष के नीचे गुरू घासीदास जी ने तप किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें संत–ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसलिए इस स्थल को तपोभूमि के नाम से जाना जाता है।

Nkrk igkM+

तपोभूमि से लगभग 8 किलोमीटर पूर्व की ओर स्थित पहाड़ी के ढाल में बहुत बड़ी शिला है जिसे छाता पहाड़ कहते हैं। गुरू घासीदास जी ने इस पर्वत की एक शिला पर बैठकर 6 माह तक समाधि लगाई थी।

lqQjk eB

गुरू घासीदास के जन्म स्थल के करीब 200 गज पूर्व दिशा में एक छोटा सा जलाशय है, जिसके समीप उत्तर दिशा में गुरू घासीदास जी की पत्नी सुफरा जी का मठ है।

jkfte ¼,frgkfld] /kkfeZd % NÙkhlx< dk iz;kx½

रायपुर से 45 किलोमीटर की दूरी पर राजिम स्थित है। राजिम को पद्मावतीपुरी, पंचकोशी, छोटा काशी आदि नामों से भी जाना जाता है। राजिम छत्तीसगढ़ का एक त्रिवेणी संगम तीर्थ स्थल है। धार्मिक दृष्टि से राजिम को छत्तीसगढ़ का प्रयाग कहा जाता है।

jktho ykspu eafnj

राजिम में ही त्रिवेणी संगम के निकट राजीव लोचन मंदिर, छत्तीसगढ़ के प्राचीन मंदिरों में से एक है। मंदिर में अंकित महामण्डप की पार्श्व भित्ति पर कल्चुरि संवत् 896 (अर्थात् 1154 ई. सन) का एक शिलालेख है।

dqys'oj egknso eafnj

पंचमुखी महादेव के दर्शन विश्व में गिने–चुने स्थानों पर होते हैं, उनमें से एक है राजिम, जहाँ पर पंचमुखी कुलेश्वर महादेव का मंदिर स्थित है।

pEikju ¼egkizHkq oYyHkkpk;Z dh tUe LFkyh½

रायपुर से 56 कि.मी. तथा राजिम से मात्र 9 किलोमीटर की दूरी पर चम्पारण या चंपाझर महानदी के समीप स्थित है। चम्पारन धीरे–धीरे छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल का रूप धारण कर रहा है। यहाँ पर दूर–दूर से वैष्णव एवं सभी धर्मों के लोग दर्शन एवं पर्यटन हेतु आते हैं। प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा के अवसर पर यहाँ विशाल मेला लगता है।

iapdks'kh ¼rhFkZ LFky½

राजिम का प्राचीन नाम कमल क्षेत्र पद्मावतीपुरी था। ऐसा नाम करने का आधार यह था कि राजिम का कुलेश्वर मंदिर केन्द्र में है, जिसके आसपास आठ नौ मील की दूरी पर कमल की पंखुड़ियों (कोसों) की भांति पांच तीर्थ स्थल है।

vkjax ¼eafnjksa dk uxj½

राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक–6 (मुम्बई–कोलकाला राजमार्ग) पर रायपुर से 37 किलोमीटर की दूरी पर स्थित आरंग पौराणिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से काफी

महत्वपूर्ण है। इस छोटे से नगर में अनेक मंदिर हैं, अतः आरंग को मंदिरों का नगर कहा जाता है। यहां जैनियों का एक कलापूर्ण उत्कृष्ट मंदिर है, इसे लोग भांड देवल (जैन मंदिर) के नाम से जानते हैं।

r|jr|fj;k ¼egf"k okYehdh dh i|.;Hkfe½

सिरपुर से लगभग 24 किलोमीटर दूर 'तुरतुरिया' नामक स्थल हे। इसकी गणना तीर्थ स्थानों में की जाती है। अनुश्रृति है कि त्रेतायुग में यहीं 'महर्षि बाल्मीकि' का आश्रम था और उन्होंने यहीं 'सीता जी' को 'श्री रामचन्द्र जी' द्वारा त्याग देने पर आश्रय दिया था। यहीं सीता के दोनों पुत्र 'लव' और 'कुश' ने जन्म लिया था।

[kYYkkjh ¼[kYyokfVdk½ ikphu jkt/kkuh

रायपरु से 80 किलोमीटर की दूरी पर आरंग–खरियार रोड मार्ग पर बागबाहरा विकासखण्ड में खलारी ग्राम स्थित है। इसका प्राचीन नाम 'खल्लवाटिका' या 'खैवाटिका' था। यहां के देवालय से जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उससे पता चलता है कि यह स्थान विक्रम संवल 1471 अर्थात् ई. सन् 1415 का है, और उसमें उल्लेखित है कि यह 'हैहयवंशी' राजा हरि ब्रम्हदेव की राजधानी थी।

iykjh ¼/kkfed LFky½

रायपुर से 68 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में तथा बलौदाबाजर से ग्राम 'पलारी' 15 किलोमीटर दूर स्थित है। यहाँ ईटों से निर्मित लगभग 8वीं, 9वीं शताब्दी का अनूठा शिव मंदिर स्थित है।

ukjk;.ki|j ¼,frgkfld /kkfed LFky½

यह रायपुर से 53 मील दूर महानदी के तट पर एक छोटा सा ग्राम है। यहां एक पूर्वाभिमुख शिवमंदिर है, जो स्थापत्य एवं मूर्तिकला की दृष्टि से यह 10–11वीं शताब्दी ईसवीं का लाल बलुए पत्थर से बना हुआ है जहां शिल्प की श्रेष्ठ कृतियां है।

pUn[kjh ¼,frgkfld /kkfed LFky½

रायपुर से 30 किलोमीटर की दूरी पर 'चन्द्रखुरी' एक छोटा सा ग्राम स्थित है। यहां एक प्राचीन शिव मंदिर है। स्थापत्य एवं मूर्तिकला के आधार पर इस मंदिर को 13–14वीं सदी ईसवीं का माना जाता है।

mn;rh ¼oU; ik.kh vH;kj.k½

रायपुर जिले व उड़ीसा की सीमाओं के मध्य 'उदयंती अभ्यारण स्थित है। 'उदयंती अभ्यारण' 247.59 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। यह अभ्यारण रायपुर से राजिम होते हुए लगभग 170 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

ftyk egkleqn

fljiqj ¼,frgkfld /kkfed LFky½

रायपुर से 77 किलोमीटर की दूरी पर वन्य क्षेत्र में 'महानदी के तट पर वर्तमान 'सिरपुर' ग्राम है जो कभी 'श्रीपुर' तथा चित्रांगदपुर' के नाम से प्रचलित रहा है। सिरपुर अचंल के गौरवशाली अतीत के अनेक अवशेष संजोये हुये है। यह छोटा सा गांव कभी 'शरभपुरीय वंश', तत्पश्चात् 'पाण्डुवंशीय' राजाओं की राजधानी रहा है। इसका यशस्वी राजनैतिक इतिहास रहा है। कुछ विद्वानों द्वारा ऐसा माना जाता है कि सिरपुर ही महाभारतकालीन अर्जुन के पुत्र भब्रुवाहन की राजधानी थी और इसका तत्कालीन नाम मणिपुर अथवा चित्रांगदपुर था।

n'kuh; LFky & सिरपुर में स्थित दर्शनीय स्थल निम्न है –

- 'बौद्ध–विहार' तथा 'स्वास्तिक विहार'
- लक्ष्मण मंदिर
- गंधेश्वर महादेव
- संग्रहालय
- बार नवापारा (वन्य प्राणी अभ्यारण्य)

ftyk /kerjh

/kerjh ,d ifjp;

राजधानी रायपुर से 77 कि.मी. दक्षिण दिशा में धमतरी स्थित है। यहां से 8 किलोमीटर दूर दक्षिण की ओर पहाड़ी प्रदेश शुरू हो जाता है जिसमें सिहावा और गटसिल्ली की श्रेणियाँ भी सम्मिलित हैं। यह रायपुर से पृथक होकर 1998 में जिला बना था।

flgkok ¼,frgkfld] ijkrkfRod] /kkfeZd½

धमतरी से लगभग 65 किलोमीटर की दूरी पर घने वनों एवं पहाड़ियों से घिरा हुआ तीर्थ स्थल – 'सिहावा' स्थित है। सिहावा के उत्तर पूर्व में कर्णेश्वर में छह प्राचीन मंदिर है। कर्णेश्वर का विशाल शिव मंदिर इस अंचल के शैव उपासना का प्रमुख केन्द्र रहा है।।

lhrk unh vH;kj.k ¼oU; ik.kh vH;kj.k½

रायपुर जिले के दक्षिण में धमतरी जिले से 90 किलोमीटर तथा रायपुर से लगभग 176 किलोमीटर पर 'सीता नदी अभ्यारण' स्थित है।

xxjy tyk'k;

धमतरी से आगे जगदलपुर मार्ग पर 3 किलोमीटर के बाद बांयी ओर लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर 'गंगरेल जलाशय' स्थित है। रायपुर से इसकी दूरी 92 किलोमीटर है। महानदी पर 1246 मीटर लंबा यह गंगरेल जलाशय पूर्णतः मिट्टी का बना है।

ftyk nqx

nqx ¼n:x½ uxj % ,d ifjp;

यह रायपुर से 37 किलोमीटर की दूरी पर स्थित जिला मुख्यालय है। इस नगर की नींव लगभग 10वीं शताब्दी में जगपाल ने डाली थी, जो मिर्जापुर जिले का निवासी था और रतनपुर राज्य में कोषाध्यक्ष का कार्य करता था। राजा रत्नदेव उसकी कार्य कुशलता से प्रसन्न और संतुष्ट थे फलतः उन्होंने दुरूग (किला) तथा

क्षेत्र, जिसके अंतर्गत 700 गांव आते थे, उसे पुरस्कार में प्रदान कर दिया। दुरूग का असली नाम 'शिव दुर्ग' था, जैसा कि दुरूग में प्राप्त एक शिलालेख से विदित होता है। 'दुर्ग' नगर में मिट्टी के किले के खण्डहर, जिनका निर्माण स्पष्टतः प्राचीन समय में हुआ था, अभी भी दृष्टिगत होते हैं।

fHkykbZ ¼vkS|ksfxd uxj½

भिलाई, मुम्बई–हावड़ा रेलमार्ग का एक प्रमुख रेल्वे स्टेशन है, जिसे 'औद्योगिक नगरी' के रूप में जाना जाता है। इसे छत्तीसगढ़ की 'गार्डन सिटी' भी कहा जाता है।

fHkykbZ bLikr la;a=

भिलाई इस्पात संयंत्र शैक्षणिक व तकनीकी रूचि वाले पर्यटकों के लिये महत्वपूर्ण पर्यटन स्थल है। सार्वजानिक क्षेत्र के इस प्रथम इस्पात संयंत्र की स्थापना द्वितीय योजना काल में सोवियत रूस के तकनीकी सहयोग से हुई थी।

Vkmuf'ki

भिलाई टाउनशिप में नेहरू आर्ट गैलरी एवं विभिन्न धर्मावलंबियों के उपासनागृह देखने योग्य है।

e=hckx

मैत्रीबाग 100 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ एक अत्यंत सुंदर उद्यान व चिड़ियाघर है, जो भारत–रूस मैत्री संबंध की याद में स्थापित किया गया था। यहां पर देशी–विदेशी नस्ल के वन्य जीवों का अच्छा संग्रह है। टॉय ट्रेन, कृत्रिम झील व झरना मैत्रीबाग के विशेष आकर्षण है। झील में नौका विहार की सुविधा है।

uokx<+ ¼iqjkrkfRod] ,frgkfld½

दुर्ग से 63 मील की दूरी पर बेमेतरा तहसील में छत्तीसगढ़ों में एक 'नवागढ़' पूर्वकाल में गोंड राजाओं की राजधानी थी। यहां एक प्राचीन मंदिर है, जो 'खेड़पति मंदिर' के नाम से जाना जाता है जिसमें संवत् 704 वि. (सन् 647) उत्कीर्ण है।

xq:j ¼,frgkfld] /kkfeZd½

'बलोद–धमतरी मार्ग' पर बसे गुरूर में 9–10वीं शताब्दी में बना हुआ 'महाभैरव मंदिर' स्थित है। प्रमाणों से पता चलता है कि इसे कांकेर रियासत के नरेश व्याघ्रराज (बागराज) ने बसाय था।

Rkknqyk ¼ckW/k½

दुर्ग जिला मुख्यालय से बालोद होते हुए लगभग 64 किलोमीटर की दूरी पर 'तांदुला' बांध स्थित है। इसका निर्माण 'तांदुला नंदी' पर 1923 में किया गया। सुंदर प्राकृतिक सौंदर्य लिये यह एक पर्यटन स्थल है।

uxiqjk ¼molXxgj ik'oZukFk rhFkZ& NÙkhlx<+ dk ,d ek= tSu rhFkZ½

दुर्ग जिला मुख्यालय से 14 किलोमीटर दूर देश के प्रमुख जैन तीर्थो में एक एवं छत्तीसगढ़ का एक मात्र जैन तीर्थ नागपुरा (पारस नगर) स्थित है। सन् 1982 में उत्तर प्रदेश की गंडक नदी के किनारे ग्राम उगना में 24 तीर्थकरों में से 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त हुई बाद में इसे नगपुरा लगाया गया। तीन शिखरों से युक्त इस मंदिर के गर्भ गृह में पार्श्वनाथ की 15 प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। यह जैने तीर्थ विश्वभर में प्रसिद्ध हो चुका है। प्रतिवर्ष यहां लगभग दस लाख लोग आते हैं। अमेरिका, केन्या, इंग्लैण्ड, जापान, आस्ट्रेलिया, नेपाल, आदि अनेकानेक देशों से तीर्थ यात्री यहां आ चुके हैं।

ftyk jktukanxkao

Mksaxjx<+ ¼,frgkfld] /kkfeZd½

राजनांदगावं जिला मुख्यालय से 36 किलोमीटर पर मुंबई–हावड़ा रेलमार्ग पर डोंगरगढ़ स्थित है। यहां एक पहाड़ी के अंतिम शिखर पर 'माँ बम्लेश्वरी' का मंदिर है। 'डोंगरगढ़' नगर का वास्तविक एवं प्रामाणिक इतिहास अभी भी अतीत के गर्भ में छुपा हुआ है, परन्तु उपलब्ध जानकारी के आधार पर डोंगरगढ़ ही अत्यंत समृद्धशाली ऐतिहासिक नगरी 'कामावतीपुरी' था।

[kjkx< ¼lkLdfrd½

राजनांदगांव से सड़क मार्ग में 48 किलोमीटर की दूरी पर ‘खैरागढ़’ स्थित है, जो पूर्व काल में खैरागढ़ रियासत के नाम से जाना जाता था। खैरागढ़ में स्थित ‘इंदिरा कला एवं संगीत विश्वविद्यालय’ न केवल भारत में वरन, संपूर्ण विश्व में अपनी तरह का एक मात्र विश्वविद्यालय है, जो संगीत एवं ललित कलाओं की शिक्षा के प्रचार हेतु कार्य कर रहा है।

fprok Mksxjh ¼ikxSfrgkfld] ikdfrd½

राजनांदगांव जिलें में 20^0–45′ उत्तरी आक्षांश एवं 81^0–0′ पूर्व देशांतर के बीच अंबागढ़ चौकी (तहसील) के समीप चितवा डोंगरी (पहाड़ी) पर प्रागऐतिहासिक शैल चित्र मिले हैं। यहां तीन गुफाओं में नव पाषाण कालीन 27 शैलचित्र अंकित है। चित्रों को देखने से लगता है कि इनको बनाने वाले चीनी जन–जीवन से कहीं न कहीं प्रभावित जरूर रहे होंगे। यह भी पता चलता है कि उस काल में आवागमन के लिये नावों का इस्तेमाल होता रहा होगा।

ftyk do/kk ¼dchj/kke½

do/kk ,d ifjp;

कवर्धा फणी नागवंशियों का क्षेत्र रहा है। पूर्व में कवर्धा राजनांदगांव का हिस्सा था। किन्तु 1998 में इसे पृथक जिले का दर्जा प्राप्त हुआ। कवर्धा का एक अलग ऐतिहासिक महत्व है।

Hkksjenso ¼NÙkhlx< dk [ktjkgks½

रायपुर–जबलपुर राजमार्ग पर कवर्धा से 17.6 किलोमीटर पूर्व की ओर मैकल पर्वत–श्रृंखला की लघु–उपात्यका में ग्राम ‘छपरी’ के निकटल ‘चौरागांव’ नामक गांव में भोरमदेव स्थित है। खुजराहों एवं कोणार्क की कला का संगल स्थल ‘भोरमदेव मंदिर’ हे। जो ‘कवर्धा से 17.6 किलोमीटर दूर स्थित है। जग प्रसिद्ध ‘खुजराहो’ से इसकी तुलना करते हुए इसे छत्तीसगढ़ का खुजराहों से इसकी तुलना करते हुए इसे छत्तीसगढ़ का खुजराहों भी कहते हैं। गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। कुछ विद्वानों द्वारा इसका नामकरण गोंड़ देवता ‘भोरमदेव से सम्बद्ध किया जाता है।

eMok egy ¼ijkrkfRod] ,frgkfld] /kkfed½

भोरमदेव से एक किलोमीटर दूर कवर्धा मार्ग पर 'मंडवा महल' स्थित है। मंड़वा महल को 'दुल्हादेव' भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि यहां एक 'ऐतिहासिक विवाह' हुआ था।

Njdk egy ¼ijkrkfRod] ,frgkfld] /kkfed½

मंडवा महल से 1 किलोमीटर दूर तथा भोरमदेव मंदिर से 3 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण दिशा में 'छेरका महल' स्थित है। वस्तुत यह महल नहीं है बल्कि शिव मंदिर है।

ftyk fcykLkiqj

fcykLkiqj uxj % ,d ifjp;

बिलासपुर नगर छत्तीसगढ़ में $22'5^0$ उत्तरी अक्षांश एवं $82'10^0$ पूर्वी देशांतर पर 'अरपा नदी' के तट पर बसा है। इसकी समुद्र तल से ऊँचाई 853 फीट है।

ukedj.k

प्राचीन काल में यह क्षेत्र रतनपुर में रत्नदेव द्वितीय (1120–1135 ई.) के समय वर्तमान बिलासपुर के स्थान पर घना जंगल था, जहां केवट जाति के कुछ परिवार थे।

रतनपुर राज्य के मराठा शासक बिम्बाजी भोंसले के काल में 1770 में बिलासपुर को नगर का रूप दिया गया। बिलासपुर को जिले का दर्जा 1861 में प्राप्त हुआ था। संभागीय मुख्यालय 1956 में बना। जिले की स्थापना के समय यह बहुत बड़ा था अतः 1906 में दुर्ग जिला बनने पर बिलासपुर का 363 वर्गमील क्षेत्र दुर्ग में तथा 706 वर्गमील क्षेत्र रायपुर में मिला दिया गया।

jruiqj ¼,frgkfld] /kkfed LFky½

बिलासपुर से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर बिलासपुर–कटघोरा मार्ग पर रतनपुर स्थित है। इसे 'रत्नदेव प्रथम' ने बसाया था, जिसके कारण इसका नाम रतनपुर पड़ा।

दर्शनीय स्थलों में रतनपुर अपने प्राचीन वैभव के परिणामस्वरूप ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पुरातात्विक महत्व के स्थल संजोये हुये है।

[kVk?kkV tyk'k; ¼ikdfrd½

बिलासपुर–कोरबा मार्ग पर 25 कि.मी. की दूरी पर, रतनपुर से 8 कि.मी. की दूरी पर, खूंटाघाट (खारंग जलाशय) स्थित है। यह जलाशय खारंग नदी पर बांध बनाकर तैयार किया गया है। बांध की अधिकतम ऊँचाई 21.3 मी एवं लंबाई 495 मी. है। इस बांध का निर्माण सन् 1931 में पूर्ण हुआ।

ikyh ¼,frgkfld] iqjkrkfRod½

पाली, बिलासपुर जिलान्तर्गत बिलासपुर–अंबिकापुर मार्ग में 55 कि.मी. की दूरी पर स्थित पाली छत्तीसगढ़ के प्राचीन ऐतिहासिक स्थालों में एक महत्वपूर्ण स्थल है। यहां स्थित 'शिवमंदिर' पुरातात्विक महत्व का है। एक हजार वर्ष पूर्व का यह प्राचीन शिवालय आज भी प्राचीन मूर्तिकला और इतिहास को अपने गर्भ में समेटे 'पाली' के बाहरी भाग में सरोवर के तट पर स्थित है। खजुराहो, कोणार्क, भोरमदेव आदि मंदिरों की तरह दक्षिण कोसल की शैली में यहां 'काम–कला' का चित्रण मिलता है।

ykQkx<+ ¼pSrqjx<+½ ¼,frgkfld] iqjkrkfRod½

बिलासपुर से 45 कि.मी. की दूरी पर तथा बिलासपुर–कोरबा मार्ग पर स्थित पाली से 15 कि.मी. की दूरी पर लाफागढ़ स्थित है जो कि एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक और ऐतिहासिक स्थल है। गढ़ मंडला के गोंड राजा 'संग्रामशाह' के बावन गढ़ों की सूची में 'लाफागढ़ (चैतुरगढ़) सम्मिलित रहा है।

xfu;kjh ¼,frgkfld] iqjkrkfRod½

बिलासपुर से लगभग 20 कि.मी. की दूरी में कोटा मार्ग पर 'गनियारी' स्थित है। यहां 12वीं शताब्दी का एक प्राचीन 'शिव मंदिर' 'देवर तालाब' के किनारे भग्नावस्था में स्थित है, जो पुरातात्विक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

/kuij ¼,frgkfld] ijkrkfRod ,o /kkfed½ ikphu uxj

बिलासपुर से बिलासपुर–कटनी रेलमार्ग पर पेंड्रा रोड स्टेशन से 23 कि.मी. की दूरी पर धनपुर नामक प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। 'धनपुर' जैन धर्मावलम्बियों का अंचल का सबसे बड़ा प्राचीन काल में प्रमुख व्यापारिक पथ में होने के कारण 'धनपुर' जैन धर्मावलम्बियों के वैभवशाली नगर के रूप में प्रसिद्ध था।

vpkudekj ¼oU; ik.kh vH;kj.k½

यह अभ्यारण्य बिलासपुर से 58 कि.मी. दूर बिलासपुर–पेंड्रा–अमरकण्टक मार्ग पर 551 वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र में विस्तृत है। घने साल वनों और विविध वन्य प्राणियों के बाहुल्य वाला क्षेत्र 'अचानकमार अभ्यारण्य' प्रकृति प्रेमियों एवं पर्यावरण संरक्षण से जुड़े लोगों के लिए महत्वपूर्ण स्थल है।

vejdVd ¼,frgkfld] ijkrkfRod ,o /kkfed½

छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश के मध्य की सांस्कृतिक विरासत को लेकर आधिपात्य हेतु परस्पर दावे के कारण हाल ही में विवाद का विषय बना अमरकंटक सतपुड़ा–मैकल पर्वतमाला के मैकल पठार पर जबलपुर, बिलासपुर एवं रीवा तीन संभाग व बिलासपुर, मंडला तथा शहडोल जिलों के सीमा संगम पर मध्यप्रदेश के शहडोल जिले में स्थित है। अपने गर्भ में विपुल खनिज संपदा छिपाये एवं आयुर्वेदिक जड़ी–बूटियों से युक्त वनस्पति तथा स्वास्थ्यप्रद जलवायु से परिपूर्ण यह स्थल छत्तीसगढ़ का महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र है।

n'kuh; LFky

दर्शनीय स्थलों के कारण 'अमरकंटक' एक आकर्षक पर्यटन स्थल है। कबीर चबूतरा, नर्मदा कुण्ड (नर्मदा उद्गम), कपिलधारा (जलप्रपात), दुग्धधारा (जलप्रपात), सोनमुड़ा (सोन उद्गम), माई की बगिया, भृगु–कमंडल, माई का मण्डप, श्री ज्वालेश्वर महादेव (जुहिला नदी या ज्वाला नदी के उद्गम स्थल जलेश्वर पर स्थित) तथा श्री यंत्र महामेरू मंदिर, आदि मंदिरों के अलावा यहाँ बॉक्साइट खदान भी लोकप्रिय है।

eYgkj ¼,frgkfld] iqjkrkfRod ,oa /kkfeZd ,oa ikphu jkt/kkuh½

यह स्थान बिलासपुर के दक्षिण–पश्चिम में बिलासपुर से रायगढ़ जाने वाले सड़क मार्ग पर मस्तूरी से लगभग चौदह कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यहां सागर विश्वविद्यालय एवं पुरातत्व विभाग द्वारा उत्खनन कार्यो से इस स्थल की प्राचीनता एवं यहां के प्राचीन वैभवशाली संस्कृति एवं इतिहास की जानकारी प्राप्त हुई है जिसमें यहां ताम्र पाषाण काल से लेकर मध्यकाल तक का क्रमबद्ध इतिहास प्रमाणित हुआ है।

dypqfj 'kkldksa dk ;qx ¼bZ- 900 ls bZ- 1300 rd½

इस युग में लाल रंग के मिट्‌टी के पात्र बहुतायत से पाये गये हैं। इस समय प्याले, दीपक, कटोरे आदि बहुत बने। इस काल की कांच की चूड़ियाँ भी अधिक मात्रा में पाई गई। कलचुरी शासकों के कई सिक्के भी उपलब्ध हुये है। जो भवन यहां पाये गये हैं उनका निर्माण ईटों तथा पत्थरों का है। इस शासन काल में बहुत से मंदिर भी बनवाये गये थे, जो मंदिर प्राप्त हुये है उनमें केदारेश्वर मंदिर एवं डिडिन दाई मंदिर इसके प्रमाण है अतः कलचुरि शासकों ने अपने समय में यहाँ उत्कृष्ट मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया है।

इस क्षेत्र में बहुत से प्राचीन कुंओं के अवशेष आज भी प्राप्त होते है।

vkfFkZd fLFkfr

मल्हार प्राचीनकाल में संपन्न स्थिति में था। यहां से प्राप्त रोमन सिक्कों के आधार पर माना जा सकता है कि यहां से विदेशी व्यापार भी अवश्य संबंधित रहा होगा। शरभपुरीय एवं कलचुरि राजाओं के समय की स्वर्ण मुद्राएँ भी इसकी आर्थिक सम्पन्नता को प्रमाणित करती है। लगभग इस काल के प्रचलित सभी धर्मो से संबंधित मूर्तियों एवं सामग्रियों का पाया जाना यहां के शासकों की धार्मिक सहिष्णुता एवं सभी धर्मो के प्रति समभाव को प्रमाणित करता है।

n'kZuh; LFky

मल्हार में प्राचीनता के अनुरूप दर्शनीय ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों का बाहुल्य है। उत्खनन में प्राप्त सामग्री यहाँ संग्रहालय, जो केन्द्रीय पुरातात्विक विभाग

द्वारा संचालित है, में भी संग्रहित है। पातालेश्वर केदार मंदिर (10वीं–11वीं सदी), डिडनेश्वरी मंदिर (कलचुरि कालीन), देउर मंदिर (शिव प्रतिमा) आदि दर्शनीय स्थल है।

l jxko ¼ijkrkfRod] /kkfed½

बिलासपुर से 28 कि.मी. की दूरी पर बिलासपुर–रायपुर मार्ग पर 'सरगांव' स्थित है।

n'kuh; LFky

यहां एक प्राचीन शिव मंदिर है, शिल्पकला के आधार पर मंदिर को 11वीं शताब्दी का माना जा सकता है।

nofdjkjh ¼ijkrkfRod] /kkfed½

बिलासपुर से 27 कि.मी. की दूरी पर तथा बिलासपुर–रायपुर रेलमार्ग पर स्थित बिल्हा स्टेशन से देवकिरारी लगभग 3 कि.मी. की दूरी पर है। यहां लगभग 12वीं शताब्दी के एक प्राचीन मंदिर के भग्नावशेष स्थित है। संभवतः देवकिरारी कलचुरि कालीन कला का समृद्ध केन्द्र रहा होगा।

rkykxko ¼okeekfx;k dh r= lk/kuk LFkyh & ,frgkfld] ijkrkfRod] /kkfed½

बिलासपुर से 27 कि.मी. की दूरी पर बिलासपुर–रायपुर मार्ग पर भोजपुर ग्राम से लगभग 7 कि.मी. तथा बिलासपुर–रायपुर रेलमार्ग पर दगोरी स्टेशन से मात्र एक–डेढ़ कि.मी. दूर अमेरीकापा ग्राम के समीप मनियारी नदी के तट पर तालागांव नामक स्थान है।

n'kuh; LFky

तालागांव में लगभग चौथी–पांचवीं शताब्दी के पुरातात्विक महत्व के दो मंदिर तथा अद्भूत रौद्रशिव की प्रतिमा उल्लेखनीय है।

nòojkuh@ tsBkuh efnj

दाहिने पार्श्व पर देवरानी मंदिर स्थित है। यह गुप्तकालीन शिल्प स्थापत्यकला का प्रतिनिधित्व करता है।

:n f'ko ¼ fo'o dh vnHkr ifrek

तालागांव के देवरानी मंदिर के द्वार पर उत्खनन के दौरान शिव के रौद्र रूप की अनुपम कृति युक्त एक प्रतिभा टीले में दबी हुई प्राप्त हुई है।

ftyk dksjck

dksjck uxj ¼ ,d ifjp;

दक्षिण–पूर्वी रेलवे के हावड़ा–मुंबई मार्ग पर रायगढ़ एवं बिलासपुर स्टेशन के बीच स्थित चांपा जक्शन से मात्र 40 कि.मी. की दूरी पर औद्योगिक नगरी कोरबा स्थित है।

dksjck lqij FkeZy ikoj LVs'ku

कोरबा के समीप स्थित एन.टी.पी.सी. द्वारा स्थापित देश के सबसे बड़े विद्युत गृह ने इस अंचल को सहज ही देश के ऊर्जा मानचित्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। 2100 मेगावाट का कोरबा स्थित ताप विद्युत गृह, नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन की विद्युत परियोजनाओं की श्रृंखला की दूसरी कड़ी के साथ–साथ सर्वाधिक महत्वकांक्षी विद्युत परियोजना भी है। विस्तृत विवरण ग्रंथ के विद्युत एवं ऊर्जा अध्याय में दिया गया है।

Hkkjr ,Y;qfefu;e dEiuh fyfeVsM ¼ckYdks½

कोरबा के सार्वजनिक क्षेत्र में भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड का एक विशाल संयंत्र स्थापित है।

dks lxbZx< ¼iqjkrkfRod½

औद्योगिक नगरी कोरबा से 25 कि.मी. की दूरी पर ग्राम 'छुरी' से 9 कि.मी. उत्तर–पूर्व स्थित धनगांव से 6 कि.मी. की दूरी पर सघन वनों एवं पार्श्व में बहती

हसदेव नदी के समीप समुद्र सतह से लगभग 400 फीट की ऊँचाई पर छत्तीसगढ़ के गढ़ों में से एक 'कासेगईगढ़' विद्यमान है।

dUnbZ tyizikr ¼izkdfrd½

बिलासपुर–अंबिकापुर मार्ग पर 132 कि.मी. की दूरी पर ग्राम– 'केन्दई' स्थित है।

n'kZuh; LFky

पहाड़ियों तथा साल के घने वनों के मध्य स्थित 'केन्दई' ग्राम में एक पहाड़ी नदी लगभग 200 फुट की ऊँचाई से गिरकर एक खूबसूरत प्रपात बनाती है, जो केन्दई जल प्रपात के नाम से जाना जाता है।

rEek.k ¼,sfrgkfld] iqjkrkfRod½

बिलासपुर–अंबिकापुर मार्ग पर कटघोरा से 10 कि.मी. की दूरी पर पसान मार्ग पर तुम्माण स्थित है।

ckxks ¼tyk'k;½

बिलासपुर–अंबिकापुर मार्ग पर लगभग 100 कि.मी. की दूरी पर मुख्य मार्ग से दांयी ओर 10 कि.मी. भीतर बांगो स्थित है। यहां महानदी की सहायक नदी हसदो पर एक सुंदर बांध बनाया है, जो 'हसदेव–बांगों बहुउद्देशीय परियोजनांतर्गत' 'मिनीमाता जलाशय' के नाम से जाना जाता है।

ftyk tkatxhj

tkatxhj uxj % ,d ifjp;

बिलासपुर–चांपा रेलमार्ग पर 45 कि.मी. पर स्थित है। जाजल्लदेव द्वितीय के रतनपुर शिलालेख से पता चलता है कि उसने अपने नाम पर एक नगर बसाया था जहां मंदिर एवं तालाब भी बनवाये थे उसका नाम था – जाजल्लपुर। वर्तमान में जांजगीर को ही उस स्थान के नाम से जाना गया है।

_"kHkh rhFk ¼neÅngjk & ,frgkfld] /kkfed] ijkrkfRod½

बिलासपुर से लगभग 113 कि.मी. बंबई–हावड़ा रेलमार्ग पर 'सक्ती' से मात्र 15 कि.मी. की दूरी पर 'दमऊदहरा' स्थित है, जो कि ऋषभ तीर्थ या 'गूंजी' नाम से भी जाना जाता है। इसके पास पहाड़ में एक प्राचीन प्रस्तर शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसके आधार पर यही प्राचीन ऋषभ तीर्थ है। ऐसी मान्यता है कि 'रावण' ने 'सीता' का अपहरण इसी स्थान से किया था।

[kjkn ¼ikphu bnij½

खरौद 'चित्रोत्पला गंगा (महानदी) के किनारे बिलासपुर से 63 कि.मी. की दूरी पर दक्षिण–पूर्व में प्रसिद्ध तीर्थ शिवरीनारायण से मात्र 3 कि.मी. की दूरी पर बसा एक नगर है। शैव परंपरा यहां स्थित लक्ष्मणेश्वर (लखनेश्वर) शिवलिंग से स्पष्ट परिलक्षित होती है। शिव मठ भी इसका द्योतक है। जबकि शिवरीनारायण वैष्णव परम्परा का उदाहरण माना जाता है। शायद यही कारण है कि शिवरीनारायण और खरौद को क्रमशः 'विष्णुकांक्षी और 'शिवाकांक्षी' कहा जाता है और इनकी तुलना उड़ीसा के जगन्नाथ के भगवान 'जगन्नाथ' और 'भुवनेश्वर के लिंगराज' से की जाती है। प्राचीनकाल में जगन्नाथपुरी जाने का रास्ता खरौद और शिवरीनारायण से होकर जाता था। यहां लक्ष्मणेश्वर, शबरी मंदिर, इंदल–देव मंदिर आदि प्रमुख दर्शनीय स्थल है।

f'kojhukjk;.k ¼tgk ukjk;.k vkt Hkh vkr g & ,frgkfld] ijkrkfRod] /kkfed½

बिलासपुर से दक्षिण पूर्व दिशा में लगभग 64 कि.मी. दूर प्राचीन धार्मिक स्थल शिवरीनारायण स्थित है। यहां छत्तीसगढ़ की तीन प्रसिद्ध नदियों – महानदी (चित्रोत्पला गंगा), शिवनाथ नदी एवं जोंक का संगम प्रयास के त्रिवेणी संगम के सदृश्य है।

ftyk jk;x< & 'kyJ;k dk x<

रायगढ़ जिला छत्तीसगढ़ का एक पूर्वी जिला है जिसकी सीमायें पूर्व में उड़ीसा प्रान्त, उत्तर–पूर्व में झारखण्ड प्रान्त के गुमला जिले से लगती है।

Vhik [kksy ¼ikdfrd½

रायगढ़ से 10–12 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में एक पहाड़ी गुफा' टीपा खोल' स्थित है। जिसमें आदिम युग के मनुष्यों द्वारा किये गये चित्रांकन पुरातत्व के क्षेत्र में अत्यंत चर्चित हे। गुफा में चित्रित मानव तथा पशु–पक्षियों के चित्र अंधेरे में चमकते हैं।

jke>juk ¼ikdfrd½

मुंबई–हावड़ा रेलमार्ग में रायगढ़ से लगभग 17 किलोमीटर की दूरी पर 'भूपदेवपुर' रेलवे स्टेशन से दो किलोमीटर की दूरी पर रामझरना स्थित है, जिसे 'प्रियदर्शिनी पर्यावरण परिसर नाम से विकसित किया गया है।

fl?kuij ¼ikxfrgkfld] ikdfrd½

रायगढ़ से 20 किलोमीटर तथा भूपदेव से 3 किलोमीटर की दूरी पर पर्वत श्रृंखलाओं में विश्व का प्राचीनतम मानव शैलाश्रय सिंघनपुर में स्थित है। 30 हजार वर्ष पूर्व की ये गुफाएँ स्पेन–मैक्सिको में प्राप्त शैलाश्रयों के समकालीन है।

cluk>j 'kSykJ; ¼,frgkfld] ikdfrd½

सिंघनपुर से सिर्फ 8 किलोमीटर, रायगढ़ से 28 किलोमीटर की दूरी पर 'बसनाझर शैलाश्रय' स्थित है। सिंघनपुर की पहाड़ी श्रृंखला से अलग ग्राम चपले से आगे बसनाझर की पहाड़ियों में 2000 फीटर ऊँचाई पर बसनाझर शैलाश्रय है।

dcjk igkM+

रायगढ़ से 8 कि.मी. पूर्व में ग्राम विश्वनाथपाली तथा भज्रापाली के निकट कबरा पहाड़ है। यहां दो हजार फीट की ऊँचाई पर बने गहरे गैरिक रंग के शैलचित्र सुरक्षित है।

djekx<+

रायगढ़ से लगभग 30 कि.मी. दूर उत्तर–पूर्व में करमागढ़ पहाड़ बांस और अन्य पेड़ों से आच्छादित है। करमागढ़ में करीब 200 फीट की पट्टी पर एक–एक

इंच पर 300 से अधिक शैलचित्र है। यह शैलाश्रय रायगढ़ जिले के अन्य शैलचित्रों से काफी अलग है।

cuhikV

रायगढ़ से 25 कि.मी. उत्तर–पूर्व की ओर करमागढ़ शैलाश्रय से पश्चिम में भैसागढ़ी में बेनीपाट शैलाश्रय है।

[kjij % v/kj e pedr 'kyfp=

रायगढ़ के उत्तर में 12 कि.मी. दूरी टीपाखोल जलाशय के पास खैरपुर पहाड़ी है। इस पहाड़ी में छोटी सी गुफा है। यहां अंकित शैलचित्र अद्भूत हैं जो अंधेरे में भी चमकते है।

Hk lx<h 'kykJ;

रायगढ़ से 25 कि.मी. दूर भैंसगढ़ी के दुर्गम वन में प्रागैतिहासिक शैलचित्रों की एक गुफा है। इस शैलाश्रय में प्राप्त चित्रों का साम्य करमागढ़ की पहाड़ियों से प्राप्त चित्रों से है। इनमें पशु पक्षियों के चित्र अधिक है।

vkxuk ¼ikxfrgkfld] ijkrkfRod½

रायगढ़ की धर्मजयगढ़ तहसील के दक्षिण–पूर्व में लगभग 5 कि.मी. की दूरी पर 'ओंगना गांव' स्थित है, जिसके पास की पहाड़ियों में दो सौ फुट की ऊँचाई पर आदि–मानवों का चित्रित शैलाश्रय प्राप्त हुआ है। बीस फीट ऊँचे और तीस फुट चौड़े एक ही शिलाखण्ड में गहरे और हल्क गैरिक रंग में रंगे एक सौ शैलचित्र अंकित है।

ckrYnk ¼ikxfrgkfld] ,frgkfld ikdfrd½

रायगढ़–बिलासपुर मार्ग पर लगभग 43 किलोमीटर दूर 'बोतल्दा' स्थित है। बोतल्दा की पहाड़ियों में आदिम शैलचित्र, गुफाओं की लंबी श्रृंखला, पहाड़ी झरना, गुप्तकालीन सूर्य मंदिर के अवशेष पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र है।

छोटे पंडरमुड़ा (प्रागैतिहासिक, पुरातात्विक) खरसिया से 16 कि.मी. की दूरी पर छोटे पंडरमुड़ा से मध्य पाषणयुगीन मनुष्यों की कब्रगाह प्राप्त हुई है।

ekM tyk'k;

खरसिया से 10 किलोमीटर की दूरी पर शासन के जल–संसाधन विभाग द्वारा निर्मित मांड जलाशय स्थित है। जलाशय के आसपास का प्राकृतिक सौंदर्य पर्यटन के लिए उपयुक्त है।

Xkkejnk vH;kj.k ¼oU; izk.kh vH;kj.k½

रायगढ़ जिले के तहसील सांरगढ़ से सरायपाली जिला महासमुंद की ओर जाने वाली मार्ग से 20 किलोमीटर की दूरी पर 'गोमरदा अभ्यारण' स्थित है। लगभग 278 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले अभ्यारण का ज्यादातर भाग पहाड़ी हे।

fdadkjh tyk'k;

शासन के जल संसाधन विभाग द्वारा तहसील के बरमकेला विकासखण्ड में निर्मित 'किंकारी जलाशय' सुंदर पिकनिक स्पॉट है।

dksMkj tyk'k;

सारंगढ़ विकासखण्ड में जल संसाधन विभाग द्वारा निर्मित 'कोडार जलाशय' पर्यटकों के लिए एक पर्यटन स्थल है।

iqtkjh ikyh ¼,sfrgkfld] iqjkrkfRod½

सारंगढ़ के उत्तर–पूर्व तथा सरिया ग्राम के पश्चिम में लगभग एक–डेढ़ कि. मी. दूर 'पुजारी पाली' इतिहास में कभी 'शशि नगर' के नाम से प्रसिद्ध था। इस गांव में गुप्तकाल का ध्वस्त 'विष्णु मंदिर' अपने गौरवशाली अतीत का साक्षी है।

ftyk&t'kiqj

dqudqjh ¼bZlkbZ;ksa dk rhFkZ½

रायगढ़–जशपुर सड़क मार्ग पर रायगढ़ से लगभग 167 किलोमीटर पत्थरगांव से 56 किलोमीटर तथा जशपुर नगर से 44 किलोमीटर की दूरी पर 'कुनकुरी' का आकर्षण है – प्रदेश का विशाल महागिरजाघर है।

cu: ty i:ikr ¼ikdfrd½

कुनकुरी से लगभग 22 कि.मी. दूर ईब नदी पर बेने जल प्रपात स्थित है। एक सुंदर प्राकृतिक जलधारा गुल्लू, छुरीघाघ और पेरेबांध नामक झरनों का निर्माण करती हुई ग्राम बेने के पास अत्यंत आकर्षक जल प्रपात का रूप धारण करती है।

ckny[kky ¼oU; ik.kh vH;kj.;½

बादलखोल अभ्यारण कुनकुरी से लगभग 25 कि.मी दूर पूर्व की ओर 104 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला यह अभ्यारण्य जशपुर वनमंडल के अंतर्गत है।

jtiijh ty i:ikr ¼ikdfrd½

बगीचा से पूर्व की ओर 3 किलोमीटर की दूरी पर सघन वनों के मध्य स्थित रजपुरी पहाड़ी में 50 फीट ऊँचा 'रजपुरी' जल प्रपात सुंदर पर्यटन स्थल है।

dyk'k xQk ¼xfgjk x: dk vkJe½

बगीचा से 10 किलोमीटर दूर बगीचा–बतौली मार्ग में 28 कि.मी. की दूरी पर ग्राम 'गायबुड़ा' के निकट सघन वन क्षेत्रों के मध्य में कैलाश गुफा स्थित है, जो कि 'श्री रामेश्वर गुरू गहिरा बाबा के आश्रम के नाम से विख्यात है।

jkuhnkg tyi:ikr ¼ikdfrd½

जशपुर–कुनकुरी मार्ग पर 12 किलोमीटर पर स्थित ग्राम इचकेला से 7 कि. मी की दूर पर 'रानीदाह' जलप्रपात स्थित है।

ftyk ljxtk

सरगुजा वनों से आच्छादित छत्तीसगढ़ का उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र है।

vfcdkij uxj % ,d ifjp;

अंबिकापुर पूर्वी सरगुजा जिले का मुख्यालय है। बिलासपुर से सड़क मार्ग द्वारा इसकी दूरी 240 किलोमीटर है।

jkex<h ¼,frgkfld½

संभागीय मुख्यालय बिलासपुर से 205 किलोमीटर की दूरी तथा जिला मुख्यालय अंबिकापुर से 45 किलोमीटर की दूरी पर यह ऐतिहासिक स्थल स्थित है।

jkex<h dh ,frgkfldrk

उपलब्ध साक्ष्यों से पता लगता है कि यह ऐतिहासिक दृष्टि से छत्तीसगढ़ का प्राचीनतम स्थल है। यहां उपलब्ध चिन्ह इस बात के प्रमाण है कि यहां कभी बहुत ही शिक्षित, सभ्य एवं कला प्रेमी लोग रहा करते थे, इसे रामगिरी भी कहते हैं। इस स्थल का वर्णन ब्रिटिश कालीन स्टेटिस्टिकल एकाउंट ऑफ बंगाल (भाग–17) तथा 'छत्तीसगढ़ प्यूडेटरी गजेटियर' और कनिंघम के आर्कयोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग–13 में मिलता है। प्रचलित कथाओं के अनुसार श्री रामचन्द्र वनवास की अवधि में यहां रूके थे।

रामगढ़ की पहाड़ी पर स्थित अनेक मंदिर, खण्डहर, गुफाएं तथा अनेक मूर्तियां है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहाड़ी के शिखर पर स्थित मौर्यकालीन सीता बंगरा, जोगीमारा गुफा, लक्ष्मण (गुफा) बंगरा विशिष्ट गुफा आदि है। इन गुफाओं की खोज शिकार के दौरान कर्नल आउस्ले (1848) ने की थी तथा जर्मन डॉ. ब्लाश (1904) ने इसे आर्कयोलॉजिकल सर्वे की रिपोर्ट में प्रकाशित कराया।

gkFkh ikj

इन गुफाओं पर पहुंचने के लिए 180 फीट लंबी एक विशाल प्राकृतिक सुरंग को पार करना पड़ता है।

lhrk cxjk ¼ukV;'kkyk] b-i- 3&2 'krkCnh½

गुफा के शिलालेखों के अनुसार यह विश्व की सबसे प्राचीन नाट्यशाला मानी गई है, जहां तत्कालीन सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब दिखता है। यहां ईसा पूर्व तीसरी–दूसरी सदी की एक नाट्यशाला पहाड़ी से काटकर बनायी गयी थी, जिसे सन् 1848 में कर्नल आउस्ले प्रकाश में लाया था।

tksxhekjk ¼,sfrgkfld] iqjkrkfRod & fo'o dk lcls izkphu fHkfÙkfp=½

जोगीमारा की गुफा को भारतीय चित्रकला में 'वरूण का मंदिर' कहा जाता है। यहां सुतनुका देवदासी रहती थी जो वरूण देव को समर्पित थी। ऐसा माना जाता है कि सूतनुका ने सीता बंगरा नृत्य शाला में नृत्य करने वाली सखियों के विश्राम के लिए इसे बनवाया था। इस गुफा में भित्तिचित्रों के सबसे प्राचीन नमूने अंकित है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि धार्मिक है।इस गुफा में ब्राम्ही लिपि एवं पाली भाषा का एक उत्कीर्ण लेख ज्ञात हुआ है।

y{e.k caxjk ¼,sfrgkfld] /kkfeZd½

जोगीमारा के समक्ष अनेक गुफाओं में से एक लक्ष्मण बंगरा भी है जिसके भीतर रखी हुई विशाल चट्टान एवं इसके सम्मुख का दृश्य अत्यंत मोहक है, श्री लक्ष्मण के शयन अथवा विश्राम के लिए प्रयोग में लायी जाती थी और यहीं से वे श्रीराम और सीताजी की रखवाली किया करते थे।

jkex<+ dk fdyk ,oa fof'k"V xqQk ¼,sfrgkfld iqjkrkfRod½

वर्तमान में यह किला जीर्ण अवस्था में हैं तुर्रा स्थान से एक किलोमीटर दूर समतल सतह पर चलने के बाद पर्वत की खड़ी चढ़ाई कर ऊपर पहुँचने पर प्राचीन काल का कलापूर्ण फाटक मिलता है। जहाँ पर देवन गुरू की खंडित मूर्ति शिवलिंग को प्रमाण करती हुई मिलती है।

nsox<+ ¼iqjkrkfRod½

बिलासपुर–अंबिकापुर मार्ग पर 200 किलोमीटर की दूरी पर उदयपुर से 20 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में 'देवगढ़' एक पुरातात्विक स्थल हे। अंबिकापुर से इसकी दूरी लगभग 60 किलोमीटर है।

egs'kiqj ¼,sfrgkfld] iqjkrkfRod½

बिलासपुर–अंबिकापुर (व्हाया कटघोरा) मार्ग पर अंबिकापुर से 40 किलोमीटर की दूरी पर पड़ने वाले ग्राम उदयपुर से दक्षिण की ओर 8 किलोमीटर की दूरी पर 'महेशपुर' ग्राम स्थित है।

cylj ¼,frgkfld] ijkrkfRod½

अंबिकापुर से 85 किलोमीटर, डीपाडीह से 15 किलोमीटर तथा शंकरगढ़ से 6 किलोमीटर की दूरी पर 'बेलसर' स्थित है जहां 8वीं–9वीं शताब्दी का एक प्राचीन शिव मंदिर स्थित है जो वर्तमान में जीर्ण अवस्था में है।

dkVkMksy ¼,frgkfld] ijkrkfRod½

अंबिकापुर से एकदम पश्चिम भाग में लगभग 150 किलोमीटर पर भरतपुर तहसील में 'गोपद' और 'बनास' नादियों के निकट ऐतिहासिक स्थल – 'कोटाडोल' स्थित है।

?kk?kjk ¼,frgkfld] ijkrkfRod½

चांगभखार (जनकपुर) तहसील में दो नदियों के किनारे तथा अंबिकापुर से लगभग 150 कि.मी. पर ''घाघरा'' स्थित है। यहां एक प्राचीन गुफा है, जिसे 'सीतामढ़ी' के नाम से जाना जाता है।

gjpkSdk ¼ ekuohd`r xQk,¡ ¼,frgkfld] ijkrkfRod½

सरगुजा जिले के जनकपुर तहसील के उत्तर–पश्चिम में सीधी जिले की सीमा में अंबिकापुर से लगभग 160 कि.मी पर ग्राम मवाही में नदी के किनारे 'हरचौका' स्थित है।

ejsjx< ¼,frgkfld] ijkrkfRod½

सरगुजा जिले की जनकपुर तहसील के उत्तर–पूर्व में अंबिकापुर से लगभग 140 कि.मी. 'मुरेरगढ़' एक ऊँचे पहाड़ पर स्थित है।

dypk Hknokgh ¼,frgkfld] ijkrkfRod½

कलचा भदवाही सरगुजा जिले के उदयपुर से सूरजपुर की ओर जाने वाली कच्ची सड़क में 23 कि.मी. तथा अंबिकापुर से 63 कि.मी. दूर स्थित है।

Mhi kMhg

डीपाडीह महत्वपूर्ण पुरातत्वीय स्थल है। यहां पर एक कि.मी. के क्षेत्र में प्राचीन मंदिरों के ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं।

eSu ikV

अंबिकापुर–रायगढ़ रेलमार्ग में स्थित अंबिकापुर से 85 कि.मी. की दूरी पर स्थित 25 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में विस्तृत छत्तीसगढ़ का एक मात्र हिल स्टेशन 'मैनपाट' एक उच्च भूमि सदृश्य क्षेत्र है। समुद्र सतह से इसकी ऊँचाई 4000 फीट है। यहां स्थित 150 फुट ऊँचा 'सरभंजा जल प्रपात' पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है।

rkrkikuh

अंबिकापुर–रामानुजगंज राजमार्ग पर अंबिकापुर से 80 कि.मी. की दूरी पर उष्ण जल के 8–10 भू–स्त्रोत स्थित है, जो ''तातापानी'' नाम से जाने जाते है। इसके जल का तापमान 84^0 सेटीग्रेट के लगभग है। तातापानी का जल खनिज लवणों से युक्त है यहां खनिज जल का एक प्लांट स्थापित किया जा सकता है।

jDlx.Mk ty iikr ¼ikdfrd½

सरगुजा जिले में 'चांदनी थाना' एवं 'बलंगी' नामक स्थान के समीप 'रेड नदी' बहती है, जो कि बलंगी के निकट 'रक्सगण्डा जल प्रपात' का निर्माण करती है। प्रपात नीचे एक संकरे कुण्ड का निर्माण करता है जिसकी गहराई काफी अधिक है।

ftyk&dksfj;k % ,d ifjp;

ve`r/kkjk iikr ¼ikdfrd½

देवगढ़ पहाड़ियों से निकल कर 'हसदो नदी' मनेन्द्रगढ़ तहसील के बरबसपुर से 18 कि.मी. की दूरी पर ''अमृतधारा प्रपात'' बनाती है। अंबिकापुर से इसकी दूरी लगभग 120 कि.मी. है।

dkByh ty izikr ¼ikdfrd½

अंबिकापुर–कुसुमी मार्ग पर 70 कि.मी. की दूरी पर स्थित 'डीपाडीह' से 15 कि.मी. उत्तर दिशा में कन्हार नदी 'कोटली जलप्रपात बनाती है जो पर्यटकों के लिये आकर्षण का केन्द्र है।

lejlkr vH;kj.; ¼OkU; ik.kh vH;kj.;½

अंबिकापुर से 58 कि.मी. की दूरी पर 430 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में यह अभ्यारण्य फैला हुआ है। इस क्षेत्र में सिन्दुर, सेमरसोत, चेतन और सांसू नदियां बहती है।

fpjfeh

कोरिया जिले के मनेन्द्रगढ़ तहसील में स्थित चिरमिरी साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स का प्रमुख कोयला क्षेत्र है। यहां स्थित कोयले की खुली तथा भूमिगत खानों से कोयले का उत्खनन करने के पश्चात् उसे तारपथ द्वारा रेलवे तक भेजा जाता है।

ftyk & cLrj

txnyiqj % ,d ifjp;

राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 43 पर रायपुर से 299 कि.मी. दूर इन्द्रावती तट पर जगदलपुर नगर बसा है जो बस्तर संभाग का जिला मुख्यालय है। जगदलपुर से निकटतम हवाई एवं रेलवे स्टेशन विशाखापट्नम एवं रायपुर है।

,UFkkikykftydy E;ft;e

सन् 1972 में स्थापित इस संग्रहालय का मूल उद्देश्य बस्तर तथा सीमा से लगे रायपुर–दुर्ग जिलों सहित, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा एवं महाराष्ट्र के आदिवासी जन–जीवन के आपसी प्रभावों का अध्ययन करना है।

Ckkjlqj ¼/kkfeZd] ,frgkfld ,oa iqjkrkfRod½

जगदलपुर से लगभग 100 कि.मी. की दूरी पर स्थिति धार्मिक, ऐतिहासिक, एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से बस्तर का महत्वपूर्ण स्थल बारसूर 11वीं शताब्दी ई. के आरंभ में नागवंश के बस्तर में अभ्युदय पर उनकी राजधानी बना। तत्कालीन

अभिलेखों से विदित होता है कि 11वीं शताब्दी में इस क्षेत्र को 'चक्रकूट' या 'भ्रमर कोटस' कहा जाता था।

dk.Mkxkso ¼f'kYi xzke½

जगदलपुर से रायपुर की ओर राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 43 पर 76 कि.मी. दूर कोण्डागांव में प्रख्यात बस्तर शिल्प पर आधारित शिल्पग्राम में घड़वा, लोहा, कांसा आदि के धातुशिल्प सहित काष्ठ, पाषाण, टेराकोटा और बांस की उत्कृष्ट एवं कलात्मक वस्तुयें बनती एवं विक्रय की जाती है।

ukjk;.kiky ¼,frgkfld] /kkfeZd½

जगदलपुर से करीब 40 कि.मी. दूर इन्द्रावती नदी के तट पर नारायणपाल एक ग्राम है। नारायणपाल में दो मंदिर स्थित है, विष्णु मंदिर तथा भद्रकली का मंदिर।

Hkksxkiky ¼,frgkfld] iqjkrkfRod½

कोण्डागांव से 51 कि.मी. पर नारायणपुर (तहसील) से 25 कि.मी. दूर ग्राम भोंगापाल स्थित है जहां ईटों से निर्मित एक टीला विद्यमान है जो संभवतः मौर्य कालीन है।

d'kdky ¼ikd'frd½

केशकाल की घाटी राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 43 पर कांकेर से जगदलपुर की ओर बढ़ने पर लगभग 5 कि.मी. की घाटी पड़ती है जिसे बस्तर का प्रवेश द्वार कहा जाता है। यह घाटी समुद्र से 728 मीटर की ऊँचाई पर है।

x< ?kukjk ¼,frgkfld] /kkfeZd½

रायपुर से राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 43 पर केशकाल से लगभग 12 किलोमीटर पश्चिम में 'गढ़घनोरा' नामक ग्राम पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल है। गढ़ घनोरा में ऐसे कई मंदिरों का पता चला है जो पूर्णरूपेण भूमिगत थे।

dkaxsj ?kkVh jk"Vªh; m|ku ¼oU; izk.kh m|ku½

छत्तीसगढ़ के 03 राष्ट्रीय उद्यानों में से एक हैं – कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान जो बस्तर जिले में स्थित है। जगदलपुर से दक्षिण पूर्व में जगदलपुर–कोंटा, हैदराबाद मार्ग पर 26वें कि.मी. से राष्ट्रीय उद्यान की सीमा प्रारंभ होती है।

dkaxsj /kkjk ¼izkd`frd½

तीरथगढ़ के पश्चात् कांगेर नदी का जल कांगेर राष्ट्रीय उद्यान के अन्य आठ–दस स्थानों पर गिरता है और सुंदर जल प्रपात का रूप धारण करता है इनमें से ही एक प्रपात है 'कांगेर धारा'। यह खूबसूरत झरने के रूप में आकर्षण का केन्द्र है।

HkSlknjgk ¼^^exj laj{k.k LFky^ izkd`frd½

जगदलपुर से दक्षिण–पूर्वी दिशा में 42 कि.मी. दूर कांगेर वन घाटी में स्थित कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान में 'भैंसादरहा' छत्तीसगढ़ में एकमात्र स्थल है, जहां प्राकृतिक रूप से आबाद मगरों का संरक्षण किया जा रहा है।

dqVEclj ¼izkd`frd½

कुटुम्बसर की गुफा जगदलपुर से दक्षिण दिशा में लगभग 38 कि.मी. दूर 'कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान में स्थित है। 'कोटमसर', 'कुटुम्बसर', 'गुपनपाल' या 'राहुड़' नाम से प्रसिद्ध गुफा भारत की प्रथम और विश्व की सातवीं भूगर्भित गुफा है। गुफा की तुलना विश्व की सर्वाधिक लम्बी भूगर्भित गुफा 'कार्ल्स बार आव केव' से की जा सकती है, जो अमेरिका में है।

nsofxjh xqQk ¼izkd`frd½

देवों सी आकृति का आभास देने वाली यह प्राकृतिक भूमिगत गुफा जगदलपुर से 40 किलोमीटर दूर वन परिक्षेत्र कोलेंग के मिलकुल बाड़ा बीट में लोवर कांगेर नदी के मध्य पहाड़ी की ढाल पर है।

d:yk'k x|Qk ¼i:kdfrd½

जगदलपुर से दक्षिण पूर्व की ओर फैली तुलसी डोंगरी की पहाड़ियों में वन परिक्षेत्र कोलेंग के कक्ष क्रमांक 75 मिलकुलबाड़ा स्थित लगभग 250 मीटर लंबी तथा 35 मीटर गरही ''कैलाश गुफा'' कुटुम्बसर गुफा के सदृश्य रहस्य एवं रोमांच से भरी है।

fp=dkV ¼y?k| fu;kxk½

जगदलपुर से 40 किलोमीटर की दूरी पर चित्रकोट अथवा चितरकोट में बस्तर की जीवनदायिनी 'इंद्रावती नदी' का जल लभगभग 90 फुट की ऊँचाई से धुआं सा उत्पन्न करता गर्जना के साथ प्रपात बन कर गिरता है।

rhjFkx< ty i:ikr ¼i:kdfrd½

जगदलपुर से 38 कि.मी. दूर 'तीरथगढ़' एक सुंदर जल प्रपात कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान में स्थित है। यह छत्तीसगढ़ का सबसे ऊँचा प्रपात है।

l r/kkjk ¼i:kdfrd½

बस्तर में चित्रकोट तीरथगढ़ के अलावा अन्य अनेक ऐसे झरने है। इन्द्रावती पर जगदलपुर से 118 किलोमीटर तथा बारसूर से मांडश्र होकर 22 कि.मी. दूर सतधारा प्रपात स्थित है।

gkFkh njgk ¼i:kdfrd½

जगदलपुर से लगभग 45 कि.मी. की दूरी पर जगदलपुर–बारसूर मार्ग पर 8 कि.मी. पर ग्राम भंदरी के पश्चिम में गहरी खाई है, जिसे हाथी दरहा के नाम से जाना जाता है।

jkuh njgk ¼i:kdfrd½

जगदलपुर–कोटा मार्ग पर दंतेवाड़ा जिले के कोंटा तहसील के विकासखण्ड छिंदगढ़ से 30 कि.मी. दूर ग्राम तालनाम के समीप यह दरहा है। रानी दरहा के आसपास शबरी का जल अत्यधिक गहराई के कारण ठहरा हुआ सा प्रतीत होता है। किवदंती के अनुसार युद्धकाल में पद्मावती नामक रानी ने पीछा करते हुये दुश्मनों

के हाथों में पड़ने के बजाय, इसी स्थान से शबरी में कूद कर प्राणोत्सर्ग कर लिया था, इसलिए इसे रानी दरहा कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त बस्तर में इंद्रावती तट पर ग्राम मेंटावाड़ा के निकट झापी दरहा और करंजी के निकट जुगाली दरहा भी प्रसिद्ध है।

[kj’kSy oSyh ¼ikdfrd½

समुद्र सतह से अधिकतम 839 मीटर और न्यूनतम 480 मीटर ऊँचा 2840 हेक्टेयर क्षेत्र में फैली सागौन, बांस के मिश्रित प्रजाति के गहन वनों से आच्छादित यह घाटी वनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है किन्तु वर्तमान में यह नक्सलियों की शरण स्थली बनी हुई है।

vcw>ekM+

बस्तर के दक्षिण पश्चिम में अधिकतम 4 हजार एवं न्यूनतम 2 हजार फीट ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं का क्षेत्र अबूझमाड़ कहलाता है। अंडाकार भू–भाग के उत्तरी वृत्त को शेष बस्तर से इंद्रावती और माड़िन नदियां अलग करती है।

ftyk&narsokM+k

इस क्षेत्र में सर्वाधिक धार्मिक विश्वास एवं श्रद्धा की प्रतीक काकतीयों की आरध्य दंतेश्वरी देती है। मंदिर के गर्भगृह में माँ दंतेश्वरी देवी की प्रतिमा है। इनके अलावा नागवंशी शासकों के शिलालेखों एवं विविध कालों की प्रतिमाओं को इस मंदिर में प्रतिष्ठित किया गया है।

cSykfMyk ¼ikdfrd½

यह बस्तर की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाओं में जगदलपुर से 150 कि.मी. दूर दंतेवाड़ा जिले में समुद्र सतह से 4160 फीट ऊँचे भू–भाग पर स्थित है। बैलाडिला में विश्व प्रसिद्ध लौह अयस्क की खाने हैं जहाँ से लौह अयस्क विदेशों को निर्यात (जापान) को किया जाता है।

Uknhjkt

नंदीराज बस्तर की सर्वाधिक ऊँची चोटी का नाम है। बस्तर की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाओं में समुद्री सतरह से सर्वाधिक ऊँचाई नंदीराज की है, जो लगभग 4160 फीट ऊँचा है।

bUnkorh jk"Vh; m|ku ¼ikatDV Vkbxj½

छत्तीसगढ़ के तीन राष्ट्रीय उद्यानों में से दो इन्द्रावती एवं कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान बस्तर में है। इन्द्रावती राष्ट्रीय उद्यान जगदलपुर से करीब 200 कि. मी. की दूरी पर दंतेवाड़ा जिले में इसकी उत्तर–पश्चिम सीमा में स्थित है। जगदलपुर से बीजापुर होकर इन्द्रावती राष्ट्रीय उद्यान पहुँचा जा सकता है।

Hkjex< vH;kj.k ¼oU; ik.kh vH;kj.k½

दंतेवाड़ा जिले में दंतेवाड़ा से लगभग 90 कि.मी. दक्षिण–पश्चिम में आंध्रप्रदेश की सीमा से लगा भैरमगढ़ अभ्यारण 139 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ पाये जाने वाले प्रमुख वन्य प्राणी – बाघ, तेंदुआ, वनभैंसा एवं सांभर है।

ikeM vH;kj.k ¼oU; ik.kh vH;kj.;½

यह भी वनभैंसों के संरक्षण हेतु 1983 में स्थापित बस्तर का दूसरा प्रमुख वन्य प्रणाली अभ्यारण्य है। दंतेवाड़ा जिले में जिला मुख्यालय से 55 किलोमीटर की दूरी पर 262 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला जंगली भैंसों के लिए प्रसिद्ध है।

NÙkhlx< Hkk"kk ¼ckyh½

छत्तीसगढ़ी भाषा को प्राचीन काल में 'कोसली' कहा जाता था, किन्तु विगल दो–ढाई सौ वर्षो से दक्षिण कोसल को छत्तीसगढ़ कहे जाने के कारण यहां की लोक भाषा 'कोसली' को छत्तीसगढ़ी कहा जाने लगा। यह संस्कृत की अनुगामिनी है। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इसे संस्कृत की पठियारी बहन कहा है। छत्तीसगढ़ में प्राप्त हुए शिलालेखों के प्रमाण के आधार पर छत्तीसगढ़ के जन्मदाता प्राचीन भाषा रूप की जड़ें ईसा–पूर्व तृतीय शताब्दी तक पहुँचती है। इसके पहले ईसा–पूर्व चतुर्थ शताब्दी के मागधी प्राकृत के शिलालेख पूर्व दिशा में तथा शौरसेनी प्राकृत के

शिलालेख उत्तर–पश्चिम दिशा में मिले हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि इन दो प्राकृतों के मध्य के क्षेत्र में इनके मिश्रण से एक भिन्न प्राकृत का स्वरूप निर्मित हो रहा था, जिसमें शौरसेनी की तुलना में मागधी के लक्षणों के अधिक प्रयुक्त होने के कारण 'अर्धमागधी' शब्द से अभिहित किया गया। उपर्युक्त तीनों प्राकृतों की अनुवांशिक संबद्धता आज भी क्षेत्रीय भाषाओं–अर्धमागधी–प्रसूत छत्तीसगढ़ी के रूप में और उत्तर–पश्चिम में शौरसेनी–प्रसूत बुंदेली के रूप में देखी जा सकती है। छत्तीसगढ़ में भी उत्तर भारत के विविध क्षेत्रों के समान संस्कृत का स्थान ईसा की तीसरी शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक प्रतिष्ठित रहा, जिसके प्रमाण स्वरूप यहां उस अवधि के लगभग एक सौ शिलालेख विद्यमान है। बाद की दो शताब्दियों के शिलालेखों में क्षेत्रीय बोलियों का वर्चस्व है।

छत्तीसगढ़ी बोली–भाषा क्षेत्र के दक्षिण–पूर्वी विस्तार को संभाले हुए है और मानक हिन्दी की सहभागिता के साथ छत्तीसगढ़ के घरों और गलियों में, खेतों और लोक–संस्कारों में, मातृजात सलिला के रूप में प्रवाहित है।

NÙkh lx<h ykd ep

आज विश्व स्तरि पर चर्चित है और छत्तीसगढ़ी की लगभग दस–बारह मंडिलियां और उनके लगभग एक सौ पचास कलाकार दुनियां भर में आमंत्रित किये जाते हैं। इन्होंने अपनी विशिष्ट अभिनय क्षमता, गायन–वादन की विशिष्टता, लोक–नृत्य की दक्षता और अपने लोकरंगी परिवेश से दुनिया भर के संस्कृति प्रेमियों को आकर्षित किया है। भारत महोत्सव, अपना उत्सव, लोकोत्सव, लोकरंग, छत्तीसगढ़ लोक कला महोत्सव, परब महोत्सव, जगार (भिलाई, भाटापारा, रायपुर) एस.ई.सी.एल. महोत्सव, बिलासा महोत्सव (बिलासा कला मंच, बिलासपुर) बसंत जगार आदि लोक मंचों से विगत बीस वर्षो से अपनी अद्‌भूत और विशिष्ट कलात्मक प्रतिभा से जन–मन को मोह लेने वाले इन कलाकारों दको हम छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक दूत कह सकते हैं। इनके सबल हाथों से हमारी लोक संस्कृति का ध्वज सम्हाला हुआ है और भारत के सभी हिस्सों में चाहे वह दक्षिण भाषी तमिल, कन्नड़, आंध्र और मलयाली क्षेत्र हो या बहुभाषी पश्चिमी या पूर्वी क्षेत्र अथवा हिन्दी

भाषी उत्तरी क्षेत्र हो : अंडमान, पांडिचेरी अथवा गोवा हो हर जगह इन छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों ने यहां की संस्कृति का परचम फहराया है।

ये कलाकार विश्व भर में पहुंच रहे हैं। इंग्लैंड, रूस, चीन, जर्मनी, जापान, फ्रांस आदि के साथ ही छोटे–छोटे राष्ट्र जिनमें बांग्लादेश, मारीशस, अरब, श्रीलंका आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, के मंचों पर ये अपनी उल्लेखनीय कलात्मक उपस्थिति दर्ज करा आये हैं।

NÙkhlx<h jix eip & ukV; lLFkk,i

इस क्षेत्र में स्व. दाऊ रामचंद्र देशमुख का नाम सर्वप्रथम आता है जिन्होंने चदैनी गोंदा जैसा मंच इस क्षेत्र को देकर छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य को नयी चेतना दी। आगे चलकर इसी के कलाकार श्री हबीब तनवीर के 'नया थियेटर' नई दिल्ली में मंचन कर 'चरण दास चोर', 'माटी की गाड़ी', 'गांव के नांव ससुरार मोर नांव दमाद', 'बहादुर कलारिन' और 'आगरा बाजार' नामक लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी नाट्यों द्वारा छत्तीसगढ़ी लोक कला को लोकप्रिय बनाया, इसके मदन यादव और फिदाबाई मरकाम जैसे कलाकार अन्य कला मंचों के पास नहीं हैं। चंदैनी गोंदा, सोनहा बिहान, कारी, लोकिर चंदा, हरेली, लोक मंजरी, लोक रंग आदि ऐसी विशिष्ट सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ छत्तीसगढ़ी मंच को धन्य कर चुकी हैं जो यहां के सांस्कृतिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन सभी मंचों ने अभिनव, नृत्य, गायन, गद्य वादन आदि विविध क्षेत्रों में ऐसे विख्यात कलाकार दिये जिनसे छत्तीसगढ़ी लोककला मंच लोकप्रिय बना।

ykd ukV;

यहां के प्रमुख लोक नाट्य नाचा (गम्मत) एवं रहस है। नाट्य के क्षेत्र में दुर्ग जिले की मटेवा नाचा पार्टी प्रसिद्ध है जिस प्रकार आज से लगभग चार दशक पूर्व श्री दुलार सिंह साहू उर्फ मंदराजी दाऊ की 'खेली' और 'श्री ठाकुर राम की 'रिंगनी नाचा पार्टियाँ' जन–जन के बीच लोकप्रिय थी। इन दोनों पार्टियों के दस–बारह कलाकारों, गायकों को साथ लेकर श्री हबीब तनवीर की संस्था ने विश्वप्रसिद्ध प्राप्त की लेकिन खेली और रिंगनी नाचा पार्टियाँ खत्म हो गई। इसके बाद 'मटेवा नाचा

पार्टी' के नाईक दास और झुमुक दास बघेल की जोड़ी भी प्रसिद्ध हुई। रायखेड़ा नाचा पार्टी, फुड़कर नाचा पार्टी भी प्रसिद्धि की दृष्टि से चर्चित रही हैं।

NÙkhl x<h ykdukV;

लोकनाट्य अपने आप में एक समग्र लोकविधा है जिसमें लोकसाहित्य की सभी विधाओं का समावेश होता है, पारम्परिक संगीत, नृत्य, अभिनय और कथानक से मिलकर लोकनाट्य का सृजन होता है। लोकनाट्य लोकजीवन का संपूर्ण प्रतिबिम्ब होते हैं। लोकनाट्य सामाजिक अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा साधन है।

लोक में अपने मनोरंजन की मौलिक परम्पराएँ हैं। हर अंचल में अपने–अपने ढंग की लोकरंग शैलियों का पारंपरिक विकास हुआ है, जिन्हें हम लोकनाट्य कहते हैं। लोकांचलों में लोकनाट्यों के अपने सीानीय नाम और पहचान हैं। लोकनाट्य के प्राचीन रूप को उत्तर भारत में रास, नौटंकी रासलीला आदि प्रचलित रूपों में जाना जाता है। महाराष्ट्र में गोधल, तमाशा, गुजराम में मवाई, बंगाल में जात्रा दक्षिण भारत में कथकली पर कृष्णलीला का प्रभाव हैं। राजस्थान में कठपुतली, छत्तीसगढ़ी में रामलीला, कृष्णलीला, रास गम्मत आदि लोकनाट्य प्रचलित है। इस प्रकार देश भर में लोकनाट्यों की लंबी और समृद्ध परम्परा दिखाई देती है।

छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य लोकमंच के रूप में बहुत समय से लोक मानस को उपदेश और मनोरंजन प्रदान करता है। '' छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य गीत, नृत्य, अभिनय की त्रिवेणी है। यह छत्तीसगढ़ी जनमानस के मनोरंजन का एक मात्र साधन तथा जीवन दर्शन का सुंदर गुंफन है। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य में कथानक, लोकवार्ता, काव्यमयी संवाद, विशेष पात्र, हास्य रस, चरित्र चित्रण एवं संगीत का प्रयोग आदि इसकी विशेषताएँ हैं। छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य की परंपरा अति प्राचीन है।

jgl& NÙkhlx< dh le') lkLd'frd ijijk dk irhd

'रहस' रस या रासलीला। रहस, रास का छत्तीसगढ़ी रूपांतरण है। संगीत नृत्य प्रधान कृष्ण का विविध लीलाभिनय। रहस छत्तीसगढ़ की अनुष्ठानिक नाट्य विधा है, जो यहां के समृद्ध लोकरंग का संपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है।

'रहस' छत्तीसगढ़ के बिलासपुर संभाग विशेषकर बिलासपुर, रतनपुर, मुंगेली, जांजगीर व बिल्हा में बेहद लोकप्रिय है और इसी क्षेत्र ने इसे जीवंत बनाए रखा है। ब्रज से छत्तीसगढ़ तक रहस नाट्य विधा के रूप में कैसे और कब आया होगा यह प्रश्न अनुत्तरित है। यहां इसे कुछ लोग 300 वर्ष पूर्व और कुछ 19वीं शताब्दी के आरंभ में इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। प्रारंभिक दिनों में रहस कथात्मक संगीत के रूप में था। नृत्य, अभिनय और रंगमंच के वर्तमान स्वरूप का विकास बाद में हुआ। रहस का उद्‌गम श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध, रास बिहार व ब्रज विलास से हुआ है। यहां 'रहस' की बाबू रेवाराम की पाण्डुलिपियाँ' प्रचलित हैं।

रहस के दो स्वरूप छत्तीसगढ़ में प्राप्त होते हें – एक खड़े साज तथा दूसरा बैठे साज का। बैठे साज का रहस अंचल में कम ही होता है। यह वैयक्तिक आयोजन होता है और इसमें ब्रज भाषा की शुद्धता पर ध्यान दिया जाता है। यह रहस केवल रतनपुर में होता है।

जो 'रहस' ज्यादा लोकप्रिय और प्रचलित है वह 'खाड़े साज' का है। यह सामूहिक आयोजन होता है और आमतौर पर पूरा गांव इसका मंच होता है। रहस को कई लीलाओं में विभाजित करके खेला जाता है। राजा भोज की वंशावली से उग्रसेन को कृष्ण द्वारा राजगद्‌दी सौंपने तक कथा चलती है। कंस जन्म, कंस का अत्याचार, देवकी विवाह, देवकी पर कंस का आक्रमण, कृष्ण का गोकुल पहुँचना, पूतना मरण, कृष्ण का नामकरण, अन्नप्रासन, सखियों द्वारा कृष्ण को गालीा, बकासुर वध, यशोदा विरह, चीरहण, गोवर्धन लीला, रासलीला, महारास मंगल लीला, राधा विलाप, सुदामा माली लीला जैसे अनेक प्रसंग रहस के आकर्षण होते हैं।

रहस के आयोजन का आरंभ थुन्ह (एक प्रतीक खंभ) गाड़ने से होता है और मूर्तिकार द्वारा मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। रहस के रंग मंच को 'बेड़ा' कहा जाता है। नागनाथन तालाब में, महारास गौठान में और कंस वध मूर्तियों के पास होता है। 9 से 11 दिनों का रहस रात्रि 8–9 बजे से शुरू होकर सुबह 6 बजे तक चलता है। मुख्य पात्र रासदारी होता है जो कथा वाचन, व्याख्या, संगीत निर्देशन आदि का कार्य करता है। उसके साथ उसकी मंडली होती है। आजकल नाचा या छैला पाटी भी रहस का अंग बन गई है।

रहस का उत्स ब्रज से है, पर छत्तीसगढ़ी जीवन और संस्कृति से मिलकर यह अपने स्वतंत्र स्वरूप में यहां विद्यमान है। छत्तीसगढ़ी जीवन व संस्कृति के मूल तत्वों से परिचित कराने वाला यह आयोजन अंचल की समृद्ध परंपरा का दर्पण है।

ukpk % NÙkh lx<h ykdukV; dh ykdfi; fo/kk

छत्तीसगढ़ में रहस के अतिरिक्त गम्मत और नाचा लोक मनोरंजन की नाट्य विधा है। नाचा छत्तीसगढ़ का एक अंतर जातीय लोक नृत्य है। यह महाराष्ट्र के तमाशा से प्रभावित है। गीत, प्रहसन, संवाद तथा व्यंग का समावेश इसके महत्वपूर्ण पहलू हैं। समूचे छत्तीसगढ़ में नाचा सर्वप्रसिद्ध हैं। छोटे से गांव में नाचा के कलाकार और मंडलियाँ मिलती हैं। आज नाचा छत्तीसगढ़ की पहचान बन गया है क्योंकि नाचा के कलाकार और नाचा की विशिष्ट छत्तीसगढ़ी लोक शैली अपने अंचल की सीमाओं को लांघ कर प्रदेश, देश और अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक मंचों तक पहुँच गई है।

यह दुर्ग, रायपुर और राजनांदगांव जिलों में अधिक प्रचलित है। नाचा का मंच किसी भी स्थान पर बनाया जा सकता है। वादक बैठ कर संगत करते हैं। सामान्यतः हारमोनियम, मंजीरा, बेंजो, तबला और ढोलक आदि वाद्यों का उपयोग होता है। परी (नर्तक) वादकों के सामने गीत गाते हुये नृत्य करता है। गीतों पर कोई पाबंदी नहीं होती। ये लोकशैली में गाये जाते हैं, किन्तु आजकल फिल्मी गीतों के तर्ज पर गाये जाने लगे हैं। गीतों की एकरसता को तोड़ने के लिये बीच–बीच में प्रहसन प्रदर्शित किया जाता है। प्रहसन को तमाशा भी कहते हैं। नर्तक पहले पुरूष ही हुआ करते थे, किन्तु आजकल महिलाएँ भी नृत्य करने लगी हैं।

इसके द्वारा किसी भी घटना को तुरंत प्रस्तुत किया जा सकता है। सामाजिक कुरीतियों, विषमताओं, दूषित राजनीति, ढोंग और आडम्बरों पर तीखी चोट नाचा द्वारा की जाती है। नाचा के अंतर्गत 'गम्मत' का विशेष महत्व होता है। इनमें हास्य व्यंग्य का पुट पाया जाता है। इसमें जोकर की अहम भूमिका होती है। जीवन के किसी भी मार्मिक प्रसंग को इसका आधार बनाया जाता है। सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक सभी स्तर पर लोकमानस जिस बात को स्वीकार नहीं कर पाता, उसका मखौल वह नाचा द्वारा करता है।

विवाह, मंड़ई, गणेशोत्सव, दुर्गोत्व, जवांरा उत्सव तथा खुशी के किसी भी अवसर पर नाचा के प्रति लोगों में उत्साह आश्चर्यजनक होता है।

NÙkhlx< d! vkfnoklh ykd ukV;

Hkrjk ukV

बस्तर की जनजाति में नाट्य का एक पूर्ण विकसित एवं सशक्त स्वरूप पाया जाता है, इसे बस्तर में 'भतरा नाट' के नाम से जाना जाता है। 'भतरा नाट' बस्तर में उड़ीसा से आया है, इसलिये कुछ लोग इसे 'उड़िया नाट' भी कहते हैं। यह बस्तर के भतरा जनजाति के लोगों द्वारा किया जाने वाला नृत्य नाट्य है। अतः इस नाट की बोली 'भतरी' होती है।

भतरा नाट की कथावस्तु के उद्गम पौराणिक प्रसंग ही हैं। इसमें अभिमन्यु वध, कीचक वध, जरासंध वंध, हिण्यकश्यप वध, दुर्योधन वध, रावण वध, लक्ष्मीपुराण, नाट, मेघनाथ शक्ति, रूक्मिणी रमण, लंकादहन और कंस का वध बहुत ही प्रसिद्ध है। जहां एक ओर इसमें हास्य और व्यंग्य होता है।, वहीं किसी न किसी कृत्य पर तीखा प्रहार भी होता है। नाटक का मंचन खुले मैदान में किया जाता है। चारों किनारों पर लकड़ी के खम्बे गाड़कर ऊपर ऊपर मण्डप (चंदोवा) तान दिया जाता है। नाट्य के साथ में मृदंग, नंगाड़ा, मंजीरा, कभी–कभी प्रसंगानुसार मोहरी का भी प्रयोग किया जाता है। अधिकांश नाट युद्ध प्रधान होते हैं।

भतरा के सभी कलाकार पुरूष होते हैं। मंडली में 25 से 40 कलाकार होते हैं। सूत्रधार के माध्यम से नाट की शुरूआत होती है। नाट की वेशभूषा अत्यंत भव्य एवं कीमती होती है। साटन, मखमल के चमकदार रंगीन वस्त्रों पर कांच के रंग–बिरंगे मोतियों एवं रंगीन रेशमी धागे के कसीदे से परिधान तैयार किए जाते हैं। हनुमान, गणेश, जामवंत, ताड़का, बालि, सुग्रीव, नृसिंह आदि पात्रों के लिए मुखौटा प्रयोग में लाये जाते हैं। बस्तर में इस नाट की वर्तमान स्थिति एक पूर्ण विकसित

नाट्य विधा के रूप में है। भतरा नाट में भारतवर्ष की प्रतिष्ठत एवं पारम्परिक अन्य नाटक शैलियों के सभी तत्व पाये जाते हैं।

ekvkikVk

माओपाटा मुरिया जनजाति की एक शिकार नाटिका है। इसमें बड़ी खूबी तो नकल की जाती है। चेहरे पर काजल, मिट्टी और राख का प्रयोग मेकउप के रूप में किया जाता है। मंच पर शिकार कथा को उसकी पारंपरिकता के साथ दिखाया जाता है। कथा यह है कि एक गांव है। गाय या भैंस का शिकार पाकर सभी नाचते–गाते हैं। गाय या भैंस को घेरकर शिकार करते हैं। इसी बीच एक शिकारी घायल होकर बेहोश हो जाता है। उसे ‘सिरहा’ मंत्रोच्चारण करता हुआ झाड़ने का अभिनय करता है। बेहोश शिकारी होश में आता है। फिर गाय या भैंस का शिकार कर लिया जाता है। सभी शिकारी नाचते हैं और नाट्य पूर्ण होता है।

NÙkhlx<+h Hkk"kk ds ik.k vkSj laLd`fr dh vkRek

Tkutkrh; dyk,¡

आदिवासी पारंपरिक कलाएँ किसी न किसी अनुष्ठान और पर्व–उत्सव से जुड़ी होती हैं। ये दो प्रकार की होती है– प्रदर्शनकारी कलाएँ और रूपंकर कलाएँ। प्रदर्शनकारी कलाओं के अंतर्गत नृत्य, नाट्य आदि आते हैं, जिनका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है। रूपंकर कलाओं के अंतर्गत वे सभी कलाएँ आती हैं, जिनके द्वारा आदिवासी अपने कलाभाव को रूपाकार देते हैं।

feV~Vh f'kYi

मिट्टी शिल्प आदि शिल्प है। मनुष्य ने सबसे पहले मिट्टी के बर्तन बनाये। मिट्टी के खिलौने और मूर्तियां बनाने की प्राचीन परंपरा है। लोक और आदिवासी दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली वस्तुओं के साथ कुम्हार परंपरागत, कलात्मक रूपाकारों का भी निर्माण करते हैं।

dk"B f'kYi

काष्ठ शिल्प की परंपरा बहुत प्राचीन और समृद्ध है। लकड़ी में विभिन्न रूपाकारों को उतारने की कोशिश मनुष्य ने आदिम युग में शुरू कर दी थी। अलंकरण से लेकर मूर्ति शिल्प तक की समृद्ध काष्ठ कला मंदिरों, आवासों आदि में देखी जा सकती है।

cka l f'kYi

बांस जनजातीय जीवन एवं संस्कृति से जुड़ा महत्वपूर्ण वनोपज है। इनसे निर्मित जीवनोपयोगी वस्तुएँ सौन्दर्यपरक होती है। आजकल बांस शिल्प इनकी जीविका के साथ अभिन्नता से जुड़ गया है। बस्तर में बांस कला का उत्कृष्ठ रूप दिखाई देता है।

d?kh dyk

जनजातीय समाज में अनेक प्रकार के कंघियों का प्राचीन काल से ही प्रचलन रहा है। इनमें कंघियों का इतना अधिक महत्व है कि कंघियाँ अलंकरण गोदना एवं भित्ति चित्रों में एक अभिप्राय के रूप में हमेशा प्राप्त होती है।

iÙkk f'kYi

पत्ता शिल्प के कलाकार मूलतः झाड़ बनाने वाले होते हैं। छिन्द के पत्तों से कलात्मक खिलौने, चटाई, आसन, दूल्हा–दुल्हन के मोढ़ (मोर), खिलौने, सज्जा वस्तुएँ आदि बनाये जाते हैं। कोमल हरे पत्तों का उपयोग कर अनेक दैनिक उपयोग की वस्तुएँ कुछ जनजातियों के आय का जरिया है।

dksl k f'kYi

प्रदेश में प्राकृतिक कोसा (टसर) उत्पादन में बस्तर का पहला स्थान है। कोसा प्राकृतिक रूप से जंगलों में पाया जाता है, जिसे आदिवासी संग्रहित करते हैं। आदिवासी सहकारी विकास संघ द्वारा जगदलपुर में टसर वस्त्र के उत्पादन के लिए कोसा बुनाई केन्द्र स्थापित है।

/kkrq dyk

बस्तर, सरगुजा और रायगढ़ जिले में धातु कला का काम करने वाली जातियाँ है। बस्तर में घड़वा, सरगुजा से 'मलार' नामक जाति तथा रायगढ़ जिले में 'झारा' धातु मूर्ति कला के लिए विशेष विख्यात हैं और आज भी यह कार्य कर रहे हैं। ये विविध प्रकार के रूपाकारों–मूर्तियों का निर्माण करते हैं।

?kMok dyk

बस्तर में निवास करने वाली घड़वा जाति शिल्प कला के लिए प्रसिद्ध है। घड़वा कला की तकनीक प्राचीनतम और परम्परागत है, जिसमें भ्रष्ट मोम पद्धति (Lost Wax Method) का प्रयोग होता है। पीतला, कांसा और मोम से बने घड़वा शिल्प बस्तर के आदिवासियों के देवलोक से जुड़े हुए है।

ykg f'kYi

बस्तर में मुरिया–माड़िया आदिवासियों के विभिन्न अनुष्ठानों में बने दीप स्तम्भों के साथ देवी–देवताओं, नाग और पशु–पक्षियों की मूर्तियाँ अर्पित करने की परंपरा है। बस्तर में लौह शिल्प का कार्य लोहार जाति के लोग करते हैं, जिनका यह पैतृक व्यवसाय है।

tutkrh; fp=dyk

आदिम जातियों में प्रागैतिहासिक काल में ही जीवन का सौन्दर्यबोध विकसित हुआ। गुहा गृहों की दीवारों पर अलंकरण और शिकार के चित्र इसके प्रमाण है। घर की धारणा बनते ही घर की दीवारों को अलंकृत करने की तीव्र लालसा में भित्तों पर चित्र और अलंकरण के विभिन्न रूपाकार हमें सभी जनजतियों और जातियों की ग्रामीण स्थापत्य कला में आज भी दिखाई देते हैं। आदिवासी चित्र परंपरा की महत्वपूर्ण विशेषता उनकी स्मृति तथा मिथकीय बिम्बों का प्रयोग है। आदिवासियों के मस्तिष्क में अनेक पीढ़ियों के अनुभवों का संचय होता है, जिसे 'जातीय स्मृति' की संज्ञा दी गई है। यही स्मृतियाँ इनके चित्रों में अपनी परंपरा के अनुसार अलग–अलग रूपों में हर समय उतर कर आती है। ये स्मृतियाँ मिथकों के बिम्ब ग्रहण करती हैं तथा विविध रूपाकारों से सृजन के स्तर तक पहुँचती है। इन

जनजातियों के पास अपनी पारंपरिक कला के आदिम अभिप्राय, अलंकरण तथा रेखाओं के हजारों रूप–रंग मौजूद हैं, जो अपनी परंपरा और समकालीन सौंदर्य के दायरे में हर समय पुनः सृजित और परिवर्तित होते रहते हैं।

बस्तर के मुरिया, माड़िया, रायगढ़, सरगुजा के पंडों, कंवर, रजवार आदि में पारंपरिक चित्रकला, उद्रेखण कला (रिलीफ वर्क) और मिट्टी से तरह–तरह की कलात्मक जालियाँ, कोठियां, पशु–पक्षी, मूर्तियाँ, स्थानीय देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनाने की प्रथा मिलती है। सरगुजा में घरों की दीवारों को विशेष लाल, कालीा, पीली मिट्टी से पोतने का रिवाज आमतौर पर दिखाई देता है। विभिन्न पर्व–त्यौहारों पर द्वार सज्जा और मांड़ने, चौक पूरने की परंपरा है। बस्तर के प्रस्तर मुरिया स्तंभों (मृतक) स्तंभ) में एक विकसित विषण पूर्ण एवं भावपूर्ण चित्रकला देखने को मिलती है। उपयोगी वस्तुओं में खुदाई कर चित्रांकन करने की कला में बस्तर की जनजातियाँ अग्रणी है।

NÙkh lx< e: vk/kfud jxde

नाट्य, कला की एक बहुरंगी विधा है, इसीलिये नाट्य का दर्शन जिस स्थल मंच में होता है, उसे रंगभूमि अथवा रंगमंच कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'थियेटर' कहा जाता है। नाट्य उतना ही प्राचीन है, जितनी हमारी सभ्यता। आदिकाल से मानव किसी न किसी रूप में अपने समुदाय में नाट्य का आयोजन करता रहा है। भले ही ऐसे आयोजनों के अभिप्राय में न्यूनाधिक भिन्नातएँ हो, पर भावाभिव्यक्ति प्रमुख तत्व आरंभ से रहे हैं। शास्त्रों में नाट्य को पांचवें वेद की संज्ञा दी गई है।

छत्तीसगढ़ की नाट्य परंपरा जितनी समृद्ध है, उतनी देश के अन्यत्र किसी अंचल की नहीं। अंचल में नाट्य परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इस बात का पुख्ता साक्ष्य रामगढ़ का विश्व का प्राचीनतम प्रेक्षागृह है। यहां ईसा के तृतीय–द्वितीय शताब्दी पूर्व एक विकसित नाट्य विधा के प्रचलन का पता चलता है। यहां प्राप्त लेख एवं भित्तिचित्रों के अध्ययन के बाद विद्वानों का मत है कि कालीदास ने 'मेघदूत' की रचना यहीं की होगी एवं नाट्य मंचन भी।

दूसरी ओर दाऊ रामचंद्र छत्तीसगढ़ी लोकला के संवर्धन, संरक्षण व विकास के लिये तन–मन और धन से समर्पित व सक्रिय थे। वस्तुतः श्री देशमुख के 'चंदैनी गोंदा' (1971) जैसे नाट्य मंच से तैयार हुए कलाकारों का श्री तनवीर ने 'नया थियेटर' में बखूबी उपयोग किया। श्री तनवीर के प्रयासों से ही छत्तीसगढ़ अपने स्वतंत्र और विशिष्ट रंगमंच के लिये जाना जाने लगा।

छत्तीसगढ़ के प्रमुख नाट्य कर्मियों एवं नाट्य गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है– श्री तनवीर ने लोक भाषाओं में कई देशी–विदेशी नाटकों का निर्देशन व मंचन किया, कई नाटक लिखे व अनुवाद किया। इन्हें पद्मश्री, पद्मभूषण व अनेक अन्य सम्मानों के साथ इनका राज्यसभा हेतु मनोनयन भी हुआ।

NÙkh lx< d ie[k jxdeh

ineHk"k.k gchc ruohj

जन्म 01 सितंबर, 1923 को रायपुर में हुआ। इन्होंने अलीगढ़ वि.वि. से बी.ए. किया। इन्होंने रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आट्र्स लंदन से अभिनय, ब्रिस्टल ओल्ड विक थियेटर स्कूल से नाट्य प्रदर्शन तथा ब्रिटिश ड्रामा लीग लंदन से नाट्य प्रशिक्षण की शिक्षा ग्रहण की। प्रोड्यूसर के रूप में 1945 में आकाशवाणी मुम्बई में कार्य किया। आप 1946 में प्रदर्शित फिल्म इंडिया में सहायक संपादक रहे।

वर्ष 1946–53 तक अभिनय, गीत, संवाद, लेखन, विज्ञापन, लघु वृत्तचित्र निर्माण जैसी गतिविधियों में व्यस्त रहे। इन्होंने वर्ष 1954 में हिन्दुस्तान थियेटर की दिल्ली में सीापना की एवं वर्ष 1959 में अी लोककलाओं के सहयोग से नया थियेटर की सीापना की। वर्ष 1964 में आपने दूरदर्शन केन्द्र नई दिल्ली में प्रोड्यूसर के पद पर कार्य किया। इन्होंने आठ फीचर फिल्म में अभिनय तथा लोकशास्त्रीय और विदेशी कथाओं का लोक बोलियों में मंचन किया। वर्ष 1972 से 78 तक राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रहे। सम्मान – इन्हें केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार 1969, जवाहरलाल नेहरू फेलोशिप 1979–81 तथा अंतर्राष्ट्रीय नाट्य महोत्सव में फ्रिज फर्स्ट अवार्ड एडिनबरा 1982, खैरागढ़ संगीत वि.वि. से डी.लिट की मानद

उपाधि 1983, पद्मश्री 1983 एवं शिखर सम्मान 1984–85 तथा पद्मभूषण 26 जनवरी, 2002 आदि।

n|x| f t y|k

चूँकि मेरा शोधकार्य लोकनाट्य के क्षेत्र में दुर्ग जिला के विशेष संदर्भ से संबंधित है। अतः दुर्ग जिला का संक्षिप्त परिचय देना भी आवश्यक है। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में दुर्ग जिला एक ऐसा जिला है जहाँ पर लोक नाट्य, परम्परा अत्यंत विकसित हुई है। इसके संरक्षण एवं सवर्धन करने वाले दाउ मंदराजी, रामचन्द्र देशमुख जी, महासिंग चन्द्राकर, रामहृदय तिवारी जी, दीपक चन्द्राकर जी, शैलजा चन्द्राकर, मदन निषाद, अबीब तनवीर, प्रेम साइमन इत्यादि का यह मुख्य निवास स्थान है।

n|x| f t y|k d|k i|o| bfr|k|l

बहुत कम लोगों को पता होगा कि रायपुर और राजनांदगांव के बीच का दुर्ग नगर किस समय राजपाल दुर्ग के नाम से प्रसिद्ध था और उसके साथ भी अपूर्व–अपूर्व आख्यायिकाएँ जुड़ी हुई थी।

कहा जाता है कि वहाँ के सारनाबांध तालाब को नौ लाख ओड़ियों ने एक रात में खोद डाला था और तालाब खोद डालने के बाद उन्होंने जो अपनी–अपनी टोकनियाँ झाड़ दी थी उसी झाड़न के ढेर से ''टोकनी भरौनी'' नामक पहाड़ी का निर्माण हो गया जो किसी न किसी रूप स`अब भी दुर्ग के रेलवे स्टेशन के पास विद्यमान है।

वह जो कुछ हो परन्तु दुर्ग की प्राचीनता में तो कोई संदेह ही नहीं। अंग्रेजों ने दुर्ग को दग बना डाला था और उसके हिज्जे इस प्रकार कर दिये थे कि वह 'ड्रग' भी पढ़ा जा सकता था, जिसका अर्थ हो जाता है दवादारू। वर्तमान समय के इस छोटे से सुविधाहीन शहर को (शहर क्यों, एक कस्बा ही समझिये) न जाने किस मर्ज की दवा समझकर इसका नाम रख दिया डी.आर.यू.जी.।

भला हो अपनी देशी सरकार का उन्होंने फिर से इसका नाम बदला और इसे दुर्ग से दुर्ग बना दिया। भविष्य की उन्नति के लक्षण इसमें अभी से वर्तमान है

ही और यदि भिलाई का कारखाना चल निकला तो भलाई में अर्थात् संपत्ति का वास्तविक दुर्ग बन जाने में इसे कोई देर न लगेगी।

आठ सौ वर्ष पुरानी बात है जब मिर्जापुर जिले का एक राजमाल जगपाल सिंह अपनी किस्मत आजमाने छत्तीसगढ़ की ओर चल पड़ा। भरा–भरा गठा हुआ बदन। ऊँची–ऊँची चढ़ी हुई मूछें। अनेकों सर्दी गर्मी खाया हुआ पक्का–पक्का रंग। और, हजारों की भीड़ को अपनी ओर खींच सकने वाली रोबदार आंखे। वह राजमाल मानों जन्म से ही अफसरी का सौभाग्य लेकर आया था। छत्तीसगढ़ की राजधानी थी रतनपुर में। रतनपुर–नरेश का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हुए बिना न रहा। महाराज रत्नदेव ने उसे अपना कोषाध्यक्ष बना लिया। बहादुर जगपाल सिंह को तो एक सहारा भर मिलना चाहिए था। फिर तो अपने पौरूष और पराक्रम के बल पर वह बहुत कुद कर दिखा सकता था। उसे कोषाध्यक्ष पद में ऐसा सहारा मिल गया।

महाराज रत्नदेव स्वतः बहुत प्रतापशाली थे। उन्होंने तो रत्नपुर बसाया था। उन्हें मिल गया जगपाल का–सा बहादुर। एक सच्चे बहादुर ने दूसरे सच्चे बहादुर को तुरंत परख लिया और इन दो का संयोग ऐसा हो गया जैसे आंधी और दावानल का संयोग हो जाय करता है। खजांची केवल सिक्का बहादुर ही होकर नहीं बैठा रहा किन्तु तलवार बहादुर होकर झारखंड, उड़ीसा और मद्रास के छोर तक उसने रत्नपुर–नरेश की विजय वैजयन्ती फहरा दी। सिंह छत्तीसगढ़ के जंगलों से आकर वास्तविक जगपाल बन गया।

महाराज रत्नदेव उन हृदयहीन सूद्र शासकों में न थे जो असाधारण प्रतिभा सम्पन्न अथवा असाधारण शक्ति–सम्पन्न व्यक्ति को भी सर्वसाधारण की नियमावली ही में बांध रखते और इस प्रकार अन्य भृत्यों की तरह उसे केवल एक यांत्रिक जीवन व्यतीत करने ही को बाध्य कर दिया करते हैं। उन्होंने जगपाल सिंह की योग्यता का मूल्य पूरी इज्जत के साथ चुकाया। बड़े सम्मान के साथ उन्होंने सात सौ गांवों सहित दुर्ग का यह इलाका जगपाल सिंह को जागीर के रूप में दे दिया।

कहते हैं यहाँ उस समय किसी शिवसिंह नरेश के शिवपुर और शिवदुर्ग विद्यमान थे। कदाचित वे दोनों वस्तुएँ ध्वस्त प्राय हो चुकी थी। जगपाल सिंह ने

प्राचीनता को नवीनता प्रदान की और शिवपुर की जगह जगपालपुर पनपाया तथा शिवदुर्ग की जगह जगपाल दुर्ग।

जगपाल जगपाल सिंह अपने इस नये दुर्ग में आकर रहने लगा। वह था वैष्णव और यहाँ फैला हुआ था बौद्ध धर्म। वह धर्म भी कदाचित् ब्रजयानी वाममार्गियों के फेर में पड़ कर बिगड़ा हुआ बौद्ध धर्म था न कि शुद्ध बौद्ध धर्म। जगपाल सिंह चाहता तो राजनैतिक क्रांति की तरह धार्मिक क्रांति में भी इधर कमाल कर जाता। परन्तु भारतीय वीर धर्म के नाम पर आपस में शायद ही कहीं लड़े–भिड़े हो। इसलिए तो भारत के अंतिम सम्राट हर्षवर्धन के परिवार में भी शैवो, वैष्णावों और बौद्धों का समान आदर था और इसीलिये तो एलोरा चमत्कारपूर्ण कलास्थलों में जैन, बौद्ध और शैवमंदिर साथ–साथ सरीखे विराजमान है। जगपालसिंह भी वैष्णव होकर शैव सम्राट रत्नदेव का जागीरदार रहा और बौद्ध प्रदेश दुर्ग के क्षेत्र का शांतिपूर्ण अधिकारी रहा। यहाँ के मठ मंदिरों में उसने किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं किया। यही तो उसकी सच्ची वैष्णवता थी।

किन्तु यहाँ से चालीस मील दूर महानदी के तट पर उसने अलबत्त अपनी वैष्णव भक्ति का एक बड़ा सुंदर स्मारक बनावा दिया। वह है श्री राजीवलोचन का मंदिर जो राजिम नामक स्थान में है। कहा जाता है कि जगपाल सिंह नित्य वहाँ भगवान् राजीव लोचन के दर्शन करने आया करता था। बड़ा तेज घोड़ा रहा होगा उसके पास।

राजीव लोचन मंदिर का एक पत्थर भी अपने वृक्षस्थल पर जगपाल सिंह की कार्यावली का इतिहास अंकित किये हुए पड़ा है। दुर्ग का दुर्ग तो ढह चुका और उस दुर्ग की खाई कई तालाबों में परिगत हो चुकी है परन्तु भगवान राजीव–लोचन का मंदिर और उसमें पड़ा हुआ वह पत्थर का टुकड़ा अब भी जगपाल सिंह की कीर्ति को ऊँचा किये हैं।

orZeku nqx ftyk dk Lo:i

nqx ftyk dk lkekU; ifjp;

छत्तीसगढ़ राज्य के हृदय स्थल पर शिवनाथ नदी के पूर्व में स्थित है दुर्ग जिला। जो $20^0$51′ उत्तर अक्षांश से $21^0$32′ उत्तर अक्षांश तक तथा $81^0$8′ पूर्व देशांतर तक फैला हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल 271862 हेक्टेयर है। जिले के बीच से राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक –06 (मुम्बई–नागपुर–कोलकता राजमार्ग) गुजरता है। रेल्वे की दक्षिण–पूर्व रेल सेवा यहाँ उपलब्ध है। दुर्ग जिले का निकटस्थ हवाई अड्डा रायुपर एयरपोर्ट है जो यहाँ से लगभग 60 किलोमीटर दूर स्थित है। जिला ऊपरी शिवनाथ–महानदी घाटी के दक्षिण–पश्चिम भाग में स्थित है। जिले का अधिकतम हिस्सा छत्तीसगढ़ की मैदानी हिस्सा है। दुर्ग जिला छत्तीसगढ़ में औद्योगिक विकास का अग्रदूत है। जहाँ भिलाई इस्पात संयंत्र की स्थापना के साथ न सिर्फ जिले बल्कि संपूर्ण प्रदेश का चौतरफा औद्योगिक विकास हुआ है। इसके साथ ही दुर्ग जिला सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक सामंजस्य, संसाधनों के अर्थपूर्ण उपयोग एवं विभिन्न जातियों एवं धर्मो के लोगों के बीच आपसी सौहार्द्र के लिये भी जाना जाता है। दुर्ग जिला छत्तीसगढ़ राज्य का गौरव हे। पुरातनकाल स`अब तक दुर्ग जिले का इतिहास और वर्तमान अपने आप में प्राचीन मूल्यों और आधुनिकता का अद्भूत समन्वय है। यहाँ एक ओर तो सांस्कृतिक मूल्य गहराई से जुड़े हुए हैं तो वहीं निरंतर पल्लवित होती उद्यमिता इसे एक औद्योगिक जिले के रूप में स्थापित करती है।

- दुर्ग जिले का वर्तमान स्वरूप 01 जनवरी सन् 2012 से हे।
- जिले का कुल क्षेत्रफल 271862 हेक्टेयर है।
- जनगणना 2011 के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 17,21,948 हे। जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 6,17,248 (35.84%) एवं शहरी जनसंख्या 11,04,700 (64. 16%) है।
- दुर्ग जिले की सीमाएँ पड़ोसी जिलों राजनांदगांव, रायपुर, बेमेतरा, बालोद, धमतरी को स्पर्श करती है।
- जिले की अधिकांश सीमाएँ खारून और शिवनाथ नदी से बनी हुई है।

ufn;k

जिले की सामान्य ढलान उत्तर–पूर्व की ओर है और इसी दिशा में जिले प्रमुख नदियाँ प्रवाहित होती है।

f'koukFk

शिवनाथ जिले की सबसे महत्वपूर्ण नदी है। और यह महानदी की सहायक नदी है। यह राजनांदगांव जिले में 625 मीटर ऊँची पानाबरस की पहाड़ियो ंसे निकलती है और दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। यह अधिकतर जिले के मध्य में बहते हुए जिले को दो भागों में बांटती है।

[kfut lalk/ku

जिले में उच्च गुणवत्ता वाले चूना पत्थर का समृद्ध भंडार है। चूना पत्थर का उत्खनन मुख्यतः नंदनी, सेमरिया, खुदनी, पिथौरा, सहगांव, देउरझाल, अहिवारा, अछोली, मातरागोटा, घोटवानी और मेडेसरा में किया जाता है। इस प्रकार उत्पादित चूना पत्थर का उपयोग जिले में ही स्थापित भिलाई इस्पात संयंत्र द्वारा इस्पात उत्पादन के लिए एवं ए.सी.सी. जामुल और जे.के. लक्ष्मी फैक्टरी द्वारा सीमेंट उत्पादन के लिये किया जाता है।

ekSle

जिले की जलवायु उष्णकटिबंधीय प्रकार की है। गर्मियों में तापमान 45–46 डिग्री सेंटीग्रेट तक पहुँच जाता है। मार्च के महीने से तापमान में वृद्धि शुरू होकर मई महीने तक होती है। मई और महिनों की तुलना में सबसे अधिक गर्म होता है। दुर्ग जिले की वार्षिक औसत वर्षा 1052 मिमी है। वर्ष के दौरान सबसे अधिक वर्षा मानसून के महीनों जून से सितंबर के दौरान होता है। जुलाई सर्वाधिक वर्षा का महीना है।

bfrgkl

जिला दुर्ग का गठन 1 जनवरी 1906 को रायपुर और बिलासपुर जिलों के कुछ क्षेत्रों को मिलाकर किया गया था। उस समय आज के राजनांदगांव और कबीरधाम (कवर्धा) जिले भी दुर्ग जिले का हिस्सा थे।

- 26 जनवरी, 1973 को जिला दुर्ग को विभाजन किया गया और राजनांदगांव जिला अस्तित्व में आया। 06 जुलाई 1998 को जिला राजनांदगांव भी विभाजित किया गया और नया कबीरधाम जिला अस्तित्व में आया।
- 1906 से पहले दुर्ग रायपुर जिले का एक तहसील था।
- 1906 में दुर्ग जिले के गठन के समय, इसमें दुर्ग, बेमेतरा और बालोद तीन तहसील थी।
- जिला फिर से 01 जनवरी 2012 को विभाजित किया गया है और दो नए जिले बेमेतरा और बालोद अस्तित्व में आये।

lnHk xFk

1. छत्तीसगढ़ वृहद संदर्भ, संजय त्रिपाठी, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 40
2. छत्तीसगढ़ विकास पथ की ओर, एन.जी.आर. चन्द्रा, आथर्स प्रेस, दिल्ली, पृ. 102
3. युगयुगति छत्तीसगढ, डॉ. सुशील त्रिवेदी, वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ. 49
4. छत्तीसगढ़ वृहद संदर्भ, संजय त्रिपाठीत्र उपकरी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 102
5. छत्तीसगढ़ वृहद संदर्भ, संजय त्रिपाठीत्र उपकरी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 49
6. छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन, मदनलाल गुप्ता, पृ. 40
7. छत्तीसगढ़ विकास पथ की ओर, एन.जी.आर. चन्द्रा, आथर्स प्रेस, दिल्ली, पृ. 72
8. छत्तीसगढ़ परिचय, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, वैभव प्रकाशन, पृ. 34
9. छत्तीसगढ़ विकास पथ की ओर, एन.जी.आर. चन्द्रा, आथर्स प्रेस, दिल्ली, पृ. 102
10. मध्यप्रदेश का इतिहास, डॉ. हीरालाल शुक्ल, पृ. 36
11. छत्तीसगढ़ लोकनाट्य : नाचा : महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग, पृ. 13
12. छत्तीसगढ़ नाचा का इतिहास, डॉ. विमल पाठक, पृ. 27
13. युगयुगति छत्तीसगढ, डॉ. सुशील त्रिवेदी, वैभव प्रकाशन, रायपुर,
14. छत्तीसगढ़ विकास पथ की ओर, एन.जी.आर. चन्द्रा, आथर्स प्रेस, दिल्ली, पृ. 84

v/;k;&2

NÙkhlx< ds izeq[k yksdukV~; dk foospu & Hkkjrk ukV] jgl ,oa ukpk&xEer

- Ukkpk dk mn~Hko] eapu; fo'ks"krk,¡] ik= okrkoj.k ,oa vU; egRoiw.kZ fcUnqvksa dk foospu

v/;k;&2
NÙkhlx< dh iez[k ykdukV~; dk foopu & Hkkjrh ukV~; jgl ,o ukpk&xEer

लोकसाहित्य की जितनी भी विधाएँ है, उनमें यह एक महत्वपूर्ण विधा है। यह विधा अति प्राचीन है। मनुष्य अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए किसी युक्ति को अपनाता है, यह युक्ति या अभिनव, मानव स्वभाव को मिलता है जो उसका स्वभावगत गुण हो जाता है।

जैसे छत्तीसगढ़ का प्रतिनिधि लोक नाट्य 'नाचा' है, वैसे ही देश के अन्य अंचलों में भी अलग–अलग प्रसिद्ध लोकनाट्य प्रचलित है। जैसे कश्मीर में भांड पथर, हिमाचल में करियाला, असम में अंकिया, हरियाणा में सांग, मध्यमप्रदेश में माच, उत्तर प्रदेश ब्रजांचल में रासलीला, उत्तरप्रदेश में नकल, गुजरात में भवई, बंगाल में जात्रा/कीर्तिनिया, उड़ीसा में गंभीरा, राजस्थान में खयाल, बिहार मिथिला में जटजटिन, महाराष्ट्र में तमाशा/गोंधल, कर्नाटक में यक्षगान, आंध्र में बुर्राकथा, तामिलनाडु में भागवतमेल, केरल में कूडिआट्टम जैसे नामों से परंपरागत लोकनाट्य प्रचलित है। लोकमंच हों या रंगमंच – ये दोनों विचारों की, भावनाओं की अभिव्यक्ति के लोकप्रिय माध्यम है।[1]

लोक संस्कृति जन–जन के श्रम से सिंचित होकर प्रकृति की गोद में पलती–पनपती रही है। मानव का मानव के प्रति सहज प्रेम ही लोक संस्कृति का साध्य रहा है। श्रम की पूजा के साथ ही पारम्परिक प्रेम से भरी विश्वबंधुत्व की भावना हमारे लोक–जीवन का मूल आधार रही है। जनजीवन के बीच कलाओं में लोकसंस्कृतिक आज भी स्पंदित है। लोककला को संरक्षण और प्रोत्साहन देने के नाम पर ढोल पीटने में लगे हुए शोषक वर्ग का नजरिया अभिजात समूह के मनोरंजन तक सीमित रह जाता है। जबकि आवश्यकता लोक–कला और लोक–संस्कृति के माध्यम से जनता को बदलने, उसे चैतन्य करने, उसे परिष्कृत करने की है। जिनकी बिना पर ही ये समाज टिका है। लोक संस्कृति जड़ नहीं है। नये विचार और नये संदर्भो को अपने में समेटते हुए अतीत को वर्तमान से जोड़ती हुई आगे बढ़ रही है।

लोक नाट्य क्षेत्र विशेष की लोक संस्कृति और उसकी जीवंत कला के प्रमाण होते हैं। इसके लोक साहित्य और लोक गीतों में समाज की तात्कालिक परिस्थितियों का बोध होता है। लोक नाट्य उस जन समाज की प्रस्तुति है, जिनके जीवन का आधार ग्रंथ न होकर व्यवहार है। जो गांव से शहर तक फैला हुआ है ओर लोकानुशासन से अनुशासित है। प्राचीन काल से लेकर आज तक लोक नाट्य की प्रस्तुति आंचलिक बोलियों में ही होती आ रही है। किसी भी भाषा अथवा बोली के लिए वास्तविक परम्परा महत्वपूर्ण मानी जाती है। क्योंकि वही भाषा अथवा बोली विशेष में प्रवाहित सांस्कृतिक धारा की प्रस्थान बिन्दु भी होती है।

लोक नाट्य को हम प्रधानतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं – 1. प्रहसनात्मक 2. नृत्य नाट्यात्मक। पहले में जनमत के लिए किसी ऐसी घटना को अभिनय का विषय बनाया जाता है जिसे सुन तथा देखकर दर्शक हंसते–हंसते लोट–पोट हो जायें। दूसरे प्रकार के लोक नाट्य वे हैं जिनका आधार कोई सामाजिक अथवा पौराणिक घटना होती है। इसमें संगीत, नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है, "लोक प्रचलित व्यवहार शास्त्र की रक्षा भी करते हैं, शास्त्र का नियमन भी करते हैं, यद्यपि शुद्ध लोक विरूद्ध नहि करणीयं नहि करणीयम्' अर्थात् शास्त्र विहित हो तो भी लोक विरूद्ध हो तो करणीय नहीं है, यह दृष्टि भारतीय परम्परा को पोथीवादी नहीं बनाती, इस परम्परा में पोथी का महत्व है पर लोक जीवन से जुड़कर।'

वैसे लोकनाट्य की परम्परा का श्रीगणेश छत्तीसगढ़ में सरगुजा से हुआ और इसका प्रमाण सरगुजा के रामगिरि और सीता बोंगरा गुफा में निर्मित नाट्यशालाएँ देती हे। यह नाट्यशाला प्राचीन ग्रीन थियेटर से किसी बात में अलग नहीं है। रंगशाला (थियेटर) और लोकनाट्य के विषय में लोगों में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। थियेटर यूनानी शब्द 'थ्रिया' का मिला–जुला रूप है थिया का अर्थ होता है 'दृश्य' और देखनें पर्याय के रूप में यूनानी भाषा के थड्या से मिलता–जुलता है। अर्थात् ऐसी वस्तु जो घूर–घूरकर देखने का जिक्र करे, ठीक इसी तरह 'ड्रामा' शब्द भी यूनानी शब्द ड्रान से उद्धत है जिसके मायने होता है 'अभिनय करना'। भारतीय

परम्परा और परिवेश में 'थियेटर' शब्द को रंगभूमि का और 'ड्रामा' को नाटक के समीप लिया गया है।

सचमुच ही कहा जाय तो नाटक एक दृष्टि से लेखक, अभिनेता और दर्शकों की समन्वित पृष्ठभूमि है।

मुगलों के आगमन से पहले भारत के समस्त हिस्सों में नाटकों के लेखन और प्रदर्शन की परम्परा रही है। गांवों में लोगों के बीच परम्परागत लोकनाट्य ही खेले जाते रहे, जो मुगलों के व्यवधान से नष्ट हो गये। परन्तु लोकनाट्य आज भी देखने को मिलते हैं।

लोकनाट्य का उद्गम नाट्य से ही हुआ है। उदय शंकर के शब्दों में प्रत्येक भारतीय नर्तक है। लोकनाट्य अपने शब्दार्थ की परिणिति में ही सामूहिक चेतना को व्यक्त करता है। लोकनाट्य अपनी समग्रता में सीमाबद्ध भी होता है, क्षेत्रीय रूपों में चलने वाले लोकनाट्य दूसरे क्षेत्रों में नहीं चल सकते। नौटंकी का क्षेत्र जात्रा का क्षेत्र नहीं हो सकता। पश्चिमी नाटक हिन्दी नाटकों से अलग–थलग होता है। लोकनाट्य का विषय जीवन से अलग नहीं है। लोकनाट्य का लिखित साहित्य नहीं है। यही कारण है कि लोकनाट्य में पात्रों के द्वारा विषयों में मनमाफिक परिवर्तन कर लिये जाते हैं। लोकनाट्य की प्रस्तुति में परिवर्तन जीवन और समाज के वर्तमान अवरोध के कारण ही होता है।

ykdukV~; dh fo'k"krk,¡

1- लोकनाट्य का कथानक प्रायः पुराण या इतिहास से लिया जाता है किन्तु उसका स्वरूप तथा तथ्य नहीं होता। उसमें कल्पना का समावेश अधिक होता है।

2- कथानक में गति होती है।

3- लोकनाट्य का रंगमंच आडम्बरहीन होता है, परदों का उपयोग बहुत कम होता है। रंगमंच किसी भी खुले मैदान में बन जाता है। उसके लिए नाट्यशालाओं की आवश्यकता नहीं होती।

4- लोकनाटकों में अभिनय समूहगत होता है।

5- पात्रों में स्थानीय वैशिष्ट्य होता है।

6- संवाद पद्यमय अधिक और गद्यमय कम होता है।

7- नृत्य, वाद्य एवं गीत लोकनाट्य में अवश्य ही होते हैं।

छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य का इतिहास अनबुझी कहानी है, उसका प्रारंभिक स्वरूप क्या था, किन–किन मोड़ों से गुजरा, उसके विकास को किन–किन तत्वों ने प्रभावित किया ठीक–ठीक नहीं कहा जा सकता।

छत्तीसगढ़ में प्रमुख रूप से भ्तरा नाट, रहस एवं नाचा का प्रचलन है। बिलासपुर एवं उसके आसपास के क्षेत्र में रहस, जगदलपुर बस्तर के क्षेत्र में भतरा नाट एवं छत्तीसगढ़ के अधिकांश मैदानी इलाकों में बहुचर्चित एवं देश विदेश में प्रसिद्ध नाचा का विशेष प्रचलन है। दुर्ग जिला इसमें अग्रणीय है सभी लोक नाट्यों का विस्तृत विवेचन इस प्रकार से हैं।

jkl yhyk

छत्तीसगढ़ में नाचा के अलावा मनोरंजन की महत्वपूर्ण नाट्य विधा रहस है। यह 'रास' शब्द का छत्तीसगढ़ी रूप है। इसका प्रचलन छत्तीसगढ़ के बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग आदि जिलों में अधिक है। इसमें नृत्य, गीत और अभिनय समावेशित होता है। रास गीत, वाद्य और नृत्य का मिला–जुला स्वरूप है। ब्रज के प्रसिद्ध लोकनृत्य को रहस के नाम से जाना जाता है। रहस से ब्रज की साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक जीवन को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है।

श्रीमद्भागवत पुराण में 'रास' शब्द का उल्लेख है। छत्तीसगढ़ी में विकृत रूप से रहस हो गया है। छत्तीसगढ़ में रहस नाट्य सवर्ण और सतनामी दोनों में प्रचलित है। इस प्रसंग में डॉ. मालती सिंह लिखती है कि – यह भी सवर्णो द्वारा प्रस्तुत ब्रजभाषा के प्रभाव से युक्त 'रहस' और छत्तीसगढ़ी में अभिव्यक्त सतनामी जाति की परम्परा में प्रचलित 'रहस' दो रूपों में प्रचलित है।

रहस का प्रचलन छत्तीसगढ़ में कब से है यह अज्ञात है। इसकी स्थापना की निश्चित तिथि अस्पष्ट है। हो सकता है ब्रज यात्रा करने वाले तीर्थयात्री, भक्तजन, ब्रज मंडल के रास को देखकर लोटे ओर छत्तीसगढ़ क्षेत्र में उनसे प्रभावित होकर

'रास' के प्रचार हेतु स्थापित किए हो, क्योंकि रहस के प्रचलन का किसी भी तरह का लिखित प्रमाण नहीं मिलता है।

jgl

रहस का इतिहास 300–400 वर्ष पहले का है। पूर्व में रतनपुर छत्तीसगढ़ की राजधानी थी। कवि बाबू रेवाराम यहीं के निवासी थी। उन्होंने श्रीकृष्ण चरित्र पर कृति लिखी। रहस के उद्‌भव एवं विकास के संबंध में श्री नंदकिशोर तिवारी ने लिखा है – "रहस में कृष्ण लीला से संबंधित हिन्दी में उपलब्ध सूर, मीरा, विद्यापति, जयदेव आदि के पदों का संगीतमय गायन किया जाता है। पूरे रहस में विरहा का गायन वर्जित है। इस प्रकार कृष्ण भक्ति से परिपूर्ण रहस की परम्परा का इतिहास यही कोई 300 या 400 वर्ष पुराना है। रतनपुर में इन्हीं दिनों गोपाल मिश्र और उनके बाद बाबू रेवाराम प्रसिद्ध कवि हुए। दोनों ने कृष्ण चरित्र पर लिखा गोपाल मिश्र संस्कृतनिष्ठ कवि थे, तो बाबू रेवाराम ने ग्राम भाषा का अवलम्बन किया। बाबू रेवाराम का जन्म रतनपुर में 1870 सं.ई. में हुआ था। उन्होंने कुल 13 ग्रंथों की रचना की जिनमें 'कृष्णलीला के भजन' एक महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है। ये भजन छत्तीसगढ़ी गांवों में बहुत प्रचलित है। इन भजनों के संग्रह को गुटका कहा जाता है।[2]

पुराणों में ही नहीं, अपितु कामसूत्र ग्रंथों में भी रास या रासक का उल्लेख मिलता है। दादूसिंह ग्राम गौद (बिलासपुर) का रास ब्रज प्रभावित है। बिलासपुर जिले के मुंगेली लोरमी के सतनामियों द्वारा रहस लीला खड़े साज में प्रस्तुत किया जाता है।

सवर्ण वर्ण का रहस 9 दिन तक और सतनामी रहस 11 दिन का होता है। सवर्ण रहस भक्ति भावना से ओतप्रोत होता है और सतनामी रहस में लोकरंजन का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। रहस मंडप स्थापना के लिए एक शुभ तिथि तय कर भूमि पूजन कराया जाता है। उसके बाद रहस आरंभ के लिए रास मंडली के मुखिया के पास अपने साथ एक नारियल और एक धोती ले जाते हैं और उसे भेंट कर शुभ

लग्न में प्रारंभ करने का निवेदन करते हैं। शुभ लग्न में मंडप बनाया जाता है। मंडप के बीच में एक खम्भा गाड़ा जाता है। उस खंभे के चारों तरफ मंडप का निर्माण किया जाता है और मंडप को कपड़े या वृक्ष की डाल से छा दिया जाता है। किसी कुशल मूर्तिकार को बुलाकर रहस आरंभ होने से कुछ दिन पहले मूर्तियाँ बनवा ली जाती हैं, जिनमें ब्रह्मा, गणेश, राधा–कृष्ण, रिद्धि–सिद्धि, महावीर, गरूड़, शंकर, परीक्षित, शुकदेव पांचों पांडव आदि प्रमुख होते हैं। मूर्ति के अभाव में उन सभी के फोटो लगाकर रहस लीला का आयोजन किया जाता है।

रहस मंडली में 20–25 लोग काम करते हैं रहसधारी की वेशभूषा सफेद धोती, सफेद बंगाली कुर्ता, साफा तथा सिर में पगड़ी व पैर में पादुका होती है। इसमें हारमोनियम, तबला, चिकारा, बंशी, मंजीरा आदि साजों का उपयोग किया जाता है। रहस में अन्य रस के अतिरिक्त श्रृंगार रस का भरपूर पुट होता है। पात्र संवाद खुद बनाते हैं। रहस को रूचि–पूर्ण बनाने के लिए कथा के बीच–बीच में प्रहसन दिखाया जाता है।

jgl dk bfrgkl ,oa :ijs[kk

छत्तीसगढ़ अंचल भक्ति भावना से ओत प्रोत है। भगवान की पूजा, अर्चना के नानाविध तौर तरीकों को अपनाकर यहां के निवासी अपनी भक्ति भावना का परिचय देते आए है। पूरा छत्तीसगढ़ श्रीराम, श्रीकृष्ण, पवनपुत्र हनुमान, शंकरजी और भगवती दुर्गा के विविध रूपों की पूजा करने में सदैव आगे रहा है। इसका प्रमाण है कि सोलह जिलों में फैले छत्तीसगढ़ के वे सभी गांव और नगर जहाँ आमतौर पर श्रीराम जानकी लक्ष्मण और हनुमान जी के मंदिर हैं, भोलेश्वर और राधाकृष्ण के मंदिर है और दुर्गाजी के विविध नाम यथा शीतला माता, बम्लेश्वरी माता, खल्लारी माता, बिलाई माता, गंगा मैय्या आदि के मंदिर है। इन मंदिरों में जाकर अपने आराध्य देव को नमन करना, विशेष पर्व, त्योहारदि के अवसर पर विशेष आनुष्ठानिक कार्यक्रम करना यथा–यज्ञ– हवनादि, भजन, कीर्तन, प्रवचन, सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन करना छत्तीसगढ़ीजन की विशिष्टता है।

रहस क्या है, इसका तात्पर्य क्या है और यह क्यों आयोजित किया जाता है, यह प्रश्न उन लोगों की ओर से उपस्थित किए जा सकते है, जो 'रहस' के बाबत अधिक जानकारी नहीं रखते। 'रहस' शब्द रास का सरलीकृत छत्तीसगढ़ी रूप है। रास शब्द चूंकि भगवान श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के लिए व्यवहृत होते आया है और रस की वर्षा करने वाले रास को जब लीला जैसे शब्द से जोड़ दिया गया तब 'रास–लीला' नामक एक शब्द उपस्थित हुआ जिसका सीधा सादा अर्थ हुआ रास की लीलाएँ। रास, रस बिखेरने वाली, फैलाने–बगराने, बांटने वाली ऐसी कार्यवाही है जिसे वृंदावन की, गोकुल की, बरसाने की बृज भूमि की गोपियाँ, कुमारियाँ, विवाहित स्त्रियाँ निस्संकोच किया करती थी।[3]

बृज की 'रासलीला' का ही छत्तीसगढ़ अंचल में छत्तीसगढ़ रूपांतरण है 'रहस'। बृजभूमि के दो चरित्र कंस और कृष्ण इसमें चित्रित किए जाते है, जो मामा और भांजा है।

jgl dk mn;xe vkj fodkl

जैसा कि हम प्रारंभ से ही लिख चुके है कि छत्तीसगढ़ में भगद्, भक्ति, पूजा–पाठ, अर्चना, अनुष्ठान, यज्ञादि के आयोजन प्राचीन काल से ही होते आए है अतएव उसी दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि याज्ञिक अनुष्ठान के साथ ही यज्ञ मंडपों से नाट्याभिनय प्रारंभ हुए हो।

dFkkud dk vk/kkj

'रहस' के कथानक का आधार श्रीमद् भागवत है जिसमें रास का उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्ण की लीलाओं को रास कहकर उनका सविस्तार वर्णन वहाँ किया गया है। 'रहस' शब्द का मूल 'रस' है और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही है 'रसो वै सः' अर्थात् जीव और परमात्मा के बीच संबंध के रहस्य को जानने की अभिलाषा 'रास' है।

छत्तीसगढ़ में रहस लीला की अनेक मंडलियाँ थी जो बिलासपुर, रतनपुर, मुंगेली, जांजगीत, भाटापारा और बिल्हा क्षेत्र के विभिन्न गांवों में थी और समर्थ कलाकारों को एकत्र करके 'रहस' का प्रदर्शन विभिन्न गांवों में किया करती थी।

आज से बीस–पच्चीस वर्ष पहले तक पच्चीसों रहस मंडलियाँ थी जिनके प्रदर्शन समीपवर्ती रायपुर, दुर्ग, रायगढ़ जिलों में भी श्रद्धालुजनों के आमंत्रण पर विभिन्न स्थानों पर होते रहते थे। धीरे–धीरे इस विधा के प्रति विशेष रूचि खत्म होते गई, सिनेमा, आर्केष्ट्रा, नाचा गम्मत जैसे कम खर्चीले कार्यक्रमों में लोग रूचि लेते गए फलतः आर्थिक बोझ से दबी जा रही अनेक रहस मंडलियाँ बन्द होती गई और आज ऐसी स्थिति है कि पूरे छत्तीसगढ़ में गिनी चुनी चार छै मंडलियाँ है जो प्रदर्शन कर रही है। आज के उपेक्षापूर्ण व्यवहार में पता नहीं कब तक ये 'रहस मंडलियाँ' जीवित रहती है और अपने साथ 'रहस' की परंपरा को जीवित रख पाती है।

'रहस' का आधार बाबू रेवाराम द्वारा रचित 'गुटका' है। उक्त 'गुटका' में अनेक कृष्ण भक्त कवियों के पद भी संकलित किए गए है। सूरदास, नंददास, विद्यापति, मीराबाई, जयदेव, परमानंद दास, कुभ्भनदास आदि कवियों के लिखे संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार के पद, भक्तिमयता के पद, समर्पण की भावना के पद, शांत रास से सरोबार पद, श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के वात्सल्य रस से ओत प्रोत पद, करूण रस में घुले हुए पद 'रहस' में गाये जाते है। रहस में फुटकर अन्य भजन भी गाये जाते है।

jgl vu"Bku

'रहस' संपूर्ण रूप से एक क्लिष्ट आधुनिक विधा है इसे यज्ञ भी कहा जाता है। जिसकी संपूर्ण प्रक्रिया पूजा पाठ द्वारा विधि–विधान से की जाती है। जिस प्रकार नाट्य शास्त्र को पंचम वेद की संज्ञा दी गई है उसी प्रकार रहस को यज्ञ की संज्ञा प्रदान की गई है। प्रश्न यह उठता है कि मात्र मनोरंजन के साधन को इतना कठिन बनाकर उन नामों से क्यों संज्ञायित किया गया जिस पर उच्च स्वर्ण अपना एकाधिकार समझते थे। अर्थात् वेद, यज्ञ आदि? इन नामों को सभी वर्गो ने स्वीकार भी लिया–इसका विरोध क्यों नहीं हुआ? शायद हुआ भी हो लेकिन चूंकि शुद्र वर्ग ने इसे अपने लिए बनाया और यह छूट रखी कि यह सबके पढ़ने और देखने के लिए है। जिसकी इच्छा हो आवे, देखे, आनंद ग्रहण करे। जो नहीं आता है, मत आवें। किसी के आने नहीं अआने से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है, यह

दृष्टिकोण लेकर रहस को ऊँची जाति वालों ने अगर अपनाया तो नीची कही जाने वाली, तिरस्कृत समझी जाने वाली ने भी 'रहस' को अपने समुदाय के साथ मिल बैठकर योजना बनाकर प्रस्तुत करना प्रारंभ किया।[4] 'रहस' को दोनों जातियों में बड़ी लोकप्रियता मिली।

रहस एक जटिल धार्मिक प्रक्रिया है फिर भी इस लोक कलाकारों या ग्रामीण जन ने, विशेषकर निम्न जाति के लोगों ने क्यों अपनाया यह प्रश्न बार बार मुंह उठाता है और तब लगता है कि शायद इसके पीछे उच्च वर्ग के लोगों से प्रताड़ित लोगों की यह भावना रही हो।

NÙkh lx<h jgl dh fof'k"Vrk mlds idkj

छत्तीसगढ़ में रहस के दो प्रकार है। चूंकि यह अत्यधिक लोकप्रिय आयोजन है अतएव सवर्णो के साथ साथ सतनामी जाति के लोगों ने भी इसके आयोजन में दिलचस्पी ली और छत्तीसगढ़ के निवासी जिनमें ब्राह्मण से लेकर सभी वर्ण के लोग आते है, के द्वारा रहस मंडली बनाकर रहस की लीलाएँ की जाने लगी वहीं तात्कालीन समाज में हरिजन कही जाने वाली जाति विशेष के लोग जो सतनामी कहलाते थे अपनी रहस मंडली बनाए और उनके द्वारा भी समानांतर प्रदर्शन होने लगे थे।

भगवान तो सबके होते है और उन पर किसी का एकाधिकार नहीं है इस उक्ति से श्रीकृष्ण चरित्र को पूरी तन्मयता से प्रस्तुत करने में सतनामी समाज ने बराबरी की भूमिका निभाई।

दोनों समाज के द्वारा जो प्रदर्शन होते है वे मूल रूप में तो श्रीकृष्ण चरित्र का बखान ही हुआ करते है किन्तु प्रस्तुतीकरण की अपनी अपनी विशिष्टाताएँ हुआ करती है। मुख्यता अनुष्ठान के तौर तरीकों में भेद है। सवर्ण रहस में कंदब वृक्ष की छांव यानी मंच के केन्द्र में केवल राधा–कृष्ण की मूर्ति स्थापित की जाती है जबकि सतनामी रहस में गणेश, रिद्धि–सिद्धि और राधा–कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित की जाती है। सवर्ण रहस 9 दिनों का होता है और सतनामी रहस 10 दिनों का। स्वर्ण रहस में ब्राम्हण को और सतनामी रहस में जाति के किसी पढ़े लिखे व्यक्ति को 'व्यास'

बनाया जाता हे। सवर्ण रहस में भक्ति भावना को प्रधानता दी जाती है जबकि सतनामी रहस में भक्ति के साथ ही लोक रंजन को भी प्रमुखता प्रदान की जाती है। सवर्ण रहस में भाषा, पूर्णतः बृजभाषा ही रही है जबकि सतनामी रहस में बृज भाषा के साथ ही छत्तीसगढ़ी को भी महत्ता दी जाती है। सवर्ण रहस में वेशभूषा, आभूषणादि, पहनावा, श्रृंगार सभी में बृजभाषा की संस्कृति दिखलाई देती है जबकि सतनामी रहस में छत्तीसगढ़ीपन के दर्शन उन सभी में साधारणतया बड़े पैमाने पर होते रहते हैं।

jgl dh eMfy;k

यह पहले की बतलाया जा चुका है कि छत्तीसगढ़ में मुख्य रूप से बिलासपुर जिले के कुछ ग्रामों में तथा रायपुर जिले के भाटापारा में रहस प्रस्तुत करने वाली मंडलियाँ सक्रिय रही है। इन क्षेत्रों में रहस के आयोजन के प्रति भी लोगों में दिलचस्पी रही है। वैसे मूल रूप में रतनपुर, रानीगांव, नवागांव, भटगांव, तखतपुर, खम्हरिया, भरनी, पंधी, देवरी, सकरी, गतौरा, नरियरा, कौड़िया, सीपत, सैदा, ठाकुरकापा, बहेरा, बिलासपुर में विगत तीस वर्षो के दौरान बड़ी समर्थ रहस मंडलियाँ थी।

डॉ. विमल पाठक ने इन मंडलियों के बाबत् अपने एक लेख में लिखा है कि 'बिलासपुर के मझिला महाराज (पं. प्रयाग नारायण तिवारी) सरकंडा–बिलासपुर के पं. कन्हैयालाल दुबे, गौद–जांजगीर के श्री दादूसिंह ठाकुर, बहेरा सरगांव के श्री लक्ष्मण पंडित, पंधी देवरी के श्री घरणीधर महाराज, भरनी–सकरी के पं. राम गुरूजी, सकरी बिलासपुर के श्री कन्हैया महाराज, भरनी के पं. दरबचंद, खम्हरिया–तखतपुर के श्री बलराम कौशिक, ठाकुरकापा के श्री गुलाबदास मानिकपुरी, भरनी–देवरी के श्री होरीलाल, सकरी–तखतपुर के भरत महरा, गतौरा–बिलासपुर के श्री मोहन पांडे, कौडिया–चांपा के श्री जीवनपुरी, सीपत के श्री सोहनपुरी और नरियरा के ठाकुर सुखसागर सिंह आदि रहस पार्टी के संचालक और नामी गिरामी रासधारी रहे हैं। इन लोगों की मंडली ऊँची जाति वालों या हिन्दू समुदाय के विभिन्न जातियों के लोगों को लेकर जहाँ रहस का कार्यक्रम प्रस्तुत करती थी वहीं सतनामी समाज की अनेक प्रतिष्ठित रहस पार्टियाँ भी थी जिनमें

रानीगांव–रतनपुर की ननका रहस मंडली, नवागांव आदि की पार्टियाँ उल्लेखनीय है। इनमें से कई पार्टियाँ समाप्त हो गई और कुद पार्टियाँ अभी भी कार्यक्रम देती है लेकिन अब इस आयोजन के प्रति वह उत्साह नहीं दिखलाई देता जो पहले था।[5]

रहस के आयोजन के लिए जब तिथि निश्चित हो जाती है तब गांवों में ऐसी जगह ढूंढते है जहाँ आयोजन किया जाना है। वैसे तो पूरे गांव का स्वरूप ही एक विशाल मंच की भांति हो जाती है पर मुख्य मंच के लिए जगह तलाशते है फिर शुभ मूहुर्त में उस स्थान पर जाकर उसे साफ सुथरा कर, कंकड, पत्थर, झाड़ी आदि निकालकर गोबर से लीपकर पवित्र करते है। थुन्ह अर्थात् (खंभे) की स्थापना हेतु गांव के ब्राम्हण को लाया जाता है जो विधिविधान पूर्वक पूजा संपन्न करवाता है। गांव के ही मुखिया या प्रमुख व्यक्ति या फिर आयोजकों में से ही कोई एक व्यक्ति यजमान बनना स्वीकार करता है। यजमान वही बनता है जो खर्च को वहन कर सकता है। गांव के पांच व्यक्ति मिलकर गड्ढा खोदते हें। जब गड्ढा तैयार हो जाता है तब विधान पूर्वक उसमें गांठे कुछ सिक्के, फूल, पत्र आदि रखे जाते है उसके पश्चात् मंत्रोच्चार के साथ गांव के अधिकतर व्यक्ति जो वहाँ उपस्थित होते है थुन को उठाकर गड्ढे में स्थापित करते है फिर उसमें मिट्टी भरकर खड़ा कर दिया जाता है, तत्पश्चात् उस थुन्ह पर कुंकु, अक्षत एवं पुष्प चढ़ाएँ जाते है। मौली धागा को मंत्रोच्चारण के साथ लपेटा जाता है फिर श्रीफल फोड़कर उसका जल उस पर चढ़ाया जाता है।

सतनामियों के रास स्थान की पूजा सतनामी पंडित ही करवाता है अर्थात् पंउित वही होता है जो अधिक पढ़ा लिख या प्रतिष्ठित होताा है। यहां भी गांव के आसपास ही लंबी चौड़ी साफ सुथरी जमीन को देखा जाता है तथा पंडित द्वारा भूमि पूजन मंत्रोच्चारण द्वारा संपन्न किया जाता है। इनके थुन या ध्वज स्तंभ में सफेद ध्वजा लगाई जाती है। उसके पास ही कृष्णा राधा, गौरी गणेश और कलश को स्थापित किया जाता है। यह सारी प्रक्रिया धार्मिक कर्मकांडों से युक्त होती है।

रहस का मुख्य मंच 15X20 फुट का बनाया जाता है जिसके मध्य में थुन्ह होता है। रहस के मुख्य मंच को बेड़ा भी कहा जाता है। थुन्ह बेड़े के धरातल से लगभग 8 फुट ऊँचा रखा जाता है। थुन्ह को लगभग दो फुट ऊँचे मिट्टी अथवा

ईटों के स्तंभ तैयार किया जाता है जिसे ग्रामीण भाषा में चौरा कहते है। उसे मिट्टी से बरंडकर, सफेद चूने या पीली मिट्टी से लिप दिया जाता है और उस चौरे के मध्य में दीपक रखने योग्य जगह बनाई जाती हे। इसमें जो दीपक जलाया जाता है वह अखंड ज्योति के रूप में कार्यक्रम शुरू होने से लेकर अंतिम दिवस तक प्रज्जवलित रहता है। थुन्ह को कदम्ब के वृक्ष के रूप में मान्यता प्राप्त है। कृष्ण और कदम्ब का नाता एक दूसरे के अकाट्य रूप में जुड़ा हुआ है। थुन्ह को रंगीन कागजों से सजाया जाता है। मंच दर्शकों के बैठक की जगह से लगभग 2 फुट ऊँचा होता है। मंच के चारों कोनों में चार मजबूत खंभे गड़ाये जाते है, ऊपरी भाग अर्थात् छत को बांस व आम के पत्तों से ढंका जाता है। मंच को अंदर से रंग बिरंगे कागजों से, झालर से, सजाया जाता हे। थुन्ह के नीचे कृष्ण राधा की मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है। मंच के चारो कोनों में ब्रम्हा, विष्णु, महेश तथा गरूड़, व्यास, रिद्धि–सिद्धि, हनुमान व भीम की मूर्तियाँ रहती है। ये मूर्तियाँ लगभग चार से छै फुट ऊँची होती है। राधा कृष्ण की मूर्ति का मुख पूर्व की ओर रखा जात है तथा गणेश की मूर्ति का मुख उत्तर की ओर रखा जाता है उत्तर और दक्षिण दिशा में प्रवेश व निकासी द्वार बनाया जाता है। प्रवेश द्वार के दोनों ओर क्रमशः हनुमान व गरूड़ की मूर्ति स्थापित की जाती है। शेषनाग पर विष्णु को शयन करते हुए तथा भीमसेन युक्त पांचो पांडव को भी स्थापित किया जाता है। श्रीकृष्ण,राधाजी, गणेशजी तथा रिद्धि–सिद्धि इन्हीं मूर्तियों की परिक्रमा करते हुए रासधारी गायन, वादन तथा नर्तन करते है। अभिनेता भी घूमघूम कर अभिनय करते है ताकि वहाँ बैठा हुआ हर दर्शक आनंद उठा सके।[6]

रहस पूर्णतः श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित है और महाभारत के प्रधान पात्र कृष्ण नाट्य संगीत आदि कलाओं के अधिष्ठाता माने जाते हैं। नृत्य संगीत बृज नारियों के प्रिय विषय थे। श्रीकृष्ण जिनके प्रेरणा स्त्रोत है। श्रीकृष्ण और गोपियों की रास क्रीड़ा भारत की लोकनाट्य परम्परा का श्रोत मानी जाती है। इस प्रकार रहस में इन देवताओं को प्रतिष्ठापित करने का आधार महाभारत कालीन भक्ति युग है जिसकी प्रेरणा से कलयुग में भक्ति युग के दर्शन करने कराने का लाभ ये कलाकार उठाते हैं।

efr LFkkiuk

रहस की मूर्ति स्थापना तकरीबन नाट्य शास्त्र में वर्णित देवताओं के अनुकुल निर्दिष्ट स्थान से मिलती जुलती है। यथा–रहस में गणेश की मूर्ति का मुख उत्तर दिशा की ओर रखा जाता है।

श्री निरंजन महावर के अनुसार रहस की मूर्तियों की संख्या कम से कम दस और अधिक से अधिक 126 होती है जिनमें मुख्य मूर्तियाँ मंच में तथा शेष परक मंच अर्थात् गांवों के चौपालों में खुले प्रांगण में, तालाब के किनारे कही भी स्थापित कर दी जाती है जिससे यह सिद्ध होता कि सारा संसार ही एक रंगमंच है। खुले प्रांगण में लगी मूर्तियाँ विशाल आदमकद लगभग 6 से 15 फुट ऊँची होती है। मूर्तियों के कारण पूरा गांव बृजभूमि का आभास होता है।

रहस की मूर्तियों का निर्माण करने वाले लोग शायद कुम्हार और बढ़ई के बीच की कोई जाति है जो अपने आपको 'चितेर' कहते है। ये उड़ीसा से आये हुए लोग है जो एक लंबे समय से रतनपुर के तथा उसके आसपास के निवासी हो गये है। रहस की मूर्तियाँ श्रीमद्भागवत में वर्णित पात्रों के अनुसार बनायी जाती है। मूर्तियों का निर्माण कर उन्हें ढंक दिया जाता है तथा रास आरंभ होने वाले दिन रसधारी द्वारा मूर्तियों का तथा मंच की पूजा के उपरांत मूर्तियों की आँखे बनाई जाती है।

ikjHk

रहस में प्रसंग लीलाओं की कोई निश्चित संख्या नहीं हे। कृष्ण के चरित्र का जो भाग सहज मन को अच्छा लगता है उसे घटाते, बढ़ाते व जोड़ते है। परन्तु कुछ लीलाएँ जो श्रीमद् भागवत के दसवें स्कंध में वर्णित है और कालान्तर में जिसके आधार पर साहितय का सृजन हुआ, उन ग्रंथों में वर्णित लीलाओं का मंचन सभी रासधारी करते हैं। रहस की हस्तलिखित पोथियाँ इस अंचल में गुटका के नाम से प्रचलित है जो सभी रासधारियों के पास है जिसमें समय समय पर वे नये पदों को जोड़ते हैं।

राजा भोज की वंशावली से लीला का प्रारंभ किया जाता है। जो कंस वध के पश्चात् पुनः उग्रसेन को गद्दी पर बिठाने तक चलती है। इसके बीच में अनेक प्रसंग गुँथे हुए हे। कंस जन्म, देवकी विवाह, आकाशवाणी, नारद आगमन, गर्भ स्तुति, कृष्ण जन्म, नंद उत्सव, पालना झुलावन, सोहर, बधावा, शंकरलीला, पूतना वध, बकासूर वध, नामकरण, अन्नप्रासन, ब्राम्हण लीला, माटी खाना, माखन चोरी, ऊखल बंधन, वृंदावन गमन, बकासुर वध, चकई भैरा खेल, राधा मिलन, गौ दुहावन, जादू लीला, गेंद लीला, दावानल लीला, पनघट उरहन, वृंदावन महात्म्य, बंशीवादन, चीरहरण, गोवर्धन लीला, दान लीला, पनिहारिन लीला, मालिन लीला, मान लीला, रास लीला, सखियों से अंतर्ध्यान, राधा से अंतर्ध्यान, बिरहा, राधा कृष्ण मिलन, महारास, बृज में आकुर का आगमन, कृष्ण मथुरा आगमन, रजक वध, दर्जी मिलन, सुदामा माली आगमन, कुबड़ी मिलन, धनुष भंग, कुबलया वध, कृष्ण को गधी, कृष्ण उद्वण संवाद, उद्वव नंद गोपी संवाद आदि।

यह रहस आयोजन कहीं 7, 9 और 10 दिनों का होता है। रहस प्रारंभ होने के दिन कहीं कहीं 360 दीयों को जलाया जाता है ताकि वर्ष भर गांव में सुख समृद्धि रहे।

रहस में प्रयुक्त संवाद प्रायः हिन्दी एवं अंशतः छत्तीसगढ़ी में होते है जबकि दोहे बृजभाषा में। इसका भी अन्य लोक नाट्यों की तरह कोई लिखित स्क्रिप्ट नहीं होती जिस दिन प्रदर्शन होना रहता है उसके 1–2 दिन पहले कलाकार तय कर लेते है कि कल के होने वाले प्रसंग में क्या बोलेंगे और मंच पर तत्कालीन भी संवाद बना लेते हैं। कभी कभी सूत्रधार या रासधारी सूत्रात्मक वाक्य बोल देते हें और कलाकार उस प्रसंग को आगे बढ़ाते है। रहस के रास धारी पहले कथा को गाते हैं। गीत के टुकड़े को वादक व नर्तक नृत्य करते हुए दोहराते है तथा थुन्ह का (मंच का) एक पूरा चक्कर लगाते है फिर गायन के अनुसार कलाकार जैसे कृष्ण, कंस, गोपियों का प्रवेश होता है। रासधारी का मुख्य व्यक्ति होता है जिसके निर्देश पर सारी प्रक्रियायें संपादित होती हे।

रासधारी किसी भी वाद्य को बजाते हुए संचालन कर सकता है जैसे मंझिला महाराज, चिकारा बजाया करते थे, दादूसिंह हारमोनियम बजाकर संचालन करते है,

तथा ननका पंडित मंजीरा बजाते हैं इस प्रकार रासधारी एक आधार के रूप में वाद्ययंत्र को रखते है। रहसधारी अपने गुटके से एक पद का पाठ करता है, बीच में उस पद की व्याख्या, गद्य टीका टिप्पणी भी करते चलता है, कलाकार इन प्रसंगों के अनुकूल नाट्य प्रस्तुत करते चलते हैं।

'रहस में फंतासी की स्थितियों का भरपूर समावेश किया जाता है। दर्शक का मन सतत् वास्तविक जगत एवं दैवी जगत में एक साथ तिरोहित होता रहता है, जिससे एक तो वह वास्तविक जगत है जिसमें कृष्ण साधारण मनुष्यों की भांति नटखटतापूर्ण व्यवहार करते हैं, दूसरा वह अलौकिक रूप है जिसमें कृष्ण अत्यंत बलशील दिखाए जाते है। लौकिक एवं अलौकिक का ऐसा सूक्ष्म सम्मिश्रण दर्श को ऐसे फंसाती में पहुँचा देता है जहाँ रहस एक रहस्य लोक में बदल जाता है।

रहसधारी, रहस की कथा प्रारंभ करता है। कथा कंस के जन्म से प्रारंभ होती है।

सर्वप्रथम सूत्रधार आकर एक दोहा पढ़ता है :–

जय जय यशोदा के दुलारे। जय जन जन के रखवारे।।

सूत्रधार मम् नाम है मैं लीला सरदार। करूं एक लीला नई सुनहू सकल नर नार।।

फिर नटी उपस्थित होकर पूछती है ' यह आयोजन क्यों? तब सूत्रधार कहता है ' इस प्रेक्षागृह में इतने सज्जन उपस्थित हुए है उनके सामने इस संसार रूपी नाट्य शाला में सबसे बड़े नाटककार को सामने लायेंगे नटी' इसके बाद कृष्ण वेशधारी पात्र जो मंच पर एक कोने में कुर्सी पर बैठे रहते है, की आरती उतारी जाती है।

रहस में कोई लिखित संवाद नहीं होते। उन संवादों को पात्र स्वयं गढ़ता है और प्रसंग और समय के अनुकूल उनका प्रयोग करता है। हाँ फीडबैक उनको रासधारी के सूत्रात्मक वाक्यों से जरूर मिलती है। इनके संवादों का तीखापन इनकी अपनी समझ की उपज है जिसे पूरे मनोयोग से बोलते है किन्तु जब एक पात्र संवाद बोलता है तो दूसरा पात्र अर्थात् उसका सह अभिनेता या अभिनेत्री

एकदम निर्विकार से खड़े रहते हैं। सपाट, चेहरों को लेकर ये उनकी सहजता है किन्तु मंचीय दृष्टि से कहा जाय तो यह बहुत बड़ी कमजोरी है। रासधारी द्वारा पदों का गायन, वाचन करने के पश्चात् पात्र उस प्रसंग को गद्य में संवादों के माध्यम से आगे बढ़ाते हैं।

o’kHkw"kk

रहस चूंकि बृज से यहाँ ग्राह्य किया गया स्वरूप है अतः इसकी वेशभूषा परंपरागत ही होती है। साथ ही अपने में लोक स्वरूप को समेटे रहती है जैसे कंस अपने व्यक्तित्व के अनुकूल तरीदार कुर्ता व धोती पहनता है साथ ही मोजे में चौड़ी रस्सी इस ढंग से लपेटता है कि वो जूत का भी काम करे। श्री कृष्ण पीले रंग की धोती और ऊपर गुलाबी रंग का चकमक कुर्ता साथ ही सिर पर मोर मुकुट, राधा रेशमी साड़ी व यशोदा नायलोन की साड़ी में आती है। वैसे रहस की सामग्री अधिकतर ये मथुरा से खरीदकर लाते है अतः हर किसी के वस्त्र विन्यास में बृज की झलक मिलती ही है।

eq[k lTtk

मुखसज्जा पात्रों के अनुकूल की जाती है जिसके लिए वे सहज उपलब्ध चीजों का प्रयोग करते है। जैसे – नील, पीसी हुई हल्दी, हरा रंग, चंदन, छुही (पीली मिट्टी) मुरदार राख, गुलाबी रंग, चांवल आटा, कोयला आदि। जो सद्‌गुणों को दर्शाते है उन्हें पीले गुलाबी व नीले रंगों में तथा दुर्गुणी पात्रों को हरे व काले रंग में प्रस्तुत किया जाता है।

रहस में कोई मेकअप मेन नहीं होता सभी अपनी मुख सज्जा कर लेते हैं।

ik=

रहस के पूरे कलाकारों की संख्या लगभग 15 से 20 होती है जिसमें गायक, वादक, नर्तक व अभिनेता भी शामिल होते हैं। एक चिकारा वादक, एक तबला वादक, एक मंजीरा वादक, एक हारमोनियम वादक, एक रासधारी, 4–5 नर्तकी, कृष्ण, कंस, तनसुखा, मनसुखा, गणेश, सरस्वती।

yhykvk dk Øec) epu

लीलाओं की कोई निश्चित संख्या रहस में नहीं होती। कृष्ण के चरित्र से प्रभावित रासधारी नई–नई लीलाओं को जोड़ते घटाते रहते है किन्तु कुछ एक महत्वपूर्ण अंशों को सभी रासधारी करते है।

jgl/kkjh

जब कंस ने आकाशवाणी सुनी तो सभी से जाकर बालक वध करने की सलाह करने लगे। बोलो वृंदावन बिहारीलाल की जय।

un mRlo

जसोदा जब सोवत ते जागी।

सुत मुख देखत ही अनुरागी।।

पुलक अंग उर आनंद भारी।

देखिर ही मुख शशि उजियारी।

गद् गद् कंठ न कहु कहि आयो।

हर्षवंत भै नंद बुलायो।।

रहसधारी कदम वृक्ष की परिक्रमा करते हुए सूरदास का पद गाते है –

कनक रतन मनि पालनो, गढ़यौ काम सुनहार।

विविध खिलौना भांति के, गज मुक्ता चहुँ धार।।

जननि उबरि उन्हवाय कै, अति क्रम सौलए गोद।

पौढ़ाए पट पालने, सिसु निरखि मन मोद।।

अति कोमल दिन सात के, अधर चरन कर लाल।

सूर न्यास छवि अरूनता, निरखि हरत बृज बाल।।[7]

cLrj dk ijEijkxr Hkrjk ukV

बस्तर के आदिवासियों के नृत्यों में नाटकीय तत्व तो अनेक स्थानों पर मिलते हैं? किन्तु उनका उद्‌भव एवं विकास पूर्ण विकसित नाट्य रूपों में नहीं हो पाया हैं। फसल काटने के बाद छेरछेरा पर्व में घर–घर जाकर अन्न एकत्रित करते हैं तब कोई काष्ट या तूंबें का मुखौटे लगा लेते हैं तो कोई चेहरे को रंगकर, भालू के बालों से मूँछ लगाकर प्रहसन करते हैं। खेलुक में भी गीत एवं नृत्य के साथ नाटकीय तत्व का समावेश पाया जाता है। दंडामी माडिया जनजाति के प्रसिद्ध गौर नृत्य में नाट्य कला विद्यमान है।

भतरा नाट संस्कृत एवं उड़िया लोकनाट्य से प्रभावित जनजातियों के लोकसंस्कृति में रंगा लोकनाट्य है।

बस्तर में यह नाट कैसे आया? यह इतिहास भी धार्मिक पर्व आयोजन से जुड़ा हुआ है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व बस्तर रियासत के महाराज पुरूषोत्तम देव (1407–1439) में जगन्नाथपुरी की प्रसिद्ध रथयात्रा पर्व के अवसर पर गए थे। जगन्नाथ भगवान के रथ को उडीसा के शबर जाति के लोग खींचते हैं। इस अवसर पर उडीसा की जनजातियों के लोग पर्व में सम्मिलित होकर उल्लास से नाचते गाते हुए अपने परंपरागत कला रूपों को प्रस्तुत करते हैं। बस्तर के राजा के अनुचर व प्रजाजन उनके साथ गये थे वे इन लोककलाओं से प्रभावित हुए। महाराज पुरूषोत्तम वहाँ से आकर रथ यात्रा के अवसर पर एक छै–छै पहिए का रथ दंतेश्वरी मैया के लिए और दूसरा चार–चार पहिए का रथ जगन्नाथ भगवान के लिए तथा तीसरा रथ अन्य देवी–देवताओं हेतु बनवाये। बस्तर में भी रथ की परंपरा प्रारंभ हुई। महाराज जगन्नाथपुरी से उत्कल के कुछ ब्राम्हण परिवार को ले आये थे। इन ब्राम्हणों ने जो लोग महाराज के साथ पुरी गये थे उन अनुचरों एवं प्रजाजनों को हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर जनेऊ प्रदान किया। ये लोग भद्र कहलाने लगे। भद्र का ही बिगड़ा रूप भतरा बन गया।

भतरा जाति के लोग जब नाट का संगठन बनाने की इच्छा होती है जो गाँव के पंचायत में विचार किया जाता है। उसकी तैयारी तथा खर्च के लिए चंदे इकट्‌ठे

किये जाते हैं। कोई धान–चावल देता है तो कोई रूपये। आसपास के किसी प्रसिद्ध नाटगुरू को आमंत्रित कर नाट के प्रशिक्षण का दायित्व सौंपा जाता है। इसमें पुरूष कलाकार ही स्त्री पात्र की भूमिका निभाते हैं। करीब पच्चीस से चालीस कलाकार इसमें शमिल होते हैं।

बस्तर का नाट लोकतांत्रिक एवं धर्म निरपेक्ष मंच होता है। जनभावनाओं एवं संगठन के साथ यह कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। नाटों में पौराणिक कथानक के माध्यम से भगवत धर्म की अच्छाइयों व उच्च नैतिक गुणों का संदेश लोकजीवन में पहुँचाया जाता हैं अभिमन्यु वध, जरासंध वध, कीचक वध, दुर्योधन वध, लक्ष्मण शक्ति नाट, हिरण्यकश्यप वध, लक्ष्मी पुराण आदि नाट कथा प्रदर्शित किया जाता है। कभी–कभी उत्सव मड़ई, यात्रा आदि के अवसर पर भी नाट का आयोजन होता है।

पौराणिक कथा के पात्रों जैसी ही वेशभूषा होती हैं लोकरंजन की दृष्टि से आकर्षक बनाने हेतु प्रसंगानुसार कई प्रकार के युद्ध कौशल की प्रस्तुत मनोरंजक होती है। मुष्टिका युद्ध, मल्ल युद्ध, गदा युद्ध, तलवार युद्ध, धनुर्युद्ध का रंगारंग प्रदर्शन होता है। दर्शक पात्र के अभिनय में एकाकार हो जाते हैं। दुर्योधन, कंस, रावण आदि खल पात्रों के वध पर उत्साहित एवं उल्लसित होकर जय–जयकार करते हैं। यह नाट प्रस्तुत दस बजे से आरंभ होकर प्रातःकाल तक चलती है।

नाट का आरंभ धार्मिक भावना से युक्त गणेश वंदना से होता है। मुखौटा लगाए गणेश जी मंच पर आते हैं। नाटगुरू गणेश वंदना करते हैं उसी बीच नट व नटी भी आ जाते हैं और प्रार्थना करते हैं ताकि सम्पूर्ण आयोजन निर्विध्न सम्पन्न हो। गणेश को वापस पहुँचाने के पश्चात सरस्वती जी लेकर आते हैं और आर्शीवाद प्राप्त करते हैं। इस तरह प्रारंभ से अंत तक भतरा नाट संस्कारित स्वरूप के साथ लोक भावनाओं से युक्त होता है।[8]

NÙkh lx< e: ykdukV~; ;kuh xEer ukpk ¼nqx: ftyk d: fo'k"k l:nHk: e½

करमा, ददरिया और सुआ की स्वर लहरियाँ, पंडवानी, भरथरी, ढोलामारू और चंदैनी जैसी लोक गाथाएँ सदियों से इस अंचल के जनमानस में बैठी हुई है। यहाँ के निवासियों में सहज उदार, करूणामय और सहनशील मनोवृत्ति, संवेदना के स्तर पर पांरपरिक कलारूपों के बीच ही सांस ले सकता है। समूचा अंचल एक ऐसा कलागत लयात्मक संसार है, जहाँ जन्म से लेकर मरण तक – जीवन की सारी हलचलें, लय और ताल के धागे से गूंथी हुई। कला गर्भा इस धरती की कोख से ही एक अनवश्वर लोकमंचीय कला सृष्टि का जन्म हुआ है – जिसे हमस ब 'नाचा' के नाम से जानते हैं। पुकारते है।

नाचा छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति की आबोहवा का एक महकता हुआ झोंका है। नाचा इस आँचल के सरल सपनों का प्रतिबिम्ब है। अनगढ़ जनजीवन से जन्म लेने वाला सुगढ़ नाचा, सच पूछिए तो, ग्रामीण कलाकारों द्वारा पथरीली जमीन पर चंदन बोने की मासूम हिमाकत है। सच्चाई यही है कि समूचे छत्तीसगढ़ी लोक जीवन की नब्ज को टटोलने का सबसे कारगर माध्यम है, 'नाचा'।

नाचा का अलग रंग है, भाव है, मस्ती है, प्रवाह है। एक ओर जहाँ इसमें परंपरा निर्वाह की चाह है, वहीं अनचाही परंपरा की चट्टानों को तोड़ने की अदम्य शक्ति भी है। नाचा, नागरीय रंगमंच के बौद्धिक विलास से ऊबे मन की विश्रान्ति है। उसमें लोगों को विमुग्ध करने और मन के तारों को झँकृत करने की अद्भूत क्षमता है और है आंसुओं को पीकर मुस्कान बांटने की सहज सरल चेष्टा। छत्तीसगढ़ अंचल की संपूर्ण सहजता, सरलता, मोहकता और माधुर्य जहाँ एक मंच पर सिमट आए हों, उस मंच का नाम नाचा है। अपनी दीनता, हीनता, अशिक्षा, उपेक्षा और अपमान की आग में तपकर ग्रामीण कलाकार जिस कला संसार की सृष्टि करते हैं, उस संसार का नाम है : नाचा। नाचा, नृत्य गीत और गम्मत का अनूठा संगम है।[9]

इन सबसे बावजूद, सदियों से उपेक्षित, तिरस्कृत और हेय समझे जाने वाले इस नाचा की ओर विद्वानों की दृष्टि अभी हाल के वर्षो में गई। नाचा ने ऐसे भी

दिन देखे हैं, जब शिष्ट और सभ्रांत समाज नाचा देखना अपनी गरिमा और शान के खिलाफ समझता था। आज इस विश्वविख्यात नाचा पर बहुत कुछ लिखा गया हे। इस पर आज अनेक शोधार्थी शोधकार्य में संलग्न है, कई इस पर पी.एच.डी. की डिग्री ले चुके हैं। हालत आज यह है कि गांवों के चौपलों से उठकर महानगरों की अट्टालिक मंचों पर नाचा के भव्य प्रदर्शन हो चुके हैं। अपनी अनोखी शैली, सादगी, संप्रेषणीयता और आडंबर हीनता के कारण आज नाचा लोकमंचीय आकाश में एक चमकता हुआ नक्षत्र बन चुका है।[10]

l;kjyky th xqIr ने लिखा है– ″नाचा छत्तीसगढ़ की माटी से ओतप्रोत उसकी संस्कृति का प्रतीक है।″

Jh f=Hkqou ikaMs ने लिखा है – ″नाचा छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक चेतना की अविराम यात्रा है। एक ऐसी यात्रा जो नहीं की तरह शुरू होती है और अंतहीन विराट महासागर के रूप में बदल जाती है।″

pfpr ukVdkj ise lkbeu ने लिखा है – ″लोकमंची विधा 'नाचा' छत्तीसगढ़ के मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। जनजीवन ही वास्तव में सांस्कृतिक परंपरा के दर्शन का जीता–जागता दस्तावेज है। कलाकारों की कला के प्रदर्शन की दीर्घ श्रृंखला है या फिर छत्तीसगढ़ के जनजीवन के गंभीर चिंतन का अनवरत् सिलसिला ही 'नाचा' है।[11]

गली–कूचों में अमोल कला ही 'नाचा' है। दर्द के टूटे–बिखरे पड़े अलग–अलग घुँघरू एवं कसकर आँख से झरे आँसू के मोती का इतिहास और रंगमंच यात्रा का पड़ाव है 'नाचा'। जमीनी रंग (भाषा, कथा, चरित्र, संगीत) 'नाचा' की अपनी निजता होती है। रोना, हँसना, जीना, मरना या सामाजिक, धार्मिक व्यवहार और उसके प्रदर्शन में लोक के निजी जीवन से अलग कुछ भी नहीं है।

Mk- f'kodqekj eqFkqj की राय है – 'नाचा अपने नाम के अनुरूप मूलतः नृत्य प्रधान विधा है। नाचा यानि नृत्य प्रधान छत्तीसगढ़ का लोकमंच'। निरंजन महावर लिखते हैं – 'नाचा एक सर्वजातीय रंग विधा है, जिसका उद्भव और

विकास ग्रामीण समाज में हुआ तथा उसमें अनेक पंरपरागत् विधाओं ने सम्मिलित होकर उसे समृद्ध किया है। नाचा मूलतः एक हास्य प्रधान नाट्य विधा है।'

यह तो हुई नाचा के द्रष्टा साक्षी मनीषियों की राय। लेकिन स्वयं नाचा के कलाकारों से पूछें तो वे शब्दों में नहीं बता सकते हैं कि नाचा आखिर क्या है? वे बताने में नहीं दिखाने में माहिर है। साहित्य का इतिहास साक्षी है कि राम को भगवान मानकर स्तुतिगान करने वाले महर्षियों से ज्यादा भगवान का वास्तविक हाल उनका वह अभिन्न दास हनुमान समझता है, जो अपना कलेजा चीरकर बता देता है – भगवान उसके लिए क्या है, कहाँ है? ठीक वैसे ही नाचा के विनम्र कलाकार मंच पर अपना हृदय चीरकर बता देते हैं, कि देखो – 'नाचा' ये है।

Ukehpn tlu कहते हैं – 'रंगमंच कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है, जिसमें मनोरंजन का अंश अन्य कलाओं की तुलना में सबसे अधिक है। रंगकला हमारे आदिम आवेगों और प्रवृत्तियों को जागृत कर उन्हें एक सामूहिक सूत्र में बांधती है।' निःसंदेह कश्मीर से केरल और कच्छ से कामरूप अंचल तक फैली हमारी रंगारंग नाट्य परंपरा विशाल, समृद्ध और जीवंत है। उनमें विविधता के बावजूद मौजूद एक अंतर्सूत्र है, जो उनको एक अटूट रिश्ते से जोड़ता है। डॉ. मधुर लिखते है कि 'ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का भरत नाट्य शास्त्र कोई आकस्मिक उपज नहीं, वरन् पूर्व परंपरा को लेकर की गई सुनिश्चित योजना है। समुन्नत नाट्यकला की आधारशिला लोक जीवन में व्याप्त गीत और अभिनय की लोक शैलियाँ ही है।' देश के विभिन्न प्रादेशिक लोकनाट्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसी रंग शैलियाँ भी है, जो अपने सीमित अंचलों में जनरंजन का माध्यम है। जैसे बंगाल में कीर्तनिया, उड़ीसा में गंभीरा, महाराष्ट्र में गोंधल वैसे ही छत्तीसगढ़ में नाचा है।

स्पष्ट है कि नाचा किसी काव्य की तरह केवल शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं है, न वह किसी चित्र या मूर्तिकला की तरह की काल की बाहुओं में कैद कोई स्थिर रूप है। वह तो गतिशील झरने की तरह लोक जीवन की अनुभूतियों को, आवेगों, आकांक्षाओं और सपनों को सहज सादगी में अभिव्यक्ति देने वाला जीवंत मंच है।

अशिक्षित या अल्पशीक्षित मगर पारखी नजर वाले नाचा के कलाकार आमतौर पर खेतिहार मजदूर है। अपने जीवन और समाज की विसंगतियों को

उजागर करने के लिए स्वयं अपनी समझबूझ के अनुसार छोटे–छोटे प्रहसन रचते हैं, सामूहिक रूप से रिहर्सल करते हैं। 'निर्देशक' नाम का कोई निर्दिष्ट व्यक्ति नाचा में नहीं होता। सब परस्पर मौखिक रूप से चलता है। कई चुटीले और सटीक संवाद तात्कालिक रूप से मंच पर भी बनते चले जाते हैं। ठेठ मुहावरों और पैनी लोकोक्तियों के सहारे हास्य व्यंग्य से ओतप्रोत संवादों को सुनकर दर्शक समूह हंस–हंस कर लोट–पोट तो हो ही जाता है, मगर हास्य के बीच कई ऐसी विद्रूपमय स्थितियाँ सामने आ जाती हैं कि दर्शक तय नहीं कर पाता कि वह आखिर हंसे या रोये?

ykdukV~; dh fo"k;&oLrq

लोकनाट्य, क्षेत्रीय लोक संस्कार उस जगह की जीवन–यापन की रीति एवं कला का परिचायक होता है। इसके लोक साहित्य और लोकगीतों में समाज की वर्तमान व्यवहार–व्यवस्था का चित्र दिखाई देता है। लोकनाट्य उस लोक समाज का आईना है जिनकी जीवन–शैली का प्रतिबिंब चित्रित होता है।

लोकनाट्य का आख्यान पौराणिक और ऐतिहासिक दोनों होता है। उसके बावजूद उनका स्वरूप बदल जाता है।[12] उसमें अतिरंजना के समावेश से मूल कथा के उत्स का पता नहीं लग पाता। लोकनाट्य अलिखित होता है साथ ही पंरपरागत होने से उनमें परिवर्तन स्वाभाविक व सहज होता है।

ykdukV~; e fon"kd dh [kkl Hkwfedk

छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य में विदूषक की भूमिका खास होती है जिसे 'नाचा' में 'गम्मतिहा' कहा जाता है। हास्य और व्यंग्य में लपेटकर बोले जाने वाले संवाद सहज, सरल बोधगम्य और चुटीले होते हैं। उसमें संप्रेषणीय ऐसी होती है कि विषय–वस्तु के पारदर्शी सतह की चमक लोगों के जेहन में कौंध जाती है। संवादों में वर्गभेद, जातिभेद, आर्थिक विषमता, शोषण तथा दमन जैसी अमानवीय प्रवृत्तियों पर तीखा प्रहार होता है। ठाकुर जीवन सिंह के अनुसार गम्मत–गणमत का अपभ्रंश है। गनमत से गम्मत बना। गम्मत का अर्थ दिल्लगी से हँसी और विनोद करना है। ''गम्मत का पूर्वार्ध रास या लास्य है। मुख्य रूप से इसमें लोकमानस की अस्वीकृत

बातों का प्रदर्शन गम्मत में मखौल उड़ाकर किया जाता है। रोजमर्रा जीवन की किसी भी मर्मभेदी प्रसंग का आधार बन जाता है।

ग्रामीण जीवन में रामलीला या अन्य आयोजन लोकनाट्य के अंतर्गत ही हैं। इनका हर दृश्य घरेलू जीवन में छत्तीसगढ़ के संस्कृति का परिदृश्य है। अतः यह छत्तीसगढ़ की परम्परा की छवि है। लोकनाट्य में अनेक मूल्यों का साक्षात् दर्शन और निर्वहन होता है। छत्तीसगढ़ के निवासियों की परम्परागत जीवन–शैली और अवधारणा का रेखांकन होता है। छत्तीसगढ़ में पनपती हुई रूढ़ि, अंधविश्वास एवं यहाँ के साहित्य में आई विकृतियों की रूपरेखा है और इसी तरह आने वाली पीढ़ी की अमूल्य धरोहर को अपने आँचल मे समेटा हुआ है।

vfHku;

लोकनाट्य 'नाचा' के तत्वों में एक महत्वपूर्ण तत्व अभिनय है, जो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति को उजागर करता है। नृत्य, संगीत और संवाद की पृष्ठभूमि में दुख–सुख की गंभीर अनुभूतियाँ इसके द्वारा ही स्पष्ट होती है। जिसके लिए अभिव्यक्त शब्द प्रयुक्त होता है। अभिनय पर्याय होता है, दर्शकों की ओर बढ़ना। दुनिया के प्रायः सभी देशों में पुरातन से ही लोकनाट्य की परंपरा रही है। लोकनाट्य का अभिनय, मुख्य कला या शैली ही अपने वाले समय में नाटक की एक शाखा हो गयी। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य के बारह मूल तत्वों का वर्णन किया है, इसमें अभिनय को रस और भाव के बाद रखा है। अभिनय से भाव की तथा भाव से रस की उत्पत्ति होती है।

छत्तीसगढ़ी नाट्य परम्परा में आदि से ही हास्य का विशेष स्थान है।

मतलब यह है कि हास्य का उद्रेक विकृत आकार, विकृत विचार, विकृत अभिधान, विकृत अलंकार अर्थ विशेष चाहे अभिनेता में हो, चाहे वक्ता में हो, चाहे अन्य किसी में उनका परिणाम थोड़ा भी दर्शक में गुदगुदी उत्पन्न करता है, वह हास्य रस के फलस्वरूप ही होता है। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य 'नाचा' के अभिनय में सभी विशेषताओं का दर्शन होता है।

Ykkdxhrk dk i;kx

गीत, साहित्य के बहुत करीब है। एक अत्यंत सूक्ष्म, कमनीय एवं प्राणवंत विधा हे। गीतों की उत्पत्ति किसी अनजान के मुख से लोक–जीवन में हुई जिसकी वजह से लोगीत, लोक–जीवन की आत्मा है। लोकगीत, जन समाज की वाणी है और वह जन–जन की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। जन–जीवन के दुख–सुख, प्रेम–घृणा, उल्लास–हर्ष, विषाद और संघर्ष, आपद–विपद को व्यक्त करता है। अतः लोकगीत अनेक दृश्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

lxhr rRo

लय और नाद का घनिष्ट संबंध है। वे एक–दूसरे के पूरक है। गीत और संगीत दोनों का स्थान विशिष्ट है। इनकी झंकार प्रकृति के कण–कण में होती है। इनकी कुलबुलाती ध्वनि आसानी से सुनाई देती है। सूने में भी पृथ्वी का भ्रमण करने से संगीत जन्म लेता है। जिसे अनाहत संगीत कहा जाता है। लोकमानस का उल्लास गायन और वादन के तार से जब झंकृत होता है, तब वह संगीत कहलाता है।

खड़ी गम्मत की प्रथा छत्तीसगढ़ में प्रायः सभी क्षेत्रों में देखी जाती है। ये दोनों शैलियाँ प्राचीन है। जिसे नाचा पार्टियों ने अपनाया है। नाचा को उत्तर भारत में 'रास', नौटंकी, रामलीला को लोकनाट्य की श्रेणी में रखते थे। महाराष्ट्र में गोघल, तमाशा, गुजरात में मवाई, बंगाल में जात्रा, दक्षिण भारत में कथकली पर कृष्ण लीला की छाप है। राजस्थान में कठपुतली, छत्तीसगढ़ में रामलीला, कृष्णलीला, रासलीला आदि लोकनाट्य प्रसिद्ध है।

xEer

नाचा के अंतर्गत का अपना विशेष महत्व होता है। गम्मत में जोक्कड़ की कला ही और उसका जानदार अभिनय ही प्रमुख होता है।

fMMok xhr

डिंड़वा नाच महिलाओं का नाच है। शादी–ब्याह के अवसर पर स्त्रियाँ नाचती हैं वरपक्ष के घर में। छत्तीसगढ़ में आज भी 'नाचा' को मनोरंजन के साधन

के रूप में अपनाया जाता है। इसीलिए इस अंचल में आज भी गांवों में अधिकतर 'नाचा' का आयोजन होता रहता है। गाँव में मनोरंजन के लिए अन्य साधन जैसे चलचित्र, थियेटर नहीं है। उनका सर्वथा अभाव है। 'नाचा' लोगों को अतिप्रिय होता है। डिंड़वा नाच में केवल महिलाएँ ही विशेष रूप से भाग लेती है। इसमें नारी भावना प्रधान है। इनकी कथा–विषय नारी के जीवन से जुड़ा होता है। यह लोकगीतों का सम्मिश्रिण है। इसमें 'पुतरा–पुतरी' का विवाह किया जाता है और जीवन में घटने वाली घटनाओं को नाटक के माध्यम से अभिनय कर अभिव्यक्ति दी जाती है। उनमें शादी–ब्याह, सोहर, लोरी, प्रेम, वियोग, व्यथा और आनंद के गीतों को समावेश कर गाया जाता है।

ukpk dk foLr`r fooj.k

समय के साथ अभिव्यक्ति के तौर तरीके और रंग रूप बदलते रहते हैं। उनकी प्रस्तुति भी धीरे–धीरे परिवर्तित होती है। यही बात लोक नाट्य 'नाचा' के साथ भी हो रही है। छत्तीसगढ़ में 50–60 वर्ष पूर्व या अधिकतम 100 वर्ष पूर्व जब भीमानी राव भोसले और दूसरे मराठों ने छत्तीसगढ़ पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था तब 'नाचा' का उद्‌भव और विकास प्रारंभ हुआ। रामचन्द्र देशमुख और अन्य कला मर्मज्ञों ने छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य 'नाचा' का जो प्रारंभिक रूप बताया है, उसके बदलते हुए रूप को नवल शुक्ल ने बहुत ही बेहतर तरीके से निम्न प्रकार रेखांकित किया है– "नाचा का पांरपरिक रंगमंच जमीन का एक टुकड़ा हुआ करता था। कानो–कान यह बात फैल जाती थी कि अमुक गांव में अमुक दिन नाचा होने वाला है। निश्चित दिन शाम होते होते दर्शक, नाचा होने की निश्चित जगह पर पुआल, चटाई या कपड़े बिछाकर अपने बैठने के लिए जगह सुरक्षित कर अपने–अपने घर लौट जाते थे नाचा का यह रंगमंच, जो जमीन का एक टुकड़ा हुआ था, वह धीरे–धीरे अपने स्वरूप बदलता गया। सबसे पहले जमीन के उस टुकड़े को आम दर्शक से अलग दिखाने के लिए चारों ओर से लकड़ी का खम्भा गाड़ दिया गया। फिर खम्भों के ऊपर, टाट–चटाई से छत बनाई गई। इसके बाद मंच के साथ माईक, लाउडस्पीकर, गैस–बत्ती, जनरेटर आदि जुड़ते चले गये।" "कुछ पार्टियाँ तो अपना स्वयं का जनरेटर लेकर चलने लगी है।। कुछ नाट्य दलों

की मंच साज सज्जा की और आने जाने के साधन और पारिश्रमिक की शर्ते दस हजार रूपयें से भी अधिक होती है। द्विअर्थी संवादों की भरमार और उत्तेजना पैदा करने वाली अदाओं और बाजारू लोकप्रियता के चक्कर में नाचा अपना मूल स्वरूप और अपनी स्वायत्तता खोता जा रहा है। हर कला की तरह छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य भी व्यावसायिकता की मार से अपनी मौलिकता खो रहा है। अब उसमें करमा, ददरिया के स्थान पर फिल्मी गीतों की भरमार रहती है। अब उनके 'नाचा' में ब्रम्हानंद के भजन, लावनी के गीतों की छटा अथवा कबीर के निरगुनियाँ भजनों की सौंधी सौंधी जमीनी गंध के बदले कव्वालियों का लय, सुर, ताल रहित स्वरूप दिखायी देने लगा है। इतना ही नहीं 'नाचा' की विषय वस्तु में मुख्य स्थान रखने वाला लोक जीवन उसमें गौण होता जा रहा है। यथार्थ के स्थान पर कल्पित कहानियों का प्रयोग बढ़ा है। श्यामलाल चतुर्वेदी कहते है, "समय चक्र की गति तेज होने के कारण सभी आयामों की तरह लोक नाट्य पर भी परिवर्तन का प्रभाव पड़ा है। लिखित साहित्य को परिवर्तित करना कठिन होता है, किन्तु लोकरंजनार्थ प्रचलित लोकनाट्य में परिवर्तन करने से रोक कौन सकता है। यों लोकनाट्यों के स्वरूप में यत्किंचित अंतर तो स्थान–स्थान तथा व्यक्ति बदलने से आता ही है, परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हर क्षेत्र में परिवर्तन की उत्कंठा के कारण और तीव्रता आई। आधुनिकीकरण की अभिलाषा परिवर्तन का कारण है। लोकनाट्य की स्वाभाविक भावधारा को सिनेमा ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। अत्यंत प्रभावी मनोरंजन के माध्यम सिनेमा की लोकप्रियता के कारण लोक नाटककारों ने अपने–अपने रंग ढंग में काफी फेरबदल कर डाला है। लगता है अस्तित्व रक्षा की आशंका से यह परिवर्तन हुआ है। गीतों में भक्ति भाव भजन का स्थान सिनेमा के शील विहीन मांसल श्रृंगारी गीतों ने ले लिया। वेशभूषा में पश्चिमी अंग प्रदर्शन तथा नृत्य की शैली में भी उसका अनुसरण किया जा रहा है। वाद्यों में चिकारा, सारंगी के दर्शन दुर्लभ हो गए है। उसके बदले हारमोनियम, बेंजो और गिटार ने अपनी पैठ जमा ली है।" दुर्ग में 16 से 29 जनवरी 1964 तक मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल द्वारा छत्तीसगढ़ लोक नाट्य परम्परा 'नाचा' पर एक 'नाचा समारोह' आयोजित किया गया था। परिषद् के सचिव डॉ. कपिल तिवारी ने उस अवसर पर व्यक्तिगत बातचीत के मध्य बताया कि "नाचा छत्तीसगढ़ की समृद्ध लोक

नाट्य परम्परा है। नाचा समारोह एक ही विधा पर केन्द्रित होने के कारण सभी प्रमुख नाचा कलाकारों और मंडलियों के लिए इस आयोजन में खुले और अधिक अवसरों का लाभ तो मिलेगा ही, इसके अलावा प्रयत्न यह भी हैं कि नाचा के पारम्परिक स्वरूप और प्रामाणिक कलारूप की सुरक्षा और संवर्धन हो। हमारे समय के बहुविध आधुनिक दबावों ने इस अत्यंत लोकप्रिय नाट्यविधा को प्रभावित किया है। और निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ में 'नाचा' का वह पुराना स्वरूप तेजी से लुप्त होता जा रहा है, जिसकी सहज शक्ति ने देश भर के नाट्य प्रेमियों का ध्यान एक समय 'नाचा' की ओर आकर्षित किया था। स्वयं इस विधा से जुड़े वरिष्ठ कलाकार इस परिवर्तन को लक्ष्य करते हैं।

लोक परम्परा द्वारा संकलित पारंपरिक गीत और धुनें और नवदेवताओं के गीत और सुंदर रचनाएँ छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य से लुप्त होती जा रही है। उसका स्थान फिल्मी धुनों ने ले लिया है। खंजड़ी, चिकारा की जगह हारमोनियम और क्लारनेट और ढोलक के स्थान पर तबला और ड्रम बजाया जा रहा है। इस संबंध में सही लिखा गया है, "जब से टूरिंग सिनेमा (तंबू सिनेमा) गांवों में पहुँचे हैं और गांव के युवा कलाकार अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जब से जनरूचि की मांग के साथ स्वयं को खपाते हैं। तब लोकनाट्य मात्र नाट्य ही रह जाता है। उसमें लोकतत्व तिरोहित हो जाता है।" लोक नाट्य के बदलते हुए रूप को मजदूर यह गाते हुए नहीं मिलेगा कि 'हे धरती माता? अपने हृदय को जरा नरम बना लो ताकि कुदाली चलाने वाले मेरे पिया के हाथ में छाले न पड़ जाये', अब कोई किसान हल की मूठ के साथ गाता नहीं आएगा कि 'हे सूरज तुम धीरे–धीरे तपो ताकि मेरी स्त्री के सर पर उगा हुआ कुंकुम का दूसरा सूरज पिघल न जाये।"

तेज प्रताप महा जग वंदन के बोल और अलाप के साथ लोक जीवन में 'नाचा' की शुरूआत होती है। कई नाट्य दल ईश वंदना से भी अपनी–अपनी इच्छानुसार लोक धुनों को निम्न रूपों में प्रस्तुत करते है –

"बीच भंवर मोरी नइया डूबत हे माता।
आके बचा लेबे लाज, आके बचा लेबे लाज।"

"ठाकुर भला बिराजे हो
जगन्नाथ पुरी में भला बिराजे।"

छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य 'नाचा' में लोकरंग की जो महक है, जो पारंपरिक और सांस्कृतिक आधार है, लोकहित की जो भावना है, वही उसकी आत्मा और चुम्बकीय आकर्षण का आधार है। 'नाचा' के अंदर होने वाले नाटक में जिसे 'गम्मत' कहा जाता है एक तीखी कहानी होती है। इसमें मनोरंजन भरपूर होता है। मनोरंजन के साथ ही समाज में व्याप्त विदूषों पर चुभता हुआ व्यंग्य भी करता है। गम्मत में कथा और संवाद इतने स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ते हैं कि दर्शक हंसते–हंसते लोट पोट हो जाते हैं। एक बानगी देखिए। गम्मत में सन्यासी रूपचारी साधु की देह लोलुपता को देखकर नाचा की नायिका पूछती है –

'इय तयं कोन अस गा?'
सन्यासी जवाब देता है .....
'मयँ सन्यासी हवँ'
नायिका व्यंग्यभरा संवाद बोलती है .....
'अइ तयँ सन्यासी अस, तभे सन्नावत हस'

छत्तीसगढी लोक नाट्य 'नाचा के वर्तमान स्वरूप को विगत तीन दर्शकों में उभरी इन नाचा मंडलियों की प्रस्तुति में देखा जा सकता है। बहुत आयामी संस्था सृजन ने साहित्यिक सांस्कृतिक क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी को गति देते हुए छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य 'नाचा' के संरक्षण और संवर्धन की दृष्टि से 17 एवं 18 जनवरी को ग्राम उतई में गम्मत 62 के अंतर्गत रात–दिन भर नाचा का शानदार आयोजन किया। लगभग एक सौ वर्षो की अपनी विगत विकास यात्रा में 'नाचा' का ऐसा अनूठा आयोजन पहली बार हुआ।"

सन् 1625 तक छत्तीसगढ़ में कोई भी संगठित नाचा पार्टी नहीं थी। दाऊ मदराजी (दुलार सिंह) ने सर्वप्रथम 1627–28 में नाचा के कलाकारों का संगठित किया। इससे पहले नाचा कलाकार अपने–अपने गांवों में रहते थे और 'नाचा' तय हो जाने के बाद आपसी संपर्क द्वारा एकत्रित होकर कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। मदराजी दाऊ की 'रवेली नाचा पार्टी' पहली संगठित नाचा पार्टी है। 1. नारद

निर्मलकर, गुंडरदेही (खलारी) निवासी– 'परी नर्तक', 2. सुकलू ठाकुर, लोहरसी (भर्रीटोला) निवासी 'गम्मतिहा', 3. नोहरदास खेरथा, अछोली, निवासी 'गम्मतिहा', 4. रामगुलाल निर्मलकर, कन्हारपुरी (राजनांदगांव) निवासी 'तबलची', 5. दाऊ मदराजी रवेली निवासी 'चिकरहा' के रूप में इन पांच कलाकारों ने छत्तीसगढ़ में पहली संगठित नाचा पार्टी 'रवेली नाचा पार्टी' को जन्म दिया। मदराजी दाऊ ने अपनी पार्टी में 1930 में ही चिकारा के स्थान पर हारमोनियम और मशाल के स्थान पर गैसबत्ती खरीदकर नाचा में उसका प्रयोग प्रारंभ कर दिया था। इस तरह नाचा के ख्यातिनाम कलाकारों को एक मंच पर एकत्रित कर उन्होंने नाचा को एक नई दिशा दी। उसके मूल स्वरूप को विकृत होने से बचाया। 1950–51 में दाऊ मदराजी ने रायपुर में डेढ़ माह तक प्रतिदिन कार्यक्रम प्रस्तुत किया। टिकिट दर कुर्सी पर बैठने के लिए एक रूपया और जमीन पर बैठने के लिए दो आना रखी गई। धीरे–धीरे 'नाचा' के अधिकांश प्रसिद्ध कलाकार दाऊ जी की 'रवेली नाचा' पार्टी में सम्मिलित होने लगे। लगातार नाचा पार्टियाँ समूचे छत्तीसगढ़ी में बनने लगीं और उनकी संख्या तेजी से बढ़ने लगी। 1940 से 1950 तक मदन निषाद, नोहरदास मानिकपुरी, लालूराम साहू, जगन्नाथ निर्मलकर, बुधराम देवदास, पंचराम देवदास, फागूदास मानिकपुरी, सहित अनेक चर्चित कलाकार 'रवेली नाचा पार्टी' से जुड़े हुए थे। टेंडेसरा, भेंडीकला नाच पार्टी, सुरूज के अंजोर नाच पार्टी रायखेड़ा, देववंश नाच पार्टी अर्जुनी, संत समाज मंच पार्टी हरडुवा (लिटिया) ने छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धरोहर 'नाचा' के वर्तमान स्वरूप से साक्षात्कार कराया। इसी क्रम में ''मध्यप्रेदश आदिवासी लोककला परिषद् भोपाल द्वारा छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक लोकप्रिय और पारम्परिक लोकनाट्य रूप 'नाचा' पर केन्द्रित तीन दिवसीय समारोह का आयोजन दुर्ग में 18.01.1964 से 20.01.1964 तक किया गया। तीन दिनों तक 15 नाचा दलों (भगवनी राम की पार्टी, गंधर्व कोसरिया समाज की बाजा पार्टी, संत समाज पुरदा करेली, आदिवासी करकू टोला दुर्ग, सेमरिया गिरहौला नंदिनी माइन्स पार्टी, लोक मंजरी पार्टी, मटेवा पाटी, भगत साज पार्टी बिलासपुर, लिटिया की पार्टी, लोक कला मण्डली टेडेसरा, दूध मोंगरा गंडई, लोकरंग अर्जुन्दा, संतोषी नाचा पाटी लाटाबोड़, बैतलराम साहू एण्ड पार्टी और आदर्श देवार नाच पार्टी सिकोलाभाठा) ने नाचा की प्रामाणिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया।"

इसके साथ ही साथ लगभग 50 वर्ष पहले छत्तीसगढ़ में निम्नलिखित नाचा पार्टियाँ प्रसिद्ध थी। रिंगनी साज नाचा पार्टी, रवेली साज, मटेवा साज, लाखोली, रायखेड़ा, मोहरा, फुड़हर, अछोटा, गुरूदत्त नाच पार्टी, धरमदास नाच पार्टी बिलासपुर, कुरूद नाचा पार्टी, दानी दरवन नाचा पार्टी, अछोटा नाचा पार्टी रायपुर, राजनांदगांव नाच पाटी, टेड़ेसरा, हड़आ, बरसन, तेन्दुआ, खल्लारी, करकूटोला, जय संतोषी नाच पार्टी, जय दुर्गा नाचा पार्टी, संत समाज रूनकी बरोड़ा, नाचा पाटी राजिम, कुर्रा नाच पाटी, पंचशील नाच पाटी, नांगाबुड़ा, सरगोड़ भेंडरी, कचना मड़ेली और चम्पा बरसन नाच पार्टी सहित लगभग एक सौ नाचा पाटी अपने कार्यक्रम देती थीं। देवार जाति की महिलाओं का भी नाचा पार्टियाँ थी। जिसमें बरतनिन, गजरा, बालकी, मिर्चा, गीता बाई, बालम, तारबाई, बासन्ती बाई पद्मा बाई और शांति बाई गीत नृत्य प्रस्तुत करती थी।। इसके पूर्व मदरा जी दाऊ ने सबसे पहले (1945 के आसपास) फीता बाई और माला बाई को अपने 'रवेली साज' में सम्मिलित किया था। लालूराम, ठाकुर राम, भुलवा, मदन निषाद (रिंगनी साज) परदेशी (गुरूदत्त नाच पार्टी) चूड़ामणि शर्मा, सुख सागर, लक्ष्मण दास (धरमदास नाच पार्टी बिलासपुर) जैसे कलाकारों की प्रतिभा का लोहा आज भी माना जाता है। प्रसिद्ध गायिका और नर्तकी किस्मत बाई की 'किस्मत डांस पार्टी' भी उस समय बहुत प्रसिद्ध थी। लोक नाट्य 'नाचा' के वर्तमान स्वरूप को रेखांकित करने वाले 'नाचा' के प्रसिद्ध और शीर्षस्थ कलाकारों की एक गम्मत देखने का अवसर मई 1960 में भिलाई में छत्तीसगढ़ लोक कला महोत्सव में प्राप्त हुआ। 82 वर्षीय मदन निषाद, बाबूदास बोड़रा और लालू राम साहू की दुर्लभ कला यात्रा लोक नाट्य 'जमादारिन' में देखकर दर्शक स्तब्ध रह गये। छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य 'जमादारिन' हास्य व्यंग्य में लिपटा हुआ पाखण्ड पर चोट करता हुआ एक पुराना प्रहसन है, जिसे 80 वर्ष से अधिक उम्र के तीनों लोक कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया। तीनो कलाकारों ने 15 वर्ष के अंतराल के बाद एक साथ मंच पर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। 50,000 दर्शकों के बीच इस दुर्लभ प्रस्तुति का ऐतिहासिक महत्व इस रूप में भी है कि ठेठ पारंपरिक 'नाचा' का यह सर्वश्रेष्ठ रूप माना जाता है और आधुनिक लोक नाट्य का जो रूप हम देखते हैं, वह इसी प्रकार की प्रस्तुतियों

का बदलता हुआ रूप है। गांवों में अधिकांश नाचा पार्टियाँ आज भी 'जमादारिन' प्रस्तुत करती हैं।

देश विदेश में ''चरणदास चोर'' गांव के नाव ससुरार, मोर गांव दमाद, आगरा बाजार, माटी के गाड़ी आदि में अभिनय कर पर्याप्त यश अर्जित कर चुके मदन निषाद, लालूराम साहू और बाबू दास बोड़रा के साथ ''जमादारिन'' के रूप में चेतराम विश्वकर्मा ने ग्रामीण दर्शकों की मानसिकता, उनकी शिक्षा दीक्षा और सहजता को रचे गये नाचा विधान एवं विषय, नागरिकों और बुद्धजीवियों को भी अपनी शक्ति से सम्मोहित कर लिया। ''जय हो महराज'' और ''पांव परत हो बेटा'' जैसे संवाद केवल हास्य स्थितियों के सृजन के लिए ही नहीं वरन् कट्टर ब्राम्हणवाद के विरोध में जनमानस में बैठे हुए विरोध को भी प्रगट करते हैं।

तोर मन के भीतर का जानत हवे लइका अउ सियान के साथ ही हवन के अवसर पर जंवारा लोक धुन का शानदार प्रयोग हुआ है –

कहवां रइया बरमदेव
कहवां रहे गोड रइया
रन बन रन बन हो।

इसी क्रम में चैतराम विश्वकर्मा ने ''जमादारिन'' के रूप में अभिनय करते हुए इस गीत के साथ नृत्य की मौलिकता, भंगिमाओं, थिरकन और पावों की गति द्वारा अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की –

छूआ ला काबर डरे, भाई रे छूआ ला काबर डरे
खातू मां उपजे धान कोदाई मैला में आलू फरे
मल मुत्तर खुसरे पेट के भीतर बाहिर बर साबुन धरे
त छुआ ला काबर डरे .....
एक तरिया मां बामहन कनौजिया दूनो इसनान करे
जम्मा जात हां पानी मां थूके त कामा भेद परे
त छुआ ला काबर डरे .....
मछरी कुकरी साग बने हे जे हर नरक चरे

अतेक घिन घिन जिनिस ला खाके मुर्दा मां पेट भरे
त छुआ ला काबर डरे .....
एके किसम के सबके चोला स्वर नई बिसरे
एके घाट के सबो जवइया सरग मां कोन किंजरे
त छुआ ला काबर डरे .....

छत्तीसगढ़ी आधुनिक लोक नाट्य में 'नाचा' की धड़कती संस्कृति और लोक धर्मी परम्पराओं के साथ समकालीनता भी है। संघर्षशील जन के अकुलाते प्रश्न, अतीत की अनुगूंज और वर्तमान की गतिशीलता के साथ–साथ सामने लाते हैं।

स्क्रीप्त और संवाद लिखे होने के बाद भी कभी भी ये कलाकार अपनी प्रत्युत्पन्नमति द्वारा संवादों को अपनी इच्छानुसार बदल लेते हैं। निर्देशकीय परिश्रम और कल्पना के बाद भी इन नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक संगीत का प्रयोग ही होता है। इन छत्तीसगढ़ी नाटकों में लोक नाट्य के तत्वों का भरपूर उपयोग होता है, इसीलिए इन छत्तीसगढ़ी नाटकों को आधुनिक छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य भी कहा जाता है।

इसकी शुरूआत 1951 में होती है। डॉ. खूबचंद बघेल द्वारा लिखित 'कालीमाटी' का मंचन रायपुर में किया जाता है और इसी क्रम में दाऊ रामचंद्र देशमुख द्वारा 1953 में 'छत्तीसगढ़ देहाती कला विकास मंडल पिनकापार' की स्थापना की गई। जनता जनार्दन की सेवा में पहला फूल 26.02.1953 और 27.02. 1953 को पिनकापार में प्रस्तुत किया गया। जिस दिन इस कार्यक्रम की शुरूआत हुई, निम्न प्रकार का छपा हुआ पर्चा वितरित किया गया।

इसके लिए बहुत अच्छे और अपने फन में विशिष्ट गुणों से युक्त कलाकारों की जरूरत थी और भिन्न–भिन्न पार्टियों में, छत्तीसगढ़ के सुदूर अंचलों में फैले कलाकार थे। उन्हें ढूँढ़ना और एक जगह इकट्ठा करना और उनके द्वारा एक पार्टी बनाकर प्रचलित नाचा को एक रूप में, परिष्कृत और नैतिक दायित्व बोध से भरकर, नाचा का एक आदर्श रूप प्रस्तुत करना, बड़ा दुरूह और श्रम साध्य कार्य था। लेकिन निश्चय से बल मिला और भटकने की नियति आरंभ हुई। रात–रात भर गाड़ी में, कड़कती हुई धूप में, धूल भरे कच्चे रास्तों पर भटकना, गांवों में कलाकार

ढूँढ़ना और इन्हें इस उद्देश्य के लिए तैयार करना। इस तरह रायगढ़ के 'लाला' फूलचंद श्रीवास्तव, 'बिलासपुर राज' के लक्ष्मण दास चिकारावाला, 'रिंगनी साज' के ठाकुर राम और भुलवा', खेली घिबरा के मदन, लालू, जगन्ननाथ, बुधराम, 'दोनार साज' के तीजू, जिवराखन, कुलेश्वर, रघुवीर, 'पलारी साज' के इतवारी, मुकुन्द, अलेन, कोनारी के बुधु, अछोली के चोवाराम आदि कलाकार मिलते गए और इस आदर्श के लिए, नाचा के लिए कुछ करने के आवेश से 'छत्तीसगढ़ देहाती कला विकास मंडल' की स्थापना हुई। सूत्ररूप में इसका उद्देश्य था, 'नसीहत की नसीहत और तमाशा का तमाशा' 'मनोरंजन का मनोरंजन और शिक्षा की शिक्षा' – जिसे प्रचार पत्रों में छपवाकर बंटवाया भी जाता था। यह नाचा के परिष्कार का बहुत प्रारंभिक रूप था, इसमें कुछ सुंदर गीत होते, नृत्य होता, शिक्षाप्रद छोटे–छोटे नाटक होते जो उस समय (सन् 1949) में 'काली–माटी', 'बंगाल का अकाल', 'सगर अऊ नरक', 'जनम अऊ मरन' आदि तथा 'मिस मेयो का डांस' 'बेगुनाह को फाँसी' आदि प्रहसन वगैरह नाम से खेले गए और बहुत प्रसिद्ध हुए। साथ ही कुछ संदर फिल्मी गीत (विशेषकर शिक्षा प्रद गीत) और सभ्रान्त हास्य व्यंग्य युक्त 'कामेड़ी' भी होती जिसमें 'राय साहब मिस्टर भोंदू' 'खान साहब नालायक अली खां' आदि मजाकिया और उस समय के सामाजिक परिवेश आदि, प्रतिष्ठा पदों पर करार हास्य व्यंग्य भी होता। नैतिक बल और साहस की प्रतिष्ठा के लिए किसी व्याभिचारी और बदमाश खान को किसी लड़की द्वारा छुरा भोंक दिए जाने के दृश्य और नाटक भी, सनसनी पैदा करने वाले और हृदयस्पर्शी हुए। वह सब एक तरह से, उस समय प्रचलित, 'देहाती गम्मत' का परिष्कृत रूप था।"

धीरे–धीरे नाचा पार्टियों की तरह 'छत्तीसगढ़ देहाती कला मंडल' के कार्यक्रम भी जनता में लोकप्रिय होने लगे।

छत्तीसगढ़ किसान अधिवेशन के अवसर पर 1958 में रायपुर में रवेली और रिंगनी साज को आमंत्रित किया गया। मदन निषाद, लालूराम, बाबूदास, भुलवा, ठाकुर राम और शिवदयाल सहित अनेक चर्चित कलाकारों ने सप्रे हाईस्कूल रायपुर के मैदान में सबने मिल जुलकर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। कार्यक्रम समाप्ति के बाद हबीब तनवीर ने कलाकारों से भेंट की और बधाई दी। "राजनांदगांव पहुंचकर हबीब

तनवीर ने कलाकारों को दिल्ली चलकर 'हिन्दुस्तानी थियेटर' में काम करने के लिए आमंत्रित किया। उस समय हिन्दुस्तानी थियेटर की अध्यक्ष श्रीमती इंदिरा गांधी थी। पहला प्रदर्शन दिल्ली में 'मिट्टी की गाड़ी' प्रस्तुत किया गया जिसे देखने तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू आये थे। उन्होंने उस समय हिन्दुस्तानी थियेटर' को दस हजार रूपये अनुदान देने की घोषणा की। यह कार्यक्रम दिल्ली के फाइन आर्ट थियेटर में आयोजित किया गया था।"

बघेरा ग्राम (जिला–दुर्ग) में 7 नवंबर 1979 को 'चंदैनी गोंदा' के नाम से एक अभिनव सांस्कृतिक कार्यक्रम की शुरूआत हुई। 'नाचा' के इस बदलते हुए रूप को, आकार प्रकार को छत्तीसगढ़ की जनता ने हृदय से स्वीकार किया। 'चंदैनी गोंदा' का प्रदर्शन जहाँ भी होता दर्शकों की संख्या 50 हजार से अधिक ही रहती थी। 'चंदैनी गोंदा' के साथ आधुनिक छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य का स्वर्णयुग प्रारंभ हुआ।

इसी क्रम में मार्च 1973 में हबीब तनवीर द्वारा एक नाचा वर्कशाप का आयोजन किया गया। हबीब तनवीर ने कुछ समय 'गांव के नाँव ससुरार' को बहुत शानदार तरीके से प्रस्तुत किया। आधुनिक छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य को ऊँचा उठाने में और दिशा देने में रामचंद्र देशमुख और हबीब तनवीर का योगदान मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इस क्षेत्र में कार्य करते हुए दाऊ महासिंह चंद्राकर ने 'सोनहा बिहान' रामहृदय तिवारी ने 'लोरिक चंदा' और 'कारी', लक्ष्मण चंद्राकर ने 'हरेली', कृष्ण कुमार चौबे ने 'लोरिक चंदा, (द्वितीय संस्करण), प्रेम साइमन ने 'दशमत कैना', दीपक चंद्राकर ने 'गम्मतिहा', केदार यादव ने 'नवा बिहान', रामविलास शर्मा और पुनूराम साहू ने 'दौनापान', मधुकर राव बासिंग ने 'माटी जागिर रे' और पुन्नु यादव ने 'देवारी' जैसे आधुनिक छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य द्वारा अपनी बात जनता के सामने रखी। इसी के साथ भुईया के भगवान, गंवई गंगा, तुलसी चौंरा, गौरा चौरा, नवरंग कला केन्द्र, जैसी अनेकानेक पार्टियों ने समूचे छत्तीसगढ़ में जन्म लिया और अपने–अपने क्षेत्र में कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगी।

नाचा अपने आप में एक टोटल थियेटर यानि परिपूर्ण नाट्य शैली है। उसमें उन्मुक्तता, चित्रण, संरचना तथा दृश्यविधान में यथार्थता के साथ–साथ दर्शकों की कल्पनाशीलता को साथ लिए चलने पर बल अधिक समाहित रहता है। अभिनेता

और दर्शक वर्ग के बीच घनिष्ट संबंध इसकी दूसरी मौलिक विशेषता है। नाचा में जीवन की मौलिक मान्यताओं और मानवीय मूल्यों को जोड़ने रखने की गुंजाइश बराबर बनी रहती है। अपने गम्मतों के माध्यम से कलाकर दैनंदिनी जीवन की विद्रूपताओं और समस्याओं पर कटाक्ष एवं व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियाँ करते चलते हैं। सूक्ष्म हास्य बोध की अपनी इसी प्रतिभा के बल पर स्वयं पर भी हंसने में सक्षम ये जीवट ग्रामीण कलाकार तमाम विपरीतताओं के बीच आज अपनी अस्मिता के साथ तनकर खड़े हैं। मंच पर इनका 'इम्प्रोवाइजेशन' अर्थात् प्रत्युत्पन्नमति की अद्‌भूत क्षमता देखकर आधुनिक थियेट्रिकल जगत हैरान है।

नाचा की समूची प्रस्तुति एक थिरकन और लयबद्धता के आरोह–अवरोह से बंधी होती है। कलाकारों की मुद्राओं में, हलचलों और भावाभिव्यक्तियों में, अभिनय नृत्य और अदाकारी में एक सहज लयबद्धता केवल देखने और महसूस करने की चीज है। नृत्य गीत कब खत्म होकर गम्मत में परिवर्तित हो जाता है, गम्मत फिर कब नृत्य गीत में स्वयमेव ढल जाता है तथा कभी–कभी नृत्य गीत और अभिनय चक्रवात की तरह कैसे एक रस और परस्पर आलिंगित होकर धूम मचा देते हैं – यह नाचा देखकर ही जाना जा सकता है।

नाचा में महिला पात्रों का निर्वाह पुरूष ही करते हैं। पुरूष ही परी बनते हैं। नचकहरीन और लोटा लिए नजरिया की भूमिका पुरूष ही निभाते हैं। इनकी अदाएँ, हावभाव, चालढाल और भावभंगिमाएँ इतनी अधिक स्त्रीसुलभ कोमलता और मोहकता के करीब होती हैं कि शिनाख्त करना मुश्किल होता है। नाचा में 'परी' और जोक्कड़' दो ऐसे अद्‌भूत चरित्र है – जिनकी परिकल्पना का निहितार्थ भौचक कर देता है। परी और जोक्कड़ के वेश विन्यास और रूप सज्जा में कलाकार अपनी पूरी कल्पना शक्ति उड़ेल देते हैं। परी इनके लिए सर्वश्रेष्ठ रूप सौंदर्य और मानवीय सम्मोहन की जीती जागती मिसाल है। उसमें आसमान में उड़ने वाली परी की तरह अलौकिकता का भी हल्का सा स्पर्श रहता है। दर्शक रस विभोर होकर परी की अनोखी अदाओं पर, उसकी लचक और नाजकत पर शुरू से आखिर तक फिदा होकर मुजरें लुटाता है। नाचा का जोक्कड़ निरंजन महावर के शब्दों में 'सर्कस के जोकर, संस्कृत नाटक के विदूषक या अंग्रेजी नाटक के क्लाउन की तरह नहीं है।

नाचा का वह सर्वाधिक मुखर और जीवंत चरित्र होता है। वह हंसाता है, मनोरंजन करता है, हास्य विनोद की सृष्टि बड़ी सहजता से करता है। पर वह इतना ही नहीं होता। जोक्कड़ छत्तीसगढ़ नाचा की संपूर्ण अस्मिता और अवधारणा के निचोड़ का जीता जागता प्रतीक है।' यकीनन परी और जोक्कड़ ही नाचा के ऐसे चुम्बकीय चरित्र हैं जो रात–रात भर दर्शकों को बांध रखने के रहस्य को साथ लिए रहते हैं।

ब.व. कारन्त कहते थे कि 'लोक नाट्य का सीधा अर्थ है वह लोगों के साथ रहा है और सदा रहेगा। नाचा के अपने मूल स्वभाव में देहाती जनता के दैनिक जीवन, सुखदुख, आशा आकांक्षा हास्य उल्लास और आंसू तथा निराशा का एकांतिक एवं परिवेश के प्रति सहज जागरूकता और उसकी बेलाग अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।' बाल विवाह को रोकने, विधवा विवाह को प्रचलित करने, छुआछूत की भावना का उन्मूलन करने, ऊँचनीच पर आधारित शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करने में नाचा ने कभी भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। असहयोग आंदोनल के दिनों में अछूतों द्वार पर आधारित प्रहसन 'जमादारिन' और स्वतंत्रता के आसपास के दिनों में विधवा विवाह पर 'मुंशी–मुंशइन' नाम से खेले जाने वाले नाटक नाचा की चर्चित प्रस्तुतियाँ है। आज भी निरक्षरता और कुष्ठ उन्मूलन जैसे अन्य कई ज्वलंत विषयों को लेकर अनेक नाचा मंडिलियों ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय बखूबी दिया है और दे रहे हैं।

गम्मत नाचा के संबंध में डॉ. विमल कुमार पाठक रोचक जानकारियाँ देते हुए कहते हैं – छत्तीसगढ़ी भाषा में लोकनाट्य को सरल, सहज शब्दों में अभिव्यक्त किया जाता है – गम्मत–नाचा कहकर। गम्मत और नाचा दो शब्दों के मूल से बने इस शब्द में मनोरंजन पर्याप्त मात्रा में भरा रहता है। जीवन की सारी कठिनाईयों को भूलने का सुखद अंदाज है छत्तीसगढ़ी का गम्मत–नाचा। गम और मत दो शब्दों के मेल से बना हुआ एक विशिष्ट भाव को व्यक्त करने वाला शब्द है – गम्मत। अर्थात् गम, मत करो। गम उर्दू का शब्द है जिसका अर्थ है दुख, पीड़ा, परेशानी, तकलीफ आदि।

ऐसे लोग जनजीवन की छोटी–छोटी घटनाओं को एक कथानक के रूप में प्रदर्शन के लायक बनाकर जब चार–छह की संख्या में प्रस्तुत करते हैं तब गजब

का वातावरण निर्मित कर डालते हैं। गम्मत की अवधि दस, पंद्रह मिनट से लेकर आधे घंटे, पौन घंटे या एक घंटे की होती है। इस अवधि में जीवन की किसी विकृति पर जबरदस्त प्रहार करना गम्मत पेशकर्त्ताओं का अभीष्ट होता है। संवाद में ही अपनी गम्मत योग्यताओं को समेटे यहाँ के कलाकार आवश्यकतानुसार कलाकारों की संख्या तय करते हैं।

xEer&ukpk fodkl& ^Øe^ dky foHkkt u

आज से लगभग चार दशक पूर्व तक छत्तीसगढ़ की लोकनाट्य परम्परा विचलन का शिकार हो रही थी। उसमें कई विकृतियाँ पनप आयी थी। 'नाचा' के पितामह स्व. मंदराजी दाऊ जी ने नाचा के जिस पारम्परिक स्वरूप का विकास किया था उसमें अब सिनेमाई धूल जमा हो जाने से वह विदूप लगने लगा था। ऐसे में कुछ बुद्धिजीवियों एवं संगीतकारों के अपार श्रम से कुछ एक ऐसे लोक सांस्कृतिक मंचों का गठन हुआ जिनसे लोकतत्वों के सहज विकास की संभावनाएँ खुलीं। लोग अपनी परम्पराओं, अपने अंचल के मधुर गीत–संगीत की सहजता और मोहकता की आरे आकर्षित हुये और उनमें अपनी संस्कृति के प्रति गौरव–भाव उदित हुआ। इसके पश्चात् इन क्रांतिकारी मंचों की तर्ज पर सैकड़ों लोग सांस्कृतिक संस्थायें गठित हुई और आज भी गठित होती जा रही है। परन्तु, यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इन ढेर की ढेर संस्थाओं द्वारा क्या किसी वैचारिक क्रांति की स्थापना अथवा सामाजिक जागरण के उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हो रही है?

गम्मत–नाचा के प्राप्त इतिहास के आधार पर उसके विकास–क्रम को रेखांकित करना जरूरी है और यह भी जरूरी है कि उसका काल विभाजन भी किया जाए ताकि उपलब्ध कालों में किस प्रकार के उल्लेखनीय कार्य हुए यह जानकारी सुधी पाठकों एवं लोककला प्रेमियों को ज्ञात हो सके।

डॉ. विमल कुमार पाठक के अनुसार गम्मत–नाचा के विकास–क्रम को हम निम्नलिखित प्रकार से कालों में विभक्त कर सकते है –

1- vkfndky & ¼ikjaHk ls lu 1930 rd½ & सन् 1930 से पूर्व का वह काल जब गम्मत नाचा छत्तीसगढ़ अंचल में जन्मा, पला और शैशवास्था में

पहुँचा। वह काल सैकड़ों वर्षो का चाहे दो सौ वर्षो का या केवल सौ वर्षो पूर्व का, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

2- mRd"k dky & ¼lu 1931 ls 1950 rd½ & सन् 1931 से असंगठित नाचा मंडलियों को, बिखरे कलाकारों को संगठित करने, मंडली या पार्टी या साज नाम देकर उसकी पहचान बनाने का महत्वपूर्ण प्रयास हुआ।

3- lq?k"k dky &¼1950 ls 1970 rd½ & इस अवधि में प्रायः संगठित गम्मत मंडलियों के अस्तित्व को समाप्त करने के प्रयास करने वाले सामर्थ्यवान पूँजीपतियों, मालगुजारों और सत्ता का दामन थामकर लोक–कलाकारों को सब्जबाग दिखाने, अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्णता के लिए समर्पित लोककला सेवियों की मंडलियों को तोड़ने और जोड़तोड़ कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों ने गम्मत नाचा पार्टियों का बहुत अहित किया।

4- lØe.k cuke ifrLi/kkZ dky & (सन् 1971 से लेकर आज तक) – आधुनिक छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों (जिन्हें लोकमंच के प्रख्यात निर्देशक द्वय श्री रामहृदय तिवारी एवं श्री लक्ष्मण चंद्राकर समानांतर छत्तीसगढ़ी नाटक कहते है) के उदय का काल। साधनहीन गम्मत नाचा पार्टियों के अस्तित्व को नकारते हुए अनेक महत्वपूण्र श्री सम्पन्न लोगों ने ऐसे छत्तीसगढ़ी सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये कि देश, विदेश में धूम मच गई, किन्तु उनकी चकाचौंध ने गम्मत–नाचा की मंडलियों को श्रीहीन करने, अस्तिवहीन करने की पूरी कोशिशें की, लेकिन जनता–जनार्दन के भरोसे रहने वालों को कोई भी नहीं मार सकता, इस उक्ति के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी से निःसृत दोहे :

तुलसी बिरवा बाग में, सींचत भी कुम्हलाहि।
राम भरोसे जे रहहि, परबत पे हरियाहिं।।

vkfndky & ¼ikjHk ls lu 1930 rd½

इस काल में गम्मत–नाचा ने पर्याप्ता लोकप्रियता पा ली थी, छत्तीसगढ़ी जन–मन में। सन् 1930 के पूर्व तो न कोई आधुनिकता थी, न नागरीयता दिखलाई देती थी। कमोबेश छोटे गाँव, कस्बे और छोटे शहर ही हुआ करते थे छत्तीगढ़ में। न बिजली थी, न मंच की व्यवस्था थी, न लाऊडस्पीकर की आवश्यकता थी, न दर्शक दीर्घा में बिछावट का प्रबंध करने की चिंता। आम लोगों के मनोरंजनार्थ, मुफ्त में अंचल के नामकी–गिरामी लोककलाकार अपनी गायन, नर्तन, अभिनय और वाद्य वादन की विशिष्टताओं का श्रेष्ठ प्रदर्शन करते थे। परी,जोकर, वादक, नर्तक, गायक और अभिनेता के रूप में गम्मत पार्टी के किसी एक मुखिया व्यक्ति के संरक्षण में कलाकारों के द्वारा किसी विशिष्ट छोटी–बड़ी घटना पर व्यंग्यात्मक लहजे में प्रहार पर प्रहार किए जाने से समस्या के निवारण की बात स्पष्ट होती थी और दर्शक वृंद शिक्षाप्रद घटनाओं में रची–बसी उपदेशात्मक कथा–कहानियों में आकंठ डूबे हुए रात–रात भर गम्मत– नाचा देखते हुए अपने समर्थ ग्रामीण कलाकारों की प्रतिभा का लोहा मानते हुए रस ग्रहण करते रहते थे।

उस अवधि में पुराने दुर्ग जिला, रायपुर, बिलासपुर और रायगढ़ जिले में ही गम्मत–नाचा का जोर था और नाचने–गाने, बाजा बाजाने, जोकरई करने वाले कलाकारों में जो अत्यधिक प्रसिद्ध नाम थे उनमें मंदराजी दाऊ, धरमलाल कश्यप, लक्ष्मण दास पनका, लाला फूलचंद श्रीवास्तव, ठाकुर सुखसागर सिंह, चूड़ामणि शर्मा, पं. प्रयागनारायण तिवारी 'मंलिला महराज', कलेसर साहू, गिरधारी यादव, जगमोहन, बालाराम, दुरबीन दास, गोकुल, राधे, अगरमन देवदास, सुकलू यादव, रामरतन साहू, सुकलू ठाकुर, नोहर दास मानिकपुरी, रामगुलाम निर्मलकर, पंचराम देवदास, नारदराम निर्मलकर, धनऊ देवदास, झाडूराम निर्मलकर, जागेश्वर देवदास, सीताराम, भरोसा, सुकलाल, मदन निषाद, पुसुराम यादव, जगन्नथ निर्मलकर, चटुनुराम कारीगर, घसिया कारीगर, रामरतन गोंड़, सहनी ठाकुर, लालूराम साहू, ठाकुरराम, बाबूदास बोड़रा, भुलवाराम यादव, पंचराम मानिकपुरी, बिसाहू साहू, पंचराम मानिकपुरी, फागूराम मानिकपुरी, भुवनदास, मोहनलाल श्रीवास, मुकुंद राम साहू, बुधराम देवदास आदि इस दौर में प्रायः किशोर और युवावस्थां प्रदिभा–सम्पन्न

नाचा–गम्मत कलाकार थे और अपनी कलात्मक प्रतिभा से अपने–अपने क्षेत्र की जनता के स्नेह व आदर के पात्र थे।[13]

डॉ. शैलजा चंद्राकर आगे बतलाती हैं कि उस समय लाऊउस्पीकर भी नहीं आया था चलन में इसलिए सभी पात्रों को जोर–जोर से बोलने, जोर की आवाज में गाने की आदत पड़ गई थी। पाँच–दस हज़ार दर्शक समुदाय को हर पात्र की सुनाई दे ऐसी साफ जोरदार आवाज में सभी पात्र बातें करते और गीत गाते थे। तब केवल हास्य की स्थिति में ही हँसी का फव्वारा फूट पड़ता था, दर्शक दीर्घा में, हंसते–हंसते लोगबाग, कई–कई बार लोट–पोट हो जाया करते थे और फिर शीघ्र ही आगामी घटनाक्रम को देखने, सुनने और आत्मसात् करने के लिए एकदम से सामुहिक चुप्पी साध लेते थे। सन्नाटा, हास्य का धमाका और फिर शांति इस दौर से गुजरा करता था तब का गम्मत–नाचा।[14]

उस काल में बहुत अधिक संख्या में गम्मत–नाचा पार्टियाँ नहीं हुआ करती थीं। पच्चीस–पचास गाँवों के बीच में कोई दमदार, शौकीन और धन लगाने में आगा–पीछा न सोचने वाले चंद लोग ही थे जो पार्टियाँ बनते थे, पार्टियाँ चलते थे। 'घर फूँक, तमाशा देख' वाली बात थी तब गम्मत–नाचा पार्टी चलाना। न तब कोई विशेष पारिश्रमिक की राशि दी जाती थी, न कोई उपहार, नाम या भेंट देने की प्रथा थी। लालायित पार्टियों के कलाकार अपनी कलात्मक प्रतिभा के प्रदर्शन हेतु उत्सुक रहा करते थे और मंच पर जाने पर केवल 'खाबा–बनी' यानी भोजन–नास्ते की व्यवस्था से ही संतुष्ट हो जाया करते थे।

mRd"k dky ¼lu 1931 l 1950 rd½

इस काल में सधे हुए लोककला साधकों ने गम्मत–नाचा की मंडलियों का विधिवत् गठन किया। अच्छे प्रतिभासम्पन्न और जिन लोगों में मंच को कुछ नया देने की क्षमता थी, हर क्षेत्र के ऐसे कलाकार अच्छी नामी–गिरामी लोगों की नामधारी नाचा पार्टियों में सम्मिलित होते गए। इस दौर में जिन लोगों ने कड़े परिश्रम किए, गम्मत–नाचा के अलावा अन्य किसी व्यवसाय की ओर ध्यान नहीं दिये, ऐसे लोगों में से जीवित कुछ भाग्यशाली लोग आज इक्कीसवीं शताब्दी के

इस शुरूआती वर्ष में भारतीय लोककला के गौरव कलाकारों में शामिल है, उनके नाम मंचीय जगत् में विख्यात है, उन्हें भारत सरकार, प्रदेश शासन, विविध सामाजिक, साहित्यिक संगठनों की ओर से बहुविध सम्मान, उपाधियाँ, पुरस्कार प्रदान किये गए हैं और उनके नामोल्लेख भारतीय लोककला के इतिहास में छत्तीसगढ़ी लोक संघ के गौरव कलाकारों के रूप में आज चतुर्दिक बड़े आदर के साथ किए जा रहे हैं।[15]

इस अवधि में राजनांदगांव के समीप रवेली ग्राम के समर्पित नाचा कलाकार, चिकारावादक श्री मंदराजी दाऊ ने विधिवत् एक नाचा पार्टी बनाकर उसे 'रवेली नाचा पार्टी' नाम दिया।

चूंकि मंदराजी दाऊ का खुद का नाम इस अवधि में एक सफल संचालक के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था और पार्टी में नामी–गिरामी लोग शामिल हो चुके थे अतएव अन्य प्रतिभासम्पन्न और निष्णात लोक कलाकारों ने भी रवेली नाचा पार्टी में सम्मिलित होना, अपने लिए बड़ी बात माना और सम्मिलित होते गए।

रवेली नाचा पार्टी प्रारंभिक दौर में सन् 1928–1929 में अस्तित्व में आ गई थी किन्तु उसे दो–तीन वर्ष बढ़ी–कड़ी मेहनत करनी पड़ी। दाऊजी ने पूर्व में प्रचलित भोंडे प्रदर्शन, अश्लील हाव–भाव, नृत्य और हल्के, निम्न स्तरीय प्रहसनों के द्विअर्थी संवादों की जगह समस्त कार्यक्रमों को जन–जन–रंजक, सपरिवार देखने योग्य बनाया और उच्चस्तरीयता प्रदान की। अच्छे भजन, भक्ति के पद, लोकगीत गवाने, आम लोग देखकर आनंद ले सके, ऐसे नृत्य करवाने के साथ ही उपदेश परक, प्रेरक हास्य रस से ओतप्रोत 'गम्मत' कराने और आम जनता का दिल जीतने में सफल होते रहे। सन् 1928–1929 में रवेली नाचा पाटी में निम्नांकित कलाकार थे –

चिकारा वादक व संचालक– मंदराजी दाऊ, तबलची– अगरमन देवदास और चुनुराम कारीगिर, परी (नर्तकी)– रामरतन साहू, जोकर– रामरतन गोड़ और घसिया कारीगिर, तबलजी, चिकरहा– रामगुलाम निर्मलकर।

इस समय जो अन्न उल्लेखनीय नाचा पार्टियाँ थीं उनमें नंदगैहा नाचा पार्टी, कुरूद नाचा पार्टी, राजिम नाचा पार्टी, टोकरो (रायपुर) नाचा पार्टी और बसंतपुर (राजनाँदगाँव) नाचा पार्टी उल्लेखनीय थीं। श्री लालूराम साहू प्रारम्भ में नंदगैहा नाचा पार्टी में थे जिसके तीनों कलाकार सुखराम, सीताराम और भरोसा उच्चकोटि के गम्मतिहा थें। श्री लालूराम जी साहू के अनुसार– "वे तीनों छत्तीसगढ़ी गम्मत में कॉमेडी के जनक के रुप में सदैव याद किए जायेंगे। उनकी कॉमेडी आज भी चल रही है।"[16]

एक नाचा पार्टी सन् 1948–49 में धमाके के साथ अस्तित्व में आई और जिसके कलाकारों ने अपनी अपार अभिनय क्षमता का प्रदर्शन किया, वह थी भिलाई–3 ग्राम के निकट स्थित रिंगनी की नाचा पार्टी। रिंगनी नाचा पार्टी में ठाकुररामजी, भुलुवाराम यादव (दोनों ग्राम रिंगनी के ही निवासी) बाबूदास बोंड़रा (ग्राम–पथरिया), टीकाराम राउत, रामतरन और परदेशी, बिसाहू जैसे बेजोड़ कलाकारों का समावेश था। इनमें से प्रथम तीन यानी ठाकुर रामजी, भुलुवा और बोड़रा ने अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त की।

इस काल में बिलासपुर की धरमलाल कश्यप नाचा पार्टी भी काफी लोकप्रिय थी। बिलासपुर जिले के लगभग सभी प्रतिष्ठित, प्रतिभासम्पन्न कलाकार उक्त पार्टी को अपना सक्रिय योगदान दे रहे थे।

बिलासपुर जिले के जांजगीर क्षेत्र में सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक जागरूकता थी। ऐतिहासिक महत्व के मंदिरों की नगरी मल्हार, नंदेली, शिवरीनारायण आदि में उस कालावधि में शास्त्रीय गायन, वाद्य वादन के उच्चकोटि के कलाकार रहा करते थे जिनके मंच प्रदर्शन भी यत्र–तत्र होते रहते थे। तात्पर्य यह कि सांस्कृतिक गतिविधियों से वह क्षेत्र ओतप्रोत था। खरौद के श्री लक्ष्मण दास पनिका उच्चकोटि के छत्तीसगढ़ी लोकगीत गायक थे। इस राजवादक ठाकुर सुखसागर सिंह, चूड़ामणि शर्मा आदि निष्णांत कलाकार थे। जूना बिलासपुर के मंझिला महाराज की नाचा पार्टी के प्रमुख कलाकार कलेसर साहू और गिरधारी यादव थे।

l?k"k dky & ¼lu 1951 l 1970 rd½

इस अवधि को संघर्षकाल के रूप में चित्रित कर डॉ. पाठक ने उस कालावधि में छत्तीसगढ़ की अनेक नामधारी पार्टियों को तोड़ने, उनके कलाकारों को लालच देकर अपने साथ ले जाने और समर्थ लोगों के हावी हो जाने की बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है। यद्यपिइ स अवधि में भी गम्मत–नाचा पार्टियाँ अपना कार्यक्रम देती रही, रंगमंचीय सुविधाएँ प्राप्त कर अपने कार्यक्रमों में चार चाँद लगाती रही, व्यावसायिक होकर अपने कलाकारों को आर्थिक दृष्टि से लाभ पहुँचाती रहीं तथापि ऐसे तत्वों ने गम्मत–नाचा जैसे कलात्मक क्षेत्र मु घुसपैठ की और जोड़–तोड़ के चक्कर में कई पार्टियों को अस्तित्वहीन कर दिया जिसे दुर्भाग्य जनक ही कहा जाएगा।

पिनकापार से शायद ऊर्जा लेकर 'रिंगनी–रवेली नाचा पार्टी' बनी लेकिन उसे भी कुछ समय के बाद दाऊ रामचंद्रजी देशमुख ने अपनी नवगठित संस्था 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' में विलीन कर लिया।

दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख की स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि उन्होंने सन् 1952 में अपने यहाँ आयोजित कार्यक्रम में रवेली पार्टी और रिंगनी पार्टी को दो से एक कर दिया और कुछ समय बाद उन लोगों के अलावा, रायगढ़, बिलासपुर, दोनर, पलारी, कोनारी, अछज्ञेली आदि नाचा पार्टियों के कलाकारों को अपनी 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' में सम्मिलित कर उन सभी पार्टियों को अस्तित्वहीन कर दिया था। दाऊ रामचंद्रजी देशमुख ने अपने नवगठित मंडल के माध्यम से अनेक उल्लेखनीय नगरों, कस्बों में कई गम्मत प्रस्तुत किए और दर्शक श्रोताओं ने सबों को काफी पसंद किया, नए 'देहाती कला विकास मंडल' को सिर–माथे लगाया।

दिल्ली निवासी श्री हबीब तनवीर जो दिल्ली में हिन्दी और उर्दू के नाटकों के निर्देशक और प्रस्तोता थे, दर्शक दीर्घा में बैठे कभी मंच को तो कभी दर्शक दीर्घा को देखते थे और हर ओर हर्षातिरेक और उन्मुक्त वातावरण को देख उनने कार्यक्रम की समाप्ति पर कलाकारों को बधाइयाँ दी और राजनांदगांव में शीघ्र

मुलाकात करने की बात कहकर उन कलाकारों को दिल्ली ले जाने की मानसिकता बना ली।

कुछ दिनों के बाद श्री तनवीर, बघेरा निवासी दाऊ रामचंद्र देशमुख से मिले और राजनांदगांव पहुँचे और कलाकारों से दिल्ली चलकर उनके नाटकों में भाग लेने का आग्रह किए। चूंकि देश की राजधानी का आकर्षण था, प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की पुत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की अध्यक्षता वाली, तनवीर जी की 'हिन्दुस्तानी थियेटर' में सम्मिलित होने का सवाल था अतएव सहर्ष छह लोग श्री तनवीर के बुलावे में दिल्ली चले गए। वे थे सर्वरी ठाकुर राम, लालूराम साहू, मदन निषाद, भुलुवाराम, जगमोहन और शिवदयाल। इन छत्तीसगढ़ी नाचा कलाकारों के कारण जहाँ श्री हबीब तनवीर को उच्चकोटि के ग्रामीण कलाकार मिल गए जहाँ दाऊ रामचंद्रजी देशमुख की संख्या 'देहाती कला विकास मंडल' बैठ गई और हार–थककर बचे हुए कलाकार पुनः बिखर गए। कोई कहीं चला गया, कोई कही। रवेली–रिंगनी नाचा पार्टी के रूप में यद्यपि बचे हुए पुराने कलाकार पुनः संगठित हुए लेकिन वह एक अत्यधिक सामान्य बल्कि उल्लेखनीय नाचा पार्टी के रूप में केवल ग्रामीण आयोजनों में ही जाने लायक रह गई और उसका अस्तित्व बना रहा यही एक बात है जो उल्लेख योग्य है।[17]

श्री हबीब तनवीर के पास छत्तीसगढ़ी के इन कलाकारों ने कुछ अर्से तक कार्य किया और फिर छत्तीसगढ़ आ गए। यहाँ आने पर वे पुनः नाचा पार्टियों में जाने का मोह नहीं छोड़ पाए और कुछ दिन छत्तीसगढ़ में कार्य करने के बाद फिर से श्री तनवीर के पास चले गए। श्री तनवीर के पास छत्तीसगढ़ी नाचा कलाकारों के आने–जाने के विषय में डॉ. विमल कुमार पाठक कहते हैं – "जिस प्रकार विवाह के बाद बेटियाँ अपने ससुराल चल देती है और मायके के मोह के कारण ससुराल से माता–पिता के घर आती रहती हैं उसी तरह तनवीर जी के पास चार–छह माह, आठ–दस माह, साल भर रहकर पुनः कुछ माह के लिए छत्तीसगढ़ की वापसी और दो–चार, छह माह बाद भी श्री तनवीर के बुलावे पर पुनः दिल्ली जाने की आदत प्रायः सभी कलाकारों की हो गई।

इस काल में जो अन्य नाचा पार्टियाँ जन्मी, बढ़ी, प्रतिष्ठित हुई और अस्तित्व में रही उनमें भेड़ीकला नाचा पार्टी, टेड़ेसरा नाचा पार्टी, सुरूज के अंजोर नाचा पार्टी, रायखेड़ा, देववंश नाचा पार्टी, अर्जुनी दोनर साज, पलारी साज, मटेवा साज, धरमलाल नाचा पार्टी, बिलासपुर, कोनारी साज, अछोली साज, कुरूद नाचा पार्टी, दानी दखन नाचा पार्टी, अछोटा नाचा पार्टी, राजनांदगांव नाचा पार्टी, लखोली नाचा पार्टी, मोहारा नाचा पार्टी, फुड़हर नाचा पार्टी, गुरूदत्त नाचा पार्टी,, तेंदुआ, खल्लारी, कुरकूटोला, कचना मड़ेली, कुर्रा, रूनकी बरोड़ा, खल्लारी, नांगा बूड़ा, सरगोड़, भेंडरी, सेमरिया वाले मानदास टंडन की खड़े साज नाचा पार्टी, आदि ने काफी नाम कमाया और प्रदर्शन से गम्मत की प्रतिष्ठा में चार चाँद भी लगाया।

इस काल में एक सबसे बड़ा लाभ गम्मत के कलाकारों को यह हुआ कि उनके कार्यक्रमों के प्रति उच्च जाति के, बौद्धिक वर्ग के दर्शक कहलाने वाले लोगों में भी कार्यक्रम देखने और देखते रहने की ललक पैदा हुई।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि इस काल में जहाँ गम्मत–नाचा ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की वहीं व्यावसायिक दृष्टि से भी प्रदर्शन के लिए संतोषप्रद पारिश्रमिक राशि प्रायः हर पाटी को मिलने लगा।

lØe.k cuke ifrLi/kk dky ¼lu 1971 ls ydj vkt rd½

यह काल गम्मत–नाचा के अस्तित्व की रक्षा के लिए हुए संघर्ष का ऐसा काल कहा जा सकता है जहाँ बड़ी–बड़ी प्रस्तुतियाँ आई, बहुत बड़े–बड़े मंच, भव्य ताम–झाम वाले बने। गम्मत–नाचा के दस–पंद्रह कलाकारों की जगह पाँच–छह गुना अधिक कलाकारों को लेकर नागर मंच की सभी खूबियों को आत्मसात् करते हुए, आधुनिक ही नहीं अत्याधुनिक वाद्य यंत्रों, ध्वनि प्रकाश व्यवस्था आदि से सजे–सजाये ऐसे नाटक तैयार किए गए जो किसी भी हालत में 'पृथ्वी थियेटर्स' के पृथ्वीराज कपूर के द्वारा लगभग चालीस–पचास वर्ष पूर्व खेले गए नाटक 'दीवार' पैसा पठान' आदि से कम नहीं थे।

इस काल में पुरानी नाचा मंडलियों में से कुछ तो अस्तिवहीन हो गई और कई दुगुने उत्साह से सामने आई जो नयी गम्मत–नाचा पार्टियाँ इस अवधि में

सक्रिय रही और ग्रामीणजनों के बीच गम्मत–नाचा की परम्परा को जीवित रखा, उनमें उल्लेखनयी हैं– मोहरा नाचा पार्टी, ब्रह्मा–विष्णु नाचा पार्टी, लखना डोंगरगाँव नाचा पार्टी, लोककला मंच, बेलसोंडा, नामी चोर चरणदास टेड़ेसरा, जय संतोषी नाचा पार्टी, करही सांकरा, तुलसी की महिमा, लक्ष्मण, भरदा, जय बजरंग नाचा पार्टी, सेलूद, संत समाज नाचा पाटी, हरडुवा, संत समाज नाचा पार्टी, करेली, भगवती राम नाचा पाटी, गंधर्व, कोसरिया समाज नाचा पाटी, आदिवासी नाचा पार्टी, करकूटोला, सेमरिया–गिरोला नाचा पार्टी, लोक मंजरी पार्टी, भिलाई, मटेवा नाचा पार्टी, भगत साज पार्टी, बिलासपुर, जय अंबे नाचा पार्टी, नीचूकोहड़ा, लोककला मंडली, टेड़ेसरा, संतोषी नाचा पार्टी लाटाबोड़, बैतलराम साहू नाचा पार्टी, दुर्ग, आदर्श देवार नाचा पार्टी, जय दुर्गा नाचा पार्टी, चंपा–बरसन नाचा पार्टी, दानी टोला नाचा पाटी, लखोली, रवेली नाचा पार्टी, बरसन नाचा पार्टी, नवागाँव, छत्तीसगढ़ी गंगा–जमुना पार्टी, अछोआ बल्दू बरातू नाचा पार्टी आदि।[18] गम्मत–नाचा की और भी अनेक पार्टियाँ है जो अपने सीमित परिवेश में होने के कारण अपने समीप के गांवों में जन–मन–रंजन हेतु अपनी सेवाएँ देती रहती है।

दुखत बात तो यह रही कि गम्मत–नाचा की सर्वाधिक चर्चित पार्टी 'रिंगनी–रवेली नाचा पार्टी' इस काल में पूरी तरह समाप्त हो गई। उसके कलाकारों को लेकर श्री हबीब तनवीर ने इसी काल में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि दिलाई, छत्तीसगढ़ी नाटकों को। उधर 'चंदैनी गोंदा' और 'सोनहा बिहान' भारी धूमधाम से सांस्कृतिक आकाश में अपनी उपस्थिति दर्शा रहे थे और इधर 'नया थियेटर' दिल्ली के निर्देशक जिन्हें भारत सरकार से पूरा संरक्षण मिल रहा था, जिनके नाट्य प्रदर्शन को देशभर में विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी, उद्योग संस्थान, विभिन्न विशाल मंच आयोजित कर अच्छी राशि प्रदान कर भरपूर योगदान दे रहे थे, ने अपने गम्मत नाचा के समथ पंद्रह–बीस छत्तीसगढ़ी कलाकारों को लेकर छत्तीसगढ़ी नाटक तैयार किए। सन् 1973 में उन्होंने 'नाचा वर्कशॉप' रायपुर में लगाकर 'गांव के नाव ससुराल, मोर नाव दामाद' नाटक तैयार किया। इसके प्रदर्शन ने आम दर्शकों को इतना प्रभावित किया कि लोग सिनेमा के प्रदर्शन की तरह इसे चाहने लगे। श्री तनवीर ने एक बड़ी जबरदस्त बात अपने प्रदर्शनों में

प्रस्तुत की वह यह कि हर नाटक का प्रदर्शन दो से ढाई घंटे के बीच का ही रखा। दर्शक एक फिल्म को पूरी जिज्ञासा के साथ दो–ढाई घंटे तक देखता है और फिर अपने अन्य कार्यकलाप में मस्त हो जाता है। इसीलिए कार्यक्रम की अवधि सीमित रखकर उन्होंने नगर और महानगर के दर्शकों की वाहवाहियाँ अर्जित की।

वास्तविकता तो यह है कि गांवों में कोई भी सांस्कृतिक कार्यक्रम चाहे वह गम्मत–नाचा हो, रामलीला हो, रहस हो, कृष्ण लीला हो, ऐतिहासिक–धार्मिक, सामाजिक नाटक हो या कोई भी अन्य विधा का प्रदर्शन हो, उसे रात 10 बज से प्रायः 6 बजे तक कार्यक्रम संचालक को चलाना ही पड़ता है। चूँकि किसी भी आयोजन में समीपवर्ती बीस–तीस गाँव के हजारों लोग कार्यक्रम देखने पैदल, साइकिल, बैलगाड़ी, भैंसागाड़ी, मोटर साइकिल, स्कूटर, जीप, बस आदि से आते है और प्रोग्राम देखने के बाद वापस लौट जाते हैं अतएव सुविधाजनक यही देखा गया है कि कार्यक्रम सुबह तक हो। चंदैनी गोंदा, सोहना बिहान, गम्मत–नाचा, रहस, रामलीला व नाटक आदि जहाँ सात–आठ घंटे कार्यक्रम देते हुए ग्रामीण, शहरी सभी दर्शकों को तृप्ति प्रदान करते रहे वहाँ नया थियेटर के छत्तीसगढ़ी नाटक मात्र ढाई–तीन घंटों में अपना प्रदर्शन प्रस्तुत कर दर्शकों से बिदा ले लेते हैं।

यद्यपि श्री तनवीर के साथ सभी छत्तीसगढ़ी कलाकार कर्मचारी के रूप में मासिक वेतन पर कार्य करते हैं और प्रदर्शन के दौरान उन्हें कुछ भत्ता भी प्राप्त होता है फिर भी श्रेष्ठ मंचों पर कार्यक्रम प्रस्तुति के मोह, विदेशों में जाने और प्रदर्शन के द्वारा नाम कमाने की ललक के बावजूद रंगमंच के नामी–गिरामी लोक–कलाकार श्री लालूराम साहू (अब स्वर्गीय), श्री मदन निषाद, श्री गोविंद राम निर्मलकर, श्री बाबूदास बोड़रा (अब स्वर्गीय) जैसे अत्यधिक प्रतिभाशाली कलाकरों के साथ बीसों छत्तीसगढ़ी कलाकारों ने श्री हबीब तनवीर का साथ छोड़ दिया।[19]

दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख यह कहते हैं कि "श्री हबीब तनवीर उनके लोक कलाकारों को दिल्ली ले गए और नया थियेटर की प्रस्तुतियाँ देश–विदेश में चर्चित हुई। उन्होंने अपनी व्यथा निम्न शब्दों में व्यक्त की है – "मेरे अपने जिगर के टुकड़े कलाकारों को मांगकर दिल्ली ले जाने के बाद श्री हबीब तनवीर के व्यवहार में बहुत निराश किया।"

इन तीनों महान् निर्देशकों के द्वारा एक से बढ़कर एककी प्रस्तुति की दौड़ में आधुनिक मंचीय गरिमा के अनुरूप अनेक प्रतिभावान मंच संचालकों और उनके लोक–कलाकार साथियों ने भी अच्छी पार्टियाँ बनाई और धूमधाम से अपने प्रदर्शन के द्वारा आम जनता को कार्यक्रमों के नए किस्म के स्वाद देने लगे। श्री केदार यादव, संगीत निर्देशक एवं गायक ने संगीत–नृत्य प्रधान 'नवा बिहान', श्री मधुकर राव वासिंग ने 'माटी जागिस रे', श्री रामविशाल शर्मा ने 'दौना पान', श्री गजाधर रजक ने 'तुलसी चौरा', श्री पुन्नु यादव ने 'देवारी', श्री प्रीतम साहू ने 'लोक यामिनी', भुइयाँ के भगवान, गँवई गंगा, गौरा चौरा, नवरंग कला केन्द्र, पुन्नी के चंदा, मोर गँवई गांव, मोंगरा मितान, लोकरंग आदि ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रम इस अवधि में तैयार हुए जो गम्मत–नाचा की तर्ज पर प्रहसन भी पेश करते थे ओर लोक धुनों पर लिखे छत्तीसगढ़ी गीतों पर लोकनृत्य भी। ऐसी संस्थाएँ आमतौर पर शहरी क्षेत्रों में गठित हुई और हर प्रकार की आधुनिकता को अपनाकर उन सबने भी दर्शकों को पूरी–पूरी रात कार्यक्रम दिखलाकर प्रभावित किया।

छत्तीसगढ़ी नाटक के रूप में अपनी प्रस्तुति से जन–मन को भाव विभोर करने वाले नाटकों में 'हरेली' और 'गम्मतिहा' ने अपार सफलताएँ प्राप्त की।

डॉ. शैलेजा चंद्राकर ने गम्मत–नाचा के विकास–क्रम पर अपनी बात गम्मतिहा पर केंद्रित करते हुए कहा कि "गम्मतिहा–नाचा के उन कलाकारों की व्यथा–कथा का जीवंत चित्रण था जिन लोगों ने सिवाय मंच के और किसी से कोई रिश्ता नहीं रखा।

Ukkpk dk ykdeph; Lo:i

नाचा का लोक मंचीय रूप आज जिस मुकाम पर है,वहाँ से हम जब पीछे मुड़कर देखते हैं – तो जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है, इसका स्वरूप ऐसा ही नहीं था जैसा कि वह आज है। अपने युग और परिवेश की बदलती तस्वीर की छाया स्वभावतः उस पर पड़ती रही है। एक युग था जब बिजली की व्यापक सुलभता नहीं थी। मशाल की रोशनी ह ीमंच का सहारा थी। माइक की व्यवस्था का भी सवाल ही नहीं था। गिने चुने वाद्यों में केवल चिकारा, मंजीरा और तबला जिसे

कमर में बांधकर कलाकार खड़े–खड़े ही बजाया करते थे। 'खड़ेसाज' के नाम से परिचित इस नाचा की शुरूआत ब्रम्हानंद के भजनों से होती थी। मंडई मेलों में, पर्वो, त्यौहारों में इस खड़े साज नाचा की अपनी अबाध लोकप्रियता थी।

फिर धीरे–धीरे मशाल की जगह गैसबत्ती ने लेली। कुछ अतिरिक्त वाद्यों को शामिल किया गया। ढोलक और हारमोनियम के शामिल जो जाने से नाचा के आकर्षण में वृद्धि हुई। हारमोनियम मास्टर नाचा पार्टी के 'मनीजर' कहलाने लगे। कई प्रसिद्ध नाचा पार्टियाँ इसी दौर में सामने आई। गुरूदत्त की नाचा पाटी, मंदराजी दाऊ की रिंगनी रवेली साज जिसमें ठाकुर राम, भुलवा, लालू, मदन जैसे अनमोल रत्न शामिल थे। धरम लाल कश्यप की नाचा पार्टी आदि। उन दिनों इन नाचा पार्टियों की खूब धूम थी। इसी दौर में फिल्मी चाल चलन, रंग–ढंग, अदाएँ और द्विअर्थी संवादों का चलन भी खूब बढ़ा। यह नाचा में परस्पर प्रतिस्पर्धा, उत्तेजना और सनसनी पैदा करने का दौर था।

इसी बीच लगभग सत्तर के दशक में छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धरती पर नाचा के समानान्तर कुछ अनूठे लोक मंचीय प्रयोग हुए। दाऊ रामचंद्र देशमुख जी एवं दाऊ महासिंह चंद्राकर जी जैसे समर्पित, संपन्न और जुनूनी कला साधकों ने क्रमशः 'चंदैनी गोदा' और 'सोनहा बिहान' जैसी युगांतरकारी छत्तीसगढ़ी लोक मंचीय प्रस्तुतियाँ दी, जिनकी उपलब्धियाँ अब अंचल के सांस्कृतिक इतिहास की धरोहर बन चुकी है। इन प्रस्तुतियों की आंतकारी भव्यता और चकाचौंध के समानान्तर श्री हबीब तनवीर का एक अलग ही किस्म का लोक मंचीय प्रयोग चलता रहा। हिन्दुस्तानी थियेटर फिर नया थियेटर के बैनर पर छत्तीसगढ़ी नाचा के कलाकारों, वाद्यों, गीतों एवं बोली को कच्चे माल की तरह अपने ढंग से अपनी प्रस्तुतियों में उन्होंने इस्तेमाल किया और अपनी विलक्षण प्रतिभा तथा सुनियोजित व्यूहरचना के तहत राष्ट्रीय–अंर्तराष्ट्रीय ख्याति पायी। खैर यह एक अलग ही तरह का प्रसंग है। प्रसिद्ध सोवियत नाटकार आर्बुजोफ ने कहा है – 'रंगमंच का मूल तर्क है प्रतीकात्मकता और सादगी। उसे चकाचौंध और भव्यता का पर्याय बना देना – रंगमंच के अंतर्निहित तर्क को ही परास्त कर देना है।' मेरी अपनी समझ में आर्बुजोफ की यह अवधारणा ही तनवीर जी की तमाम लोक मंचीय प्रस्तुतियों में अंतनिर्हित व्याकरण

का आधार है – जिसे दर्शकों से ज्यादा तथा कथित पराक्रमी नाट्य समीक्षकों ने उनकी प्रस्तुतियों को सराहा और आसमानी ऊँचाइयाँ दीं, जहाँ नाचा का ध्वज भी बीच–बीच में फहराता हुआ दिखाई दे जाता है।[20]

ykfjd pnk

लोरिकचंदा के प्रस्तोजा श्री महासिंग चंद्राकर, नियंत्रक लक्ष्मण चंद्राकर और समन्वयक नारायण चंद्राकर ने बहुत श्रम किया है। मिर्जा मसूद ने दृश्यों के अनुरूप प्रकाश, ध्वनि यंत्र का प्रयोग किया है जो मनोभावों को अधिक गहराई के साथ संप्रेषित करते हैं। छत्तीसगढ़ की समृद्ध परम्पराओं को दुहराना सरल है लेकिन उनके विकासमान तत्वों को पहचानना और नये सृजनात्मक रूपों में ढालना एक बड़ी चुनौती है। जोखिम भरा काम है। प्रेम साइमन की लेखनी में भाषा का आंतरिक संगठन, भाषा की चमक और भाषा का संगीत, कथा को मोहक बनाता है। राजा और दरोगा के चरित्र द्वारा उन्होंने सत्ता की क्रूरता, स्वार्थ परकता को रेखांकित करते हुए शोषण अनाचार और समकालीन अवसरवादिता की भी अच्छी खबर ली है :

'अंधरा राहय राजा अऊ कामचोर अधिकारी,
ठकुर सुहाती बोली बोले मिठलबरा अधिकारी।'

'लोरिक चंदा' के अंतर्गत अलग–अलग क्षेत्र का करमा है। इस कथा को चंदैनी, पंडवानी, ढोलामारू, कथागायन की शैली में प्रस्तुत किया गया है। संस्कारगीत, बिहावगीत और ददरिया गीत की धुनें है। अनेक युगल नृत्य की और समूह नृत्य की छटायें मौजूद है। लय और ताल में बंधे ये नृत्य आकर्षक लगते हैं। ये लोक नृत्य मानव जाति के अनुभव भंडार है। लोक नृत्यों में उल्लास और उन्मुक्त भावना अभिव्यक्त हुई है। इन लोक नृत्यों की गति चंचल और उद्दाम है।

'लोरिक चंदा' की प्रस्तुति में सर्वाधिक प्रभावित करने वाला तत्व उसकी काव्यात्मक लय है, जो एक संपूर्ण और सार्थक कविता के अनुभव से भीगी हुई है। यह रचनाशील ही नहीं कल्पनाशील निर्देशक की बहुत बड़ी उपलब्धि है। निर्देशक रामहृदय तिवारी सांस्कृतिक प्रश्नों, नैतिक आदर्शो और मानवीय मूल्यों को आधार

बनाकर सतत् अन्वेषण करते हैं। चंदा के संघर्ष में मानव जाति की अदम्य जिजीविषा को प्रेम रस से सींचते हुए ज्ञान दीप्ति द्वारा बेहतर रूप में प्रस्तुत किया है। वैवाहित रीति रिवाजों (तेलमाटी–चुलमाटी) का प्रयोग जमीन से जुड़ा है। काव्यात्मक लय और लोक संगीत में बुनी हुई इस प्रस्तुति के अंत में दशक दुखी होता है कि चंदा लोरिक को क्यों नहीं मिली? निर्देशक रामहृदय तिवारी गहरे अंतर्द्वन्द्व के द्वारा कथा के अंतरंग अर्थ तक पहुँचते हैं। यही कारण है कि लोक जीवन की मनभावन रंगारंग शैली में 'लोरिक चंदा' प्रस्तुति करते हुए निर्देशक कोई बना बनाया फार्मूला या समाधान नहीं देते वरन् दर्शकों के सामने प्रश्न रखते है। चंदा रूढ़ि वादिता के विरूद्ध एक विद्रोह है। चंदा नारी जाति की एक छटपटाहट भी है और जगमगाहट भी है। वह परम्परा की नहीं अनुराग की मीरा है। दुनियादारी की परिभाषा में चंदा गलत है। हृदय की भाषा में चंदा बिलकुल सही है। आखिर चंदा क्या है?

छत्तीसगढ़ लोक सांस्कृतिक यात्रा में सतत् प्रगतिशील 'सोनहा बिहान' संस्था द्वारा खचा–खच भरे नेहरू सांस्कृतिक भवन में सुप्रसिद्ध छत्तीसगढ़ी लोक गाथा 'लोरिक चंदा' का 'चन्दैनी' के साथ 'आपरेटा' शैली में सफलतापूर्वक, पूरी जीवन्तता के साथ अभिनय मंचन किया गया। 583

'लोरिक चंदा' एक चंदा नामक राजकुमारी और चरवाहे लोरिक की प्रणय गाथा है जो बांसुरी की मधुर तान से जन्म लेती है और अंत में त्रासद अनिश्चय के गर्भ में खोजाती हें ग्रामीण वीर चरवाहा लोरिक एक नरभक्षी शेर का वध करता है जो राज्य में आतंक मचा रखा था मगर उसका श्रेय राजा का दीवान स्वयं लेकर अपनी ओर से पुरस्कार के रूप में लोरिक को राजदरबार में नौकरी दिला देता है। लोरिक अवकाश के क्षणों में स्वभावतः बंशी की मधुर तान छेड़ता रहता है। एक दिन राजकुमारी चंदा बंशी की तान सुनकर लोरिक पर मोहित हो जाती है। जो धीरे–धीरे उनके बीच प्रगाढ़ प्रणय का रूप ले लेता है। राजा को जब इस प्रणय का पता लगता है, तब वह लोरिक को पिटवाकर राज्य से बाहर निकलवा देता है और पड़ोसी राजा के बेटे के संग चंदा की शादी का न्यौता भेजता है। पड़ोसी राजा का लड़का कोढ़ी है। संयोगवश कोढ़ी के पिता बने राजा को घायल अवस्था में पड़ा

कराहता लोरिक मिल जाता है। वह अपने लड़के की जगह लोरिक को दूल्हा बनाकर ले जाता है और राजकुमारी चंदा को ब्याह लाता है। चंदा जब पहली रात में पति गृह में प्रवेश करती है तो कोढ़ी पति को देखकर उसे गहन सदमा लगता है। कोढ़ी राजपुत्र तब उसे सब कुछ साफ–साफ बताता है कि उसका विवाह मुझसे नहीं किसी लोरिक नाम के युवक से हुआ है। इसके साथ ही वह राजपुत्र चंदा को स्वतंत्र कर देता है, कि वह अपने असली पति को ढूंढ ले। तब शुरू होती ह ैचंदा की अनवरत और आकुल खोज जो कभी समाप्त नहीं होती। भूखी, प्यासी बेहाल भटकती चंदा अपने पिता से मिलती है जहाँ उसे पता लगता है कि लोरिक मर चुका है। पर उसे विश्वास नहीं होता। वह अपने लोरिक की तलाश में निकल जाती है। लोरिक चंदा नाटिका तो यहाँ पर समाप्त हो जाती है। लेकिन लोरिक के लिए चंदा की अनवरत तलाश यात्रा, हर आदमी के गहरे अंतर्मन की चिरन्तन पुकार बनकर आदिकाल से न जाने किस अज्ञात के लिए निरंतर उठती रही है आज तक। चंदा के संघर्ष को इस अंचल की चेतना की अदम्य जिजीविषा के प्रतीक के रूप में भी देखा जा सकता है।[21]

लोरिक चंदा नाटिका का प्रारंभ सूत्रधार के रूप में लोक गायकों की एक मंडली के आगमन से होता है। यह संगीतमय मंडली दर्शकों को लोरिक चंदा के प्रणय की लोक गाथा बीच–बीच में सुनाती है। साथ–साथ चलता है, कहानी का मंचन और दृश्यांकन। हर दृश्य समाप्ति के बाद लोक गायकों का दल पुनः पुनः स्टेज पर आता जाता है और कथा परिचय देने के बाद ने पथ्य में चले जाता है। जैसे लोक गायक दल गांवों की चौपलों पर देर रात तक खड़े साज द्वारा लोक गीतों में लोककथा सुनाते हैं। वही शैली इस नाटिका में अपनायी गई है। जिसमें चिकारा जैसे दुर्लभ लोक वाद्य का उपयोग बखूबी सटीक ढंग से किया गया है। संगीत गीत और नृत्य अभिभूत करने वाला है, जिसके दायित्व को नाट्य जगत के प्रख्यात कलाकार मदन निषाद सहित आशा, शैलजा, मीनाक्षी व दीपक ने बखूबी निभाया है। ममता, पुष्पलता, विजय व मिथलेस के कर्णप्रिय कंठस्वरों ने नाटक को सरसता पग–पग पर प्रदान की है। पार्श्व संगीत में वायलिन का स्वर बसंत तिमोती एवं सारंगी वादन दुर्गा प्रसाद भट्ट जैसे विख्यात संगीतज्ञों ने किया है। जिन्होंने

दर्शकों को खूब प्रभावित किया। इसके साथ ही भूआर्य के मधुर बांसुरी वादन को भी लोगों ने तन्मयता से सुना और खूब सराहा।

अभिनय की दृष्टि से इस नाटिका में शिवकुमार दीपक एवं शैलजा क्षीरसागर दर्शकों के लिए विशेष केन्द्र बिन्दु रहे। शैलजा क्षीरसागर जो नाटिका की नायिका राजकुमारी चंदा है, कहीं न कीं अभिनय की ऊँचाइयों को भरपूर छू लेती है, लेकिन इसके साथ ही कहीं–कहीं सिनेमाई प्रभाव का स्पर्श अभिनय में कृत्रिमता भी ला देता है। वैसे शैलजा द्वारा रंगमंच में अहम भूमिका निभाने का यह पहला अवसर था। इसके बावजूद इसके अभिनय में आकर्षण और अलग प्रभाव है। इस नाटक द्वारा शैलजा से भविष्य में प्रचुर संभावनाओं की आहट जरूर मिलती है। अपने लघु अभिनय में कृष्णकुमार चौबे की भूमिका प्रभावशील रही जिन्होंने लोरिक के पिता और कोढ़ी राजकुमार की दोहरी भूमिका का निर्वाह बखूबी किया। दूसरी ओर लोक नर्तक एवं हास्य कलाकार पचकौड़ के रूप में मदन निषाद दर्शकों पर अमिट छाप छोड़ने में जबर्दस्त कामयाब रहे। ध्वनि प्रभाव, संयोजन, वेशभूषा उपुयक्त लगे लेकिन प्रकाश व्यवस्था के तकनीकी उपकरणों के प्रायोगिक सामंजस्य के अभाव की वजह से दृश्यों, बिम्बों के प्रभावकारी जीवन्तता में थोड़ी आँच आई।[22]

जहाँ हरियाली का लहराता सागर हो, लोकगीतों में स्नात खेत, सहजता के सौन्दर्य में लहराती जिन्दगी, निष्कपट व्यवहार की प्रवाहित सरिता, सरल विश्वास के वटवृक्ष जहाँ सिर उठाए खड़े हों और मानवीयता ही जहाँ का मुख्य स्वर हो–एक शब्द में उसे हम अंचल कहते हैं। अंचल नागरीय जीवन से अपनी पृथक पहचान रखते हुए अपनी प्रकृतिगत शैली के कारण पूरे देश में विख्यात रहे हैं।

इस संकट, भ्रम और निराशा की पीड़ा के बीच सत्तर के दशक में एक विराट आंचलिक सांस्कृतिक मंच 'चंदैनी गोंदा' का उदय हुआ। इस अंचल की सांस्कृतिक महिमा अपने नए रूप में आत्म गौरव के साथ उपस्थित हुई। इ समंच की पृष्ठभूमि यद्यपि छत्तीसगढ़ अंचल की ही थी, पर उसके चिंतन एवं आत्मीयता के स्वर समग्र राष्ट्र के ही रहे। जहाँ–जहाँ मनुष्य है, उनके मार्मिक दुख–दर्द हैं उन्हें अपनी संवेदना में संजो लेने वाली सुकुमार संस्कृति का नाम 'चंदैनी गोंदा' था। इसी

अंचल बनाम राष्ट्रीय चिंतन धारा एवं आस्था की जमीन पर सन् 1984 में कालजयी 'कारी' लोकनाट्य का जन्म हुआ।

इस अंचल की आम नारी की व्यथा कथा 'कारी', चंदैनी गोंदा के बाद रामचंद्र देशमुख की पुनः एक अन्यतम प्रस्तुति है। इसके संवाद लिखे है, प्रेम साइमन ने तथा निर्देशित किया है रामहृदय तिवारी ने। अनेक स्थानों में अश्वमेघी प्रदर्शनों के बाद, दो अक्टूबर 1984 के रात्रि, दुर्ग गंज मंडी के प्रांगण में विराट एवं मुग्ध दर्शक समूह के समक्ष पूर्ण, गरिमा एवं भव्यता के साथ 'कारी' का प्रदर्शन किया गया। जिसे देखने का मुझे सुअवसर मिला था।

इस अंचल में नारियों की सरलता, सादगी और परवशता को देखते हुए उन्हें 'गौ' अर्थात् 'गाय' कहकर पुकारा जाता है। छत्तीसगढ़ अंचल की नारी यहाँ की सांस्कृतिक संवेदना की मूल पहचान है। विडम्बना यह है कि मूल पहचान ही शोषण, गरीबी, अशिक्षा, अभाव और आत्महीनता की पर्तो के नीचे दबकर दीनहीन और क्षीण हो गयी है। जहाँ की संवेदना अपाहिज हो उस क्षेत्र का समर्थ होना असंभव है। सामर्थ्य के बीच सजग और सौष्ठव पूर्ण संवेदना में निहित हैं। इस छत्तीसगढत्र प्रान्तर की यही संवेदना का स्वर सौंदर्य सवाल बनकर लोकमंचीय सर्जना 'कारी' में उजागर हुआ है।

इस अंचल की नारी–संवेदना की प्रतीक है 'कारी'। यद्यपि वह छत्तीसगढ़ की आम नारी है, पर उसके चिंतन एवं अनुभूतियों का विस्तार समग्र राष्ट्र के समूचे नारी वर्ग तक बिखर–बिखर गया है। आज हम राष्ट्रीय एकता के गीत गाते हुए नहीं थकते। पर राष्ट्र आखिर क्या है? क्या वह सारे अंचलों की संवेदना एवं शक्ति का योग नहीं है? अंचल रूपी फूलों की माला जब चिंतन रूपी सूत्र में गुँथकर सामने आती है, तो उसी को हम राष्ट्र कहते हैं। अपनी पृष्ठभूमि में आंचलिक होते हुए भी परिवेश के विस्तार में राष्ट्रीय चरित्र है 'कारी'।

'कारी' के मंचीय बिम्बों में हम अपने अंचल बनाम राष्ट्र की आत्मा के दर्शन कर पाते हैं। 'कारी' में नारी–चरित्र और सदगुणों की महिमा का वास्तविक गान है। अपनी अशिक्षा, अभाव, अवमानना के बाद भी अपने चरित्र और सद्गुणों के दम से

एक आम नारी भी स्पृहणीय ऊँचाई के शिखर पर जगमगा सकती है 'कारी' इसका सशकत प्रमाण है।

अंचल की सांस्कृतिक क्रांति का शंखनाद है 'कारी'/ अंचल की नारियों के चरित्र हनन के विरूद्ध कए अभियान है 'कारी'/ इस भू–भाग का जो श्रेष्ठतम, उज्जवलतम और हरा भरा है, 'कारी' उसे सामने लाने की आकुल, अनथक चेष्टा है। /लोकसंस्कृति सहजता की एक महक है, 'कारी' उस महक की मोहक अभिव्यक्ति है।/'कारी' आंचलिक नारी का उज्जवल रूप है।/'कारी' सांस्कृतिक यात्रा का प्रकाश–स्तंभ है।/'कारी' छत्तीसगढ़ की अमर आस्था की प्रेरक अनुगूंज है।

'कारी' भी एक फूल है। छत्तीसगढ़ अंचल की माटी की उपज। जिसमें भले ही गुलाब की खुशबू नहीं, मगर अनगढ़ ढेले की आत्मीय महक है। 'कारी' असाधारण रूप से साधारण एक ऐसी नारी है, जिसकी जिंदगी में अंचल के सारे रंग प्रतिबिम्बित हैं। वह ऊँचे कुल की सुशिक्षिता नारी नहीं है। एक अनपढ़ रूप में भी कितनी सहज, सतेज, आत्मीय, ममतामयी, दृढ़ और स्वाभिमानी। छोटी होकर भी कितनी बड़ी इसकी बेमिसाल मिसाल है –'कारी'।

कारी कथा में हम पाते हैं –बेगुनाह होना कारी का सबसे बड़ा गुनाह है। वह उस अपराध का दण्ड भोगती है, जो उसने किया ही नहीं।

लोकमंच के महारथियों– दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख ने 'कारी' व दाऊ श्री महासिंग चंद्राकर ने 'लोरिक चंदा' प्रस्तुत किया। इन दोनों लोकनाट्यों के निर्देशन के जरिए आपने लोकमंच को कलात्मक संस्पर्श देकर नया आयाम दिया। छत्तीसगढ़ की नाचा शैली के तत्वों के अलावा प्रचलित लोकनृत्य, गीत व धुनों के साथ–साथ अन्य लोक विधाओं का भी सहारा लिया। सुखद संयोग की बात है– यह नया प्रयोग दर्शकों को खूब सम्मोहित कर गया। 'लोरिक चंदा' को टेली प्ले की शक्ल में उपग्रह दूरदर्शन नई दिल्ली ने 1983 में तीन बार प्रसारित किया। इसे दूरदर्शन के प्रांरभिक 25 वर्षो के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ 25 प्रस्तुतियों में एक का दर्जा मिला।[23]

शिवनाथ नदी ही ऐतिहासिक दुर्ग जिले के उत्थान पतन और स्वातंत्रोत्तर विकासक्रम की मूक साक्षी रही है, इसलिये इन पंक्तियों के साथ फिल्म की शुरूआत हुई है :

'यह नदी शिवनाथ/ यह मैकल सुता शिवनाथ/ अंक में भरकर महाकान्तार का विस्तार/बह रही संवत्सरों से, अनवरत उद्दाम/ समय का प्रतिबिम्ब अंकित/इस नदी के नील दर्पण में/कूल इसके मौन साक्षी/सभ्यता के अनगिनत उद्भव पराभव के/राजवंशों की अमिट कीर्तिकथा/पाषाण बनकर इस नदी की अंजुरी में कैद है/नदी है या युगों की युगों की अुनगूँज है शिवनाथ।'

इन पंक्तियों के साथ दुर्ग जिले के रोमांचकारी इतिहास के महत्वपूर्ण पन्ने परत दर परत खुलते चले जाते हैं। सन् 1090 में कल्चुरी नरेश रत्नदेव के महाभांडारिक तथा सेनापति जगतपाल देव ने दुर्ग को बसाया था। राजिम के राजीव लोचन मंदिर में उसकी पाषण मूर्ति अभी भी स्थापित है तथा वहीं के पत्थरों पर अंकित है उसकी भक्ति और शौर्य की कीर्ति गाथा। दुर्ग का नाम जगपालपुर था जो कालांतर में शिव दुर्ग फिर दुर्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अतीत को कुरदेना कितना रोमांचकारी होता है। इस डाक्यूमेन्ट्री को देखकर जाना जा सकता है।

'शिवनाथ की गोद में' दुर्ग जिले का इतिहास, भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति के साथ–साथ बीस सूत्रीय कार्यक्रम तथा आर्थिक विकास का सिलसिलेवार विवरण दिया गया है। इसके अंतर्गत कृषि, कृषक, उत्पादन, सिंचाई योजनाये, उद्योग एवं लघु कुटीर उद्योग, पशुधन, दुग्ध व्यवसाय, पशु–पालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, शिक्षा, पेयजल, वृक्षारोपण, आवासहीनों के लिये आवासीय कुटीर, स्टेप अप योजना, ट्रायसेम योजना, आदिवासियों एवं हरिजनों के उत्थान के लिये बनी अनेक कल्याणकारी योजनाएँ एवं उनके क्रियान्वयन का प्रमाणिक चित्रण किया गया है इस डाक्यूमेंट्री में।

श्री रामचंद देशमुख लोककला की दुनिया का एक ऐसा अद्भूत व्यक्ति है, जिससे परिचय पाने के बाद उन्हें और अधिक जानने का मन होता है। एक बहुरंगी व्यक्तित्व कला, साहित्य, चिकित्सा और चिंतन की दुनिया को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के चटख रंगों से चित्रित करता हुआ। इस अंचल में ही नहीं, बल्कि पूरे

भारत में लोककला की दुनिया को इतना समृद्ध गंभीर और परिष्कृत बहुत कम लोगों ने किया होगा। जितना इन्होंने किया है।

तिवारी जी के लिए यह 'दायरा' निजी तौर पर सूक्ष्म पाठशाला की तरह है, जहाँ वे नित्य प्रति मिलने जुलने वालों के जीवन से गूढ़ 'फलसफा' सीखते है। 'हर आदमी अपने आप में एक ग्रंथ है – उसे पढ़ा जाना चाहिए' – इस मान्यता के कायल तिवारी जी हर आगंतुक का अध्ययन उनकी शारीरिक भाषा, चेहरे पर उभरती भाव भंगिमाएँ और स्वरों के आरोह–अवरोह के आधार पर करते रहने के अभ्यस्त हो चुके हैं। इस प्रक्रिया से उन्हें आनंद आता है और उनका अपना व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक ज्ञान भी बढ़ता है।

"नाचा'' छत्तीसगढ़ बोली में प्रस्तुत होता है। गीत एवं संवाद शैली पर आधारित इस नाट्य परम्परा में नृत्य एवं संगीत का खुलकर प्रयोग होता है। नाचा की भाषा आम बोलचाल की भाषा होती है जिसमें ठेठ छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रयोग किया जाता है। चूंकि नाचा का कोई स्क्रिप्ट नहीं होता है इसलिए कलाकार प्रसंगानुरूप संवाद बोलते हैं। नाचा के संवाद छोटे–छोटे होते हैं और कलाकार संवादों में मिश्र वाक्य या संयुक्त वाक्यों का प्रयोग नहीं करते। नाचा के संवाद सामाजिक रीति–रिवाजों, झूठी मान–मर्यादाओं पर करारा व्यंग्य और हास्य की सरसता लिए होते हैं। जीवन के सहज और सरल अंतर रूप इन संवादों को गतिशील और स्मरणीय बनाते हैं। नाचा के कलाकारों में गजब की प्रति उत्पन्नमति होती है। कलाकार प्रदर्शन के दौरान प्रतिउत्पन्नमति से कोई चुटिला संवाद पूर्व निर्धारित संवादों के साथ जोड़ देते हैं और तत्काल अपनी प्रतिक्रिया भी दूसरा कलाकार व्यक्त कर देता है। इसी कारण नाचा के संवाद कम होने के बावजूद साधारण होते हुए भी तीखी पकड़ वाले होते हैं कलाकारों का बोलने का लहजा और ढंग कथ्य को मूर्त रूप देते हैं। संवादों में हास्य व्यंग्य का पुट अनिवार्य रूप से पाया जाता है।[24]

"नाचा" का कथानक दर्शक के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र होता है। ये कथानक प्रायः सामाजिक होते हैं। जिनमें समाज में प्रचलित मान्यताओं एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला जाता है। नाचा के कलाकार किसी भी कथानक को अपने प्रदर्शन

के लिए चुनते समय इस बात का बराबर ध्यान रखते हैं कि कथानक में मनोरंजन का सर्वाधिक पुट हो अर्थात् हास्य एवं व्यंग्य अनिवार्य रूप से उपस्थित हो। कथानक के माध्यम से समाज में नई जागृति एवं चेतना लाने का प्रयास भी किया जाता है। उसी प्रकार किसी सामाजिक या पारिवारिक कमजोरी पर कटाक्ष करने वाले कथानक के माध्यम से बुराइयों को समाप्त करने का भाव छिपा होता है।

किसी नये कथानक को तैयार करने के पूर्व नाचा के सभी कलाकार आपस में बैठकर कथानक पर विचार विमर्श करते हैं और प्रस्तुतिकरण के पूर्व ही पात्रों का बंटवारा कर लिया जाता है। तत्पश्चात् हर कलाकार को अपने लिए संवाद तैयार करने और असरदार बात सोचने की जवाबदारी सौपी जाती है। फिर अलिखित संवाद वाले कथानक पर रिहर्सल किया जाता है और सभी कलाकार संवाद अदायगी एवं अभिनय पर पूरी शिददत के साथ मेहनत करते हैं। इस दौरान संवाद को अधिक चुटिला एवं रोचक बनाने की लगातार कोशिश जारी रहती है। यही कारण है कि गांव में कोई भी मंडली एक गम्मत को बीस मिनट में पूरा करती है तो वहीं गम्मत दूसरे गांव में तीस मिनट और तीसरे गांव में 45 मिनट में पूर्ण होता है। यानि पर प्रदर्शन के बाद गम्मत का स्वमेय विकास होते जाता है। किसी कलाकार को जब उस गम्मत से संबंधित कोई नयी बात सूझ जाती है तो वह उसके अनुरूप अभिनय करता हुआ संवाद बोलता है और उसे गम्मत में शामिल करने का सुझाव देता है। नाचा मंडली के सभी कलाकारों की सहमति से नये अंश को भी गम्मत में शामिल कर लिया जाता है और यह सिलसिला लगातार जारी रहता है। हर प्रदर्शन के साथ कथानक मंजता जाता है और इसमें संवाद चुटीले होते हैं।

सामान्यतः 10–12 लोगों को मिलाकर नाचा का एक दल तैयार हो जाता है नाचा के प्रमुख पात्र 'परी' और 'जोकर' होते हैं। शेष साजिन्दे अर्थात वादक कलाकार होते हैं। एक नाचा दल में कम से कम दो परी एवं दो जोकरों का समावेश रहता है। प्रायः पुरूष कलाकार ही नृत्य एवं गायन करने वाली 'परी' का वेश धारण करते हैं और अपने सियोचित हावभाव, आकर्षक रूपसज्जा, वस्त्राभूषण

एवं सरस कंठ से गायन एवं नृत्य कर दर्शकों का मनमोह लेते हैं। गांव में नाचा के प्रदर्शन के पूर्व परी को लेकर दर्शकों में काफी उत्सुकता रहती है।

"नाचा" का दूसरा महत्वपूर्ण पात्र ''जोकर'' होता है। नाचा में जोकर को मंच पर मनमाना अभिनय करने एवं किसी पर भी कटाक्ष करने की पूरी छूट रहती है। जोकर अजीबो–गरीब हरकतें करता हुआ अपना संवाद बोलता है अर्थात् उसकी पूरी कोशिश अपने अभिनय के माध्यम से श्रोताओं को हंसाने गुदगुदाने की रहती है। जोकर की वेशभूषा विचित्र होती है जिसे देखकर लोग बरबस ही हँस पड़ते हैं। जोकर कभी मंच पर अपने चेहरे का एक हिस्सा सफेद और दूसरा हिस्सा काले रंग में पोतकर मंच पर उतरता है तो कभी अपने कमर में रस्सी से सामने की ओर झाड़ू और पीछे तरफ सूपा बांधकर अभिनय करते हुए दर्शकों को हंसाने की कोशिश करता है।

"नाचा" के अन्य पात्रों में वादक कलाकार आते हैं तो हारमोनियम, बैंजो, दमऊ, दफड़ा, मोहरी एंव सिंगबाजा में न केवल अपने फन का कमाल दिखाते हैं बल्कि गम्मत के दौरान पात्रानुसार अपने हिस्से का अभिनव करते हैं। प्रायः नाचा पार्टी में हरमोनियम बजाने वाला नाचा पार्टी का प्रमुख होता है जिसे मनिज्जर (मैनेजर) कहा जाता है।[25]

संगीत पक्ष नाचा की आत्मा है। बगैर संगीत के नाचा की कल्पना नहीं की जा सकती। नाचा में संगीत संयोजन पहले पारम्परिक वाद्ययंत्रों क्रमशः चिकारा, तबला, मोहरी, मंजीरा एवं दफड़ा से किया जाता था। समय के साथ इसमें परिवर्तन हुये और अब नाचा में संगीत संयोजन हारमोनियम, बैंजो, तबला, ढोलक, खंझेरी, मंजीरा एवं सिंगबाजा से किया जाता है। मधुर गीतों के अनुरूप वाद्यों का सुंदर संयोजन नाचा के प्रदर्शन में चार चांद लगाता है। नाचा में पारम्परिक लोकगीत सुआ गीत, गौरा गीत, जंवारा गीत एवं ददरिया आदि पारम्परिक लोक धुन बजाते हैं। इसके अतिरिक्त गम्मत में किसी पात्र द्वारा जब अपनी बात को वनज देने के लिए प्रभावशाली संवाद बोला जाता है तो तबला वादक तबले की थाप से उसकी पुष्टि करता है। गीत और गम्मत के बीच के समय को हारमोनियम और बैंजो की धुन से पूरा किया जाता है ताकि दर्शक बोरियत महसूस न करें।

"नाचा" का प्रदर्शन रात में प्रायः नौ बजे के बाद शुरू होता है तब तक गांव में सभी लोग रात का भोजन कर चुके होते हैं ओर नाचा देखने के लिए मंच के समीप इकट्ठा हो जाते हैं। नाचा का प्रदर्शन रातभर चलता है और सूर्योदय की प्रथम किरण के साथ नाचा समाप्त होता है। नाचा का प्रारंभ मंच पर परी के आगमन के साथ शुरू होता है। नाचने गाने वाले सभी कलाकार सर्व प्रथम साजिन्दे एवं साज को प्रणाम करते हैं तत्पश्चात् सबसे पहले सुमिरन गीत होता है। जिसके तहत माँ सरस्वती एवं भगवान गणेश की वंदना की जाती है। सुमिरन पूरा होने के बाद परी कोई भी छत्तीसगढ़ी या फिल्मी गीत प्रस्तुत करती है ओर उसके साथ ही नैनाभिराम नृत्यों का क्रम प्रारंभ होता है।

परियों द्वारा तीन चार गीत के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् वादक "जौकर–निकलौनी" पार बजाते हैं। इससे दर्शकों को यह पता चल जाता है कि अब मंच पर जोकर आने वाला है और गम्मत का क्रम शीघ्र ही शुरू होने वाला है। मंच पर जोकर के आगमन के साथ ही शुरू होता है हास्य प्रंहसन "गम्मत" जिसमें परियाँ महिला चरित्रों का एवं जोकर पुरूष चरित्रों का अभिनय करते हुए हास्य प्रसंग प्रस्तुत करते हैं। हास्य, व्यंग्य, सुख–दुख, हास परिहास के साथ इन गम्मतों में समग्र छत्तीसगढ़ का लोक जीवन समाहित रहता है। नाचा में गम्मत का महत्वपूर्ण स्थान है। नाचा में गम्मत को शामिल करने का श्रेय स्व. दुलार सिंह साहू उर्फ मँदराजी दाऊ को जाता है। छत्तीसगढ़ की जीवन शैली को गम्मत में शामिल करने का श्रेय स्व. दुलार सिंह साहू उर्फ मंदराजी दाऊ को जाता है। छत्तीसगढ़ जीवन शैली को गम्मत में शामिल करने से "नाचा" को लोक–प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

नाचा के प्रारंभिक चरण में लोग उसे उपहास पूर्ण नजर से देखते थे क्योंकि अधिकांश मंडलियाँ निम्न स्तर के कार्यक्रम प्रस्तुत करती थीं। उस समय तक अच्छे कथानक, शिष्ट कथोपकथन और शालीन प्रदर्शन वाली नाच मंडलियों की संस्था नगण्य थी। 1932 में मंदराजी दाऊ ने पहली संगठित नाचा पार्टी बनाई। 1951 में दाऊ रामचंद देशमुख ने छत्तीसगढ़ अंचल में फैले हुए कलाकारों को लेकर "छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल" नामक संस्था गणित की और कई नाटक प्रस्तुत किये। श्री देशमुख ने नाचा को परिमार्जित कर "चंदैनी गोंदा" नामक संगीत

नृत्य प्रधान कार्यक्रम प्रस्तुत किया। लगभग सत्तर कलाकारों के साथ भारी भरकम मंच में प्रस्तुत इस कार्यक्रम के बाद ही बुद्धिजीवन छत्तीसगढ़ी संस्कृति की ओर आकृष्ट हुए। चंदैनी गोंदा छत्तीसगढ़ी नाचा के विकास में मील का पत्थर साबित हुआ। आज अनेक लोक कला मंडलियाँ अस्तित्व में आ गई है।

छत्तीसगढ़ में जहाँ चंदैनी गोंदा, सोनहा बिहान, नवाबिहान, हरेली, दौनापान, दसमत कैजा, नवरंग कला केन्द्र, माटी जागिस रे, नवा अंजोरी पखरा फूल, तुलसी गंगा, भोजली गंगा, गौराचौरा, अंजोरी राम, नवाजोत एवं दूध मोंगरा के माध्यम से छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति मुखरित हुई वहीं नाचा के कलाकार श्रीमती फिंदाबाई ने अभिनय के क्षेत्र में संगीत नाट्य अकादमी पुरस्कार एवं तुलसी सम्मान प्राप्त किया है। फिदाबाई, मदन निषाद, भुलवाराम, गोविन्द निर्मलकर एवं देवीलाल नाग ने भी मध्यप्रदेश शासन का तुलसी सम्मान प्राप्त कर इस विधा को प्रतिष्ठा दिलाई।[26]

नाचा को प्रस्तुत करने वलाी मंडलियों एवं उनके संचालकों में रवेली साज (मंदरजी दाऊ), रिंगनी साज (ठाकुर राम), रायखेड़ा नाच पार्टी (झाडूराम शांडिल्य), मटेवा पार्टी (नाईकदास झुमुकलाल), राजनांदगांव पार्टी (लालूराम साहू), टेड़ेसरा पार्टी (स्वर्ण कुमार साहू), टेड़ेसरा (दत्तू यादव), मोहारा पार्टी (गोविन्द निर्मलकर) एवं डोंगरगांव पार्टी (मदन निषाद) प्रमुख है। बहरहाल छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा एक सशक्त लोक नाट्य है जो अपने समय की तल्ख सच्चाईयों को पूरी गंभीरता के साथ हंसी–हंसी में सामने लाकर कुरीतियों पर पूरे साहस से चोट करता है। नाचा समग्र छत्तीसगढ़ी संस्कृति का प्रतिबिम्ब है। नाटयशास्त्र द्वारा परिभाषित नाटक के समान ही 'नाचा' में न केवल संवाद, गीत, अभिनय, रस और नृत्य होते है, बल्कि उक्त शास्त्र के अनुसार, अर्थ, काम और हास्य की भी प्रस्तुति होती है। 'नाचा' में 'युद्ध' और 'वध' को स्थान ही दिया गया। यह लोक–मानस के अनुकूल ही है। श्रम की अभिव्यक्ति तो लोक की विशिष्टता है। लोक, श्रमिकों का समाज है। श्रम वहाँ सूक्ष्म धर्म भी है। अर्थ और काम 'श्रम' के अनुगामी है। नाचा मनोरंजन प्रधान होता है, इसलिए हास्य की मात्रा सर्वाधिक होती है। नाचा का नायक ही 'जोकर' या 'जोक्कड़' की भूमिका अदा करता है। आज भी छत्तीसगढ़ के ग्राम्य लोक समाज में नाचा के कलाकारों के लिए अत्यधिक आदर–भाव है। 'जोकर' या

'जोक्कड़' की भूमिका अदा करने वाला कलाकार अपने गाँव का लगभग 'हीरो' ही होता है।

'लोक और शिष्ट समाज के विदूषकों में पदान्तर स्पष्ट है। नाचा लोक नाट्य में 'जोकर' प्रमुख पात्र होता है, किन्तु शिष्ट नाटकों में वह नायक का सहायक भर होता है। 'नाचा' में जोकर की उपस्थिति के कारण सामाजिक समस्याओं के रहते हुए भी, अंत तक हास्य बना रहता है। इसमें सबसे अच्छी बात यह होती है कि दर्शक दुखान्तता को दूर से ही नमस्कार कर लेता है। नाचा रात भर चलता है और दर्शक रातभर जागता है किन्तु सुबह बिल्कुल ताजा दम मिलता है। 'जोकर' या 'जोक्कड़' के हास्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक विद्रूपों पर करारा व्यंग्य होता है। 'नाचा' में 'जोक्कड़' का पार्ट सर्वाधिक कठिन माना जाता है, चूकि उसे वही निभा सकता है तो हाजिर जवाब हो, प्रत्युत्पन्न–मति हो। नाचा के अंदर होने वाले 'गम्मत' के संवाद पूर्व निश्चित नहीं होते। यह भी 'लोक' की विशिष्टता है। सभी पात्रों को समयानुकूल संवाद गढ़ना होता है। शास्त्रीय नाटकों में यह खलने वाली बात हो सकती है, किन्तु नाचा में यह 'गम्मत' की शक्ति बन जाती है। इससे नाचा के विषय का विस्तार भी होता है। छत्तीसगढ़ में 'गम्मत' का अर्थ ही हास्य और हँसी ठिठोली है।

नाचा के 'जोक्कड़' की नजरों से समाज की विसंगतियाँ छुपी हुई नहीं होती। वह उन पर हास्य–भरा व्यंग्य करता चलता है। ऐसे समय में वह 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता–सा प्रतीत होता है। यदि शास्त्रीय रस–समीक्षा की बात करें तो यहीं पर 'सामान्यीकरण' के नियम लागू होते हैं। सामान्य लोक–दर्शक स्वयं को 'जोक्कड़' के स्थान पर अनुभव करने लगता है। उदाहरण के तौर पर साधु रूप धारी जोक्कड़ धर्म के बिगड़ते स्वरूप को देखकर 'नारायण–नारायण' के स्थान पर 'नहाये रेहेन–नहाये रेहेन' (अर्थात नहाया या स्थान किया था) का संवाद रचता है। यह ठग विद्या में माहिर नकलची साधुओं के 'औधड़' रूप और अस्वच्छता पर करारा व्यंग्य है। नाचा के कलाकार शब्दों को तोड़–मरोड़कर नये अर्थ देने वाले शब्द गढ़ने में कुशल होते हैं। जो कलाकार इस कला में जितना माहिर होता है, वह उतना ही सफल होता है। इस तरह नाचा का लोक कलाकार अभिनेता और

रचनाकार दोनों एक साथ होता है। यह भी 'लोक' की विशिष्टता है। शास्त्रीय नाटकों में सब कुछ बंधे बंधाए दायरे में चलता है।

जिसे तरह से नाचा के नायक को 'जोक्कड़' कहा जाता है, उसी तरह नायिका को 'परी' कहा जाता है। 'परी' शब्द फारसी का है, किन्तु इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि नाचा का उद्‌भव इस्लामियों के आगमन के पश्चात् हुआ। जिस तरह से दूसरी कलाएं लोक में मौजूद रही हैं, उसी तरह नाट्य–कला भी लोक में मौजूद रही होगी। यह सच है कि समय की यात्रा में नाचा के पात्रों के नामों में अंतर आया है।

ukpk d dN mnkgj.k ¼dFkkud½

BuBfu;k

किसी एक गांव में एक पनका और उसकी पत्नी रहते थे। पनिका का नाम ठुनठुनिया था। उसी स्त्री उससे हमेशा कहती कि तुम्हारा नाम अच्छा नहीं है, इसे बदल डालो। पनिका उसे हंस कर टाल देता था। किन्तु स्त्री उसका पीछा ही नहीं छोड़ती थी। इसी प्रकार काफी दिन बीत गये। पनकिन फिर कहती तुम कोई सुंदर सा नाम रखो तब पनिका ने रोज–रोज के झगड़े से तंग आकर सुंदर नाम ढूँढ़ने के लिए निकलने का निश्चय किया तथा अपनी स्त्री से रास्ते के लिये रोटी बनाने को कहा। इतना कहकर वह सो गया।

प्रातः होते ही पनका ने अपनी गठरी में रोटियाँ बाँधी और सुंदर नाम की खोज में चला गया। जाते–जाते वह एक गांव में पहुँचा जहाँ एक आदमी की मृत्यु हो गई थी और लोग उसे श्मशान घाट ले जा रहे थे। राम नाम सत्य है की ध्वनि से वातावरण गूँज रहा था, बड़ा ही करूण दृश्य था। ठुनठुनिया ने सोचा, 'चलो अच्छा ही हुआ। यह आदमी तो मर गया, अब इसी का नाम रख लेना चाहिए।' उसने भीड़ में के एक आदमी से पूछा – भाई! कौन मर गया। उसने बताया कि अमरनाथ मर गया। अब ठुनठुनिया सोचने लगा कि अमरनाथ मर गया जो अमरों के स्वामी है। इसलिये यह नाम उपयुक्त नहीं है।

ठुनठुनिया वहाँ से आगे बढ़ गया। वह एक गांव में किसान के खलिहान में पहुँचा, जहाँ एक किसान धान में से सूखी घास अलग कर रहा था। ठुनठुनिया ने उससे पूछा – 'भाई! तुम बहुत मेहनत कर रहे हो। तुम्हारा नाम क्या है?' उसने अपना नाम धनपत बताया। अब ठुनठुनिया ने फिर सोचा कि धन का स्वामी है वह तो धान से पयाल को अलग करा रहा है, अतः धनपत नाम रखने का कोई लाभ नहीं। उसने अपनी बीड़ी सुलगाई और आगे बढ़ गया। नाम की खोज में जब वह आगे बढ़ा तो उसे राह में एक आदमी मिला। उस समय धूप काफी तेज हो चुकी थी। जिसके कारण वह व्यक्ति पसीने से लथपथ हो रहा था। उस व्यक्ति के कठोर परिश्रम को देखकर उससे ठुनठुनिया ने उसका नाम पूछा। और पूछा कि वह कहाँ जा रहा है? 'मैं अपने मालिक के काम से जा रहा हूँ और मेरा नाम लक्ष्मणपति है।' उसने कहा। इतना कहकर वह व्यक्ति चला गया। किन्तु इस नाम को सुनकर ठुनठुनिया ने सोचा कि बड़े–बड़े राक्षसों को मारने वाले योगीराज लक्ष्मण के नाम वाला व्यक्ति इस प्रकार से बहंगी उठा रहा है। अतः यह नाम रखना भी उचित नहीं, और ठुनठुनिया उसी समय चिल्ला पड़ा'

अमर को मरते हुए देखा
धनपत को देखा सुनते हुए पयाल
लछमनपति को कांवर ढोते हुए देखा
त ठुनठुनिया उतरगे पार।

उसने निर्णय किया कि इन सभी नामों से उसका ठुनठुनिया नाम श्रेष्ठ है। ठुनठुनिया वहीं से वापस घर की ओर लौट गया। उसकी पत्नी ने उससे पूछा कि तुमने कौन सा नाम पसंद किया? ठुनठुनिया ने संपूर्ण वृतान्त सुना दिया जिससे उसकी स्त्री को भी वस्तुस्थिति का बोध हो गया। उसके बाद दोनों में नाम को लोकर कभी भी झगड़ा नहीं हुआ।

ikxk if.Mr

इस लोक नाट्य में दो प्रमुख पात्र होते हैं पहला पुरोहित (अनपढ़ ब्राम्हण) और दूसरा कृषक युवक। इस नाटक में अपने पिता की मृत्यु के बाद भोला–भाला

कृषक युवक अपने पिता का श्राद्ध पूर्ण करता है। श्राद्ध के बाद वह पण्डित से सत्यनारायण की कथा का आयोजन करता है। दूसरा पात्र वही अनपढ़ पण्डित सत्यनारायण की कथा अनपढ़ होने के बाद भी अनोखे अंदाज में पढ़ता जाता है। दोनों ही पात्रों की सरलता, अज्ञानता द्वारा नाटक में हास्य का सृजन किया जाता है। ' 'भरम का भूत' भी एक लोकप्रिय नाट्य है। दो पत्नी वाले व्यक्ति की दुर्दशा का वर्णन ये कलाकार बखूबी करते हैं। ऐसे व्यक्ति की तुलना में अपने अभिनय द्वारा पीपल की पत्तियों से करते हुए बहुपत्नी प्रथा को गलत बताते हैं। अधिकांश लोक नाट्यों में यथार्थ ही कथावस्तु का आधार बनता है। इन लोक नाट्यों में कल्पना की अपेक्षा सत्य पर अधिक बल रहता है। कोमल कोठारी ने सही लिखा है, "लोककथाएँ कभी भी काल निरपेक्ष नहीं होती और किसी भी कथा का रूप यदि इतिहास के दौरान से निकलकर, हम तक पहुँचा है तो सामाजिक उपयोगिता असंदिग्ध रूप से बनी रही है। लोककथाएँ वस्तुतः केवल प्राचीन की अवशेष ही नहीं बल्कि विशिष्ट समाज के सांस्कृतिक संदर्भ की एक जरूरत है और उसी जरूरत ने उसे जिन्दा रखा है। ये जरूरतें भिन्न–भिन्न हो सकती है और विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से संश्लिष्ट संबंध होने के कारण उनकी इतिहास के दौरान में जीवन यात्रा संभव हो सकी है। लेकिन काल की इस परिक्रमा में लोककथाओं के सामाजिक प्रसंग बदलते रहे और ठीक उन्हीं घटनाओं में नये–नये अर्थो की संयोजना संभव बनती गई। सामन्ती आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था के बीच लोक कथाओं की घटनाएँ चलती हैं किन्तु इन्हीं आर्थिक–सामाजिक संबंधों के गत्यात्मक परिवर्तन अपने आप नये मूल्यों की स्थापना करने में सफल हो जाते हैं।"

ukpk esa ukjh ik= % iqo: dh fLFkfr

छत्तीसगढ़ी नाचा में नारी चरित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। लेकिन उल्लेखनीय है कि प्रायः पुरूष ही नारी का स्वांग रचकर नारी पात्र का अभिनय करते हैं। नारी पात्र द्वारा अपनी भूमिका स्वयं न निभा पाना तथा नारी पात्र की भूमिका में पुरूषों द्वारा नारी का स्वांग रचकर कला प्रदर्शन करना इस दिशा में चिंतन के लिए विवश करता है। लोकनाट्य में पुरूषों द्वारा नारी–चरित्र का अभिनय करने की परम्परा नई नहीं है। प्राचीन समय में (कुछ अपवादों को छोड़कर)

नारी–वर्ग कला प्रदर्शन से प्रायः अछूता ही रहा है। भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में नारी की भूमिका पर की चाहरदीवारी के भीतर तक ही सीमित रही है। घर के बुजुर्गो, पिता व पति की इच्छा ही उसकी अपनी इच्छा बन गई (या बना दी गई)। यदि किसी स्त्री ने कला के प्रति अपनी रूझान दिखाई भी, तो उन्हें यातनाएँ सहनी पड़ी या फिर वर्जनाओं का शिकार होना पड़ा। धीरे–धीरे शिक्षा के प्रचार–प्रसार, शासकीय व्यवस्था व वैज्ञानिक मानसिकता के प्रभाव के चलते परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ।

मूलतः छत्तीसगढ़ी नाचा के कलाकार जीवनगत परिस्थितियों व अनुभवों का सशक्त चित्रण मंच के माध्यम से करते हैं। छत्तीसगढ़ी नाचा का दर्शक एक आम–नागरिक होता है। दूसरी ओर गांवों की पृष्ठभूमि में झांके तो ग्रामीण किसान अथवा निम्न तबके के लोग नाचा के दर्शक होते हैं। इन दर्शकों के लिए जन–रंजन का उद्‌देश्य प्रमुख होता है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए नाचा का कलाकार अपनी कला–प्रस्तुति उसी स्तर पर करता है, जिस स्तर पर आम दर्शक के लिए नाट्य हो सके। इसके लिए नाचा के कलाकार कभी–कभी कलात्मक मर्यादा का अतिक्रमण करने विवश हो जाते हैं। नाचा में नारी की भूमिका निभा रहा एक पुरूष कलाकार जितनी स्वतंत्रता पूर्वक नारी सुलभ चरित्र को प्रस्तुत करता है, उतनी स्वतंत्रता पूर्वक नारी पात्र उस भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकती। इसका कारण प्रकृति प्रदत्त मर्यादित आचरण तथा लज्जा और शील है।

दरअसल लोकनाट्य में शिष्ट हास्य का प्रयोग बहुत पहले से होता रहा है। लेकिन पिछले तीन–चार दशकों में लोकप्रिय संस्कृति, फिल्म और टी.वी. का दबाव तथा स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों को मिली आजादी का असर अन्य कलाओं में जहाँ उनकी सहभागिता के रूप में दिखाई देता है लेकिन इस विकृति के चलने 'नाचा' में स्त्री कलाकारों की भागीदारी को प्रोत्साहन नहीं मिल पाया।[27] नाचा का आविर्भाव भी अपनी मर्यादित शैली में मनोरंजन करने के उद्‌देश्य से ही हुआ प्रतीत होता है। छत्तीसगढ़ी कला के एक अन्य रूप सुवागीत में नारी–चित्रण का जो स्वरूप दिखाई देता है, लगभग वही स्वरूप हमें छत्तीसगढ़ी नाचा में भी देखने को मिलता है। इस अर्थ में देखे तो छत्तीसगढ़ अंचल के नगरीय व ग्रामीण सभ्यता में नारी जीवन के

संघर्ष का कटु चित्रण नाचा के माध्यम से लोक–कलाकार प्रस्तुत करते हैं। नाचा में भले ही स्त्रियों ने भाग न लिया हो, लेकिन उनके जीवन की विडम्बनाओं और त्रासद स्थितियों का चित्रण 'नाचा' में मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ''नाचा'' छत्तीसगढ़ी अंचल में प्रचलित लोकनाट्य की एक प्रमुख शैली है, जिसे आम जनता हजारों की संख्या में रात–रात भर जागकर उतावली और बावली होकर देखती है। सूर्य की पहली किरण क्षितिज पर नहीं फूटती, तब तक इसके दर्शक मंत्रमुग्ध से बैठे रहते हैं। गांव के बच्चे और बूढ़े, युवा और महिलाएँ सभी को समान रूप से प्रिय नाचा जनरंजन के साथ लोकशिक्षण का भी अत्यंत समर्थ माध्यम है। छत्तीसगढ के मैदानी क्षेत्रों में लोकनाट्य के रूप में प्रचलित नाचा गम्मत का अत्यंत प्रचार प्रसार हुआ है जो केवल स्थानीय स्तर पर नहीं बल्कि देश और विदेश में भी गर्व के साथ स्वीकार किया गया है।

कुल मिलाकर आशय यही है कि आज नाचा लोक नाट्य अपने विविध रूपों में पूरी ऊर्जा शक्ति और प्रभाव को लिए युग के साथ कदम मिलाता प्रवहमान है। छत्तीसगढ़ लोक संस्कृति की यह पयस्विनी किस सागर में समायोगी – कौन कह सकता है? छत्तीसगढ़ के हम संस्कृति धर्मी केवल कामना कर सकते हैं कि नाचा की यह आत्मीय तरंगिनी तब तक प्रवाहित रहे, जब तक इस छत्तीसगढ़ प्राँता के लोक जीवन में स्पंदन है।

I inHk xiFk

1. लोकमंच के पुरोधा, डॉ संतराम देशमुख, श्री प्रकाशन, पृ. 30
2. लोकनाट्य परंपरा और प्रयोग, डॉ संतराम देशमुख, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली
3. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग, पृ. 36
4. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य, शोध ग्रंथ डॉ. श्रद्धा चंद्राकर, पृ. 106
5. लोकमंच के पुरोधा, डॉ संतराम देशमुख, प्रयास प्रकाशन,बिलासपुर, पृ. 48
6. लोकनाट्य परंपरा और प्रयोग, डॉ संतराम देशमुख, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 102

7. – वही –, पृ. 108
8. – वही –, पृ. 94
9. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग, पृ. 72
10. लोकनाट्य परंपरा और प्रयोग, डॉ संतराम देशमुख, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 48
11. छत्तीसगढ़ी साहित्य के युगपुरूष, डॉ. विमल कुमार पाठक, डॉ. गुरूदत्त तिवारी, प्रयास प्रकाशन, बिलासपुर
12. – वही –
13. लोकनाट्य के संदर्भ में छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य का अनुशीलन, श्रीमती जनकबाला शर्मा, रविशंकर विश्व विद्यालय, रायपुर
14. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. शैलजा चंद्राकर, शोध ग्रंथ
15. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग,
16. – वही –
17. लोकमंच के पुरोधा, डॉ संतराम देशमुख, प्रयास प्रकाशन बिलासपुर
18. – वही –
19. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग,
20. लोकनाट्य परंपरा और प्रयोग, डॉ संतराम देशमुख, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 141
21. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य को समृद्ध करने में निर्देशक रामहृदय तिवारी का अवदान, शोधग्रंथ, डॉ.श्रद्धा चंद्राकर
22. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग,
23. छत्तीसगढ विकास पथ की ओर, एन.जी.आर. चंद्रा, आयर्स प्रेस नई दिल्ली
24. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन, दयाशंकर शुक्ल ज्योति प्रकाशन रायपुर
25. – वही –
26. – वही –
27. लोकनाट्य परंपरा और प्रयोग, डॉ संतराम देशमुख, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 48

v/;k;&3

ukV~; funsZ'kd jkeân; frokjh dk NÙkhlx<+ ds yksdukV~; esa vonku

3-1 yksdukV~; ds tud enjkth] egkflag pUnzkdj ,oa jkepUnz ns'keq[k dk lkfgfR;d ifjp; ,oa d`frRo

3-2 vU; jaxdfeZ;ksa dh tkudkjh

v/;k;&3
ukV; funs'kd jkeân; frokjh dk NÙkhlx< ds ykdukV; es vonku

,d lefir jx funs'kd % Mk- jkeân; frokjh

डॉ. रामहृदय तिवारी छत्तीसगढ़ के सुप्रसिद्ध रंगकर्मी हैं, बीते चार दशकों में इस अंचल के रंग परिदृश्य को स्पंदनशील और जीवंत बनाये रखने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। छत्तीसगढ़ की लोक संवदा को रंगकर्म की भाशा और भंगिमा में संयोजित करने और एक विशिष्ट रंग–मुहावरा उनकी भूमिका निसंदेह उल्लेखनीय रही है।

साजा तहसील के ग्राम उरहा में 16 सितम्बर 1943 को उनका जन्3म हुआ। सन् 1976 में दुर्ग शहर में 'क्षितिज रंग' शिविर की स्थापना की। लोकमंच पुरोधा दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख का तिवारी जी को सानिध्य एवं स्नेह मिला। प्रेम साइमन, रामकृष्ण चौबे, नारायण चन्द्राकर, संतोष जैन विनायक अग्रवाल, कृष्ण कुमार चौबे, नवल दुब्र, विजय मिश्रा अमित आदि को साथ लेकर हिंदी नाटकों द्वारा जनजागरण का बीड़ा उठाया। और तब से ही तिवारी जी की कला एवं संस्कृति यात्रा मंचीय एवं नुक्कड़ नाटकों टेजी फिल्म लोकनाट्य–नाटिकाओं, लघु फिल्मों नाचा के अविकल भाव रूप फीचर फिल्म गम्मतिहा तथा बहुआयामी लेखन कर्म में भी रत रहते हुए उनकी सांस्कृतिक यात्रा लगभग 42 वर्शो से अबाध, अनथक, निरंतर, आज तक जारी है। उन्होने त्रैमासिक पत्रिका 'सर्जना' का प्रकाशन किया। एम प्रयोगधर्मी संपादक के रूप में वे अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं।

बहुत थोड़े लोग है जो रंगमंच के प्रति समपर्ण की भावना रखते हैं। इन्हीं समर्पित लोगों में से एक नाम हैं रामहृदय तिवारी जी का। दुर्ग जिले के साजा तहसील के अन्तर्गत एक छोटे से गाँव उरदहा के एक कृषक परिवार में जन्म हुआ। भिलाई इस्पात संयं. की नौकरी करते हुए तिवारी जी ने सन् 1975 में दुर्ग में नाट्य संस्था 'क्षितिज रंग' शिविर की स्थापना की। 'अन्धेरे के उस पार' नामक उनके नाटक ने दुर्ग रंगकर्म के क्षेत्र में व्याप्त सन्नाटे को तोड़ा और नगर में दर्शक वर्ग

तैयार किया। रामकृष्ण कुमार चौबे, विजय मिश्रा, विनायक अग्रवाल, मदन जाटव, अमित नवल दुब्र तथा शैलजा क्षिरसागर आदि कलाकारों के साथ श्री तिवारी जी ने लगातार श्रृंखलाबद्ध हिंदी नाटकों का प्रदर्शन किया।

छत्तीसगढ़ शासन द्वारा 'दाऊ मंदराजी लोककला सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से नवाजे गए वरिष्ठ रंग निर्देशन रामहृदय तिवारी हिन्दी रंगमंच, फिल्म एवं लोकनाट्य जगत के साथ–साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में एक सुपरिचित और प्रतिष्ठित नाम है। पिछले 40 वर्षों से भी अधिक समय से वे अनवरत हिंदी नाटकों, छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों के अतिरिक्त फिल्मों के निर्देशन द्वारा अंचल की रंगकला व लोक सांस्कृतिक चेतना में अलख जगाने का काम बखूबी कर रहे हैं। उन्होंने नाटकों, फिल्मों एवं लेखन के माध्यम से छत्तीसगढ़ के जन–जीवन, जीवन शैली, लोगों के अंदर की कसक पीड़ा तथा शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का काम किया है।

सुखद संयोग की बात है कि इसी काल में दाऊ स्व. श्री महासिंह चंद्राकर और दाऊ स्व. श्री रामचंद्र देशमुख ने ही जमाने को अत्यंत लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य क्रमशः 'लोरिक चंदा' और 'कारी दिया। दोनों दाऊओं ने अपनी इन महती कृतियों के निर्देशन के लिए वरिष्ठ निर्देशक सी रामहृय तिवारी जी को ही चुना। श्री तिवारी जी तब 'क्षितिज रंग शिविर' के बेनर तले श्रृंखलाबद्ध हिन्दी नाटकों के निर्देशन करते हुए अपनी अलग शैली के लिए प्रतिष्ठित हो चुके थे। दोनों दाऊओं ने अपने बड़े लोकनाट्यों और सबसे बड़े ड्रीम प्रोजेक्ट के लिए तिवारी जी को ही क्यों चुना होगा? दरअसल दाऊ स्व. रामचन्द्र जी देशमुख और दाऊ स्व. महासिंह जी चन्द्राकर, दोनों ही तिवारी जी द्वारा निर्देशित हिन्दी नाटकों के लगभग नियमित दर्शक हुआ करते थे। तिवारी जी में उन्होंने तभी एक बड़ी काबिलियत की संभावना को देख लिया था, उनकी निर्देशकीय प्रतिभा को पहचान लिया था। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि तिवारी जी ही उनके लोकनाट्यों का सटीक और प्रभावी निर्देशन कर सकते हैं। उनके विश्वास पर तिवारी जी हर दृष्टि से बिल्कुल खरा उतरे। 'लोरिक चंदा' और 'कारी' को व्यापक लोकप्रियता मिली। यह दोनों प्रस्तुतियाँ अंचल के लोक सांस्कृतिक जगत के इतिहास में हमेशा के लिए

एक विलक्षण प्रतिमान के रूप में दर्ज हो गई। 'लोरिक चंदा' के केवल दोमंचीय प्रदर्शनों के बाद ही टेली प्ले के रूप में उपग्रह दूरदर्शन नई दिल्ली से तीन बार प्रसारित होने के कारण यह टेली प्ले 'लोरिक चंदा' गांव–गांव तक पहुँचा गया। लोरिकचंदा को नई दिल्ली दूरदर्शन ने अपने प्रारंभिक 25 वर्षो की सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतियों में से एक का दर्जा दिया।

दूसरी ओर सन् 1984 से 1988 के बीच 'कारी' के करीब 46 शानदार और सफल मंचन हुए। यह अपने समय का सर्वाधिक चर्चित और अत्यंत लोकप्रिय लोकनाट्य है। 'कारी' में छत्तीसगढ़ की नारी की वास्तविक ममतामयी छबि बहुत उभरकर सामने आई। तिवारी जी की अनूठी निर्देशकीय कल्पनाशीलता का ही कमाल था कि लोगों को 'कारी' की प्रस्तुति स्टेज पर चलती हुई फिल्म का अहसास कराती थी। यों तिवारी जी के खाते में कई हिन्दी नाटकों, लोकनाट्यों, टेली प्ले, टेली फिल्मों, वीडियों फिल्मों, डक्यूमेंट्री फिल्मों आदि का निर्देशन दर्ज है लेकिन इनमें 'कारी' उनकी प्रसिद्ध का ध्रुवतारा साबित हुआ। इस कालजयी लोकनाट्य ने उन्हें छत्तीसगढ़ के शीर्षस्थ निर्देशक के रूप में स्थापित –प्रतिष्ठित कर दिया। और 'लोकरंग अर्जन्दा' से जुड़ने के बाद तो वे लोकमंचीय जगत से भी सदा के लिये जुड़ गये।[1]

तिवारी जी अपने सृजनात्मक क्रियाकलापों के संबंध में अक्सर यह कहते रहे हैं कि 'केवल मनोरंजन उनका मकसद कभी नहीं रहा। कथ्य और उसका प्रभाव उनके लिए हमेशा महत्वपूर्ण रहा है।' कथ्य के प्रति अपनी सजगता के कारण ही वे निरंतर अपने नाटक और फिल्मों में निर्देशन की अलग छाप छोड़ते रहे हैं। तिवारी जी गहन अध्येता हैं। लोक संस्कृति की उन्हें गहन जानकारी है, गहरी समझ है। यही वजह है कि उन्होंने अपने निर्देशन में हमेशा नई बातें पैदा की। 'लोरिक चंदा' से लेकर सभी हाल ही में मंचस्थ नाटक 'शहन्शाह संन्यासी स्वामी विवेकानंद' तक उनके निर्देशन में अभिभूत कर देने वाली विविधता रही है। शैली की दृष्टि से भी उन्होंने कभी खुद को रिपीट नहीं किया। वे जब भी कोई नया प्रोजेक्ट हाथ में लेते हैं तो वे लगभग शोधपूर्ण प्रक्रिया से खुद को गुजारते हैं। स्क्रिप्ट को रेशा–रेशा करने की हद तक डूबते और समझते हैं। इसके बाद निर्देशन करते हुए वे अपने

प्रत्येक पात्र की मांग के अनुसार खुद को ही पात्रों में उतार देने की कोशिश करते हैं।

तिवारी जी उम्र के 77वें पड़ाव में हैं। इस उम्र में भी उनकी सक्रियता उनके आसपास के लोगों को हैरान करती है। उन्होंने लोकमंचीय कला को, लोक संस्कृति को, लोक परम्पराओं को समृद्ध करने के लिए अपने जीवन के महत्वपूर्ण 45 वर्ष समर्पित किए हैं। हिन्दी नाटकों से निर्देशकीय यात्रा शुरू करने वाली तिवारी जी ने छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों में कलात्मक संस्पर्श से एक नया रंग तो भरा ही, उसके अलावा छत्तीसगढ़ी फिल्मों में भी पूरी तरह आंचलिकता के रंग कैसे दिखे यह उन्होंने 'गम्मतिहा' फीचर फिल्म में बताया। तिवारी जी ने कुछ विशिष्ट शख्सियतों पर केन्द्रित बहुत महत्वपूर्ण डाक्यूमेंट्री फिल्में भी बनाई है, जिन से नए निर्देशक बहुत कुछ नया हुनर सीख सकते हैं।

लोकनाट्यों में तिवारी जी ने लगातार कैसे युगीन बदलाव किया? कैसे उन्होंने लोकनाट्यों का नया व्याकरण रचा? लोकमंच को हर बार किस तरह किस तरह अपनी नई–नई शैलियों वाली प्रस्तुतियों से समृद्ध किया?

कुछ स्वनाम धन्य व्यक्तियों ने मेरे जीवन में अमिट छाप छोड़ी है – उमें ख्यातिलब्ध नाट्य निर्देशक श्री रामहृदय तिवारी सर्वोपरि हैं। उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा, समझा और पाया है। उन्होंने सदैव मेरे मनोबल को बढ़ाया। मुझे कला क्षेत्र में जूझने की हिम्मत दी। ताकत दी। छत्तीसगढ़ी लोक सांस्कृतिक क्षेत्र में मैं आज जो कुछ भी हूँ– या 'लोकरंग अर्जुन्दा' आज लोकप्रियता के जिस मुकाम पर है, उसका ज्यादातर महत्वपूर्ण हिस्सा श्री तिवारी जी के मार्गदर्शन की ही देन है। तिवारी जी स्वयं पिछले कई वर्षो से साहित्य, संस्कृति, रंगमंच और लोकमंच के सृजनात्मक क्षेत्र में बतौर लेखक–निर्देशक सक्रिय हैं। हिन्दी रंगमंच हो, छत्तीसगढ़ी लोकमंच हो, फिल्में हों, लेखन कार्य हो, या कोई भी अन्य क्रिएटिव्य क्षेत्र हो – तिवारी जी के काम करने की तल्लीनता और कल्पनाशीलता मुझे बेहद प्रभावित करती रही है।[2]

यदि तिवारी जी जैसे विचारवान, काबिल और संवेदनशील निर्देशक छत्तीसगढ़ी लोकमंच से नहीं जुड़े होते तो शायद 'लोरिक चंदा', 'कारी', 'घर कहाँ

हे', 'मैं छत्तीसगढ़ी महतारी हूँ' और शहन्शाह संन्यासी स्वाामी विवेकानंद जैसी कालजयी कलाकृतियाँ लोक सांस्कृतिक जगत में नहीं आ पाती।

अध्ययनशील और साहित्यिक अभिरूचि वाले गंभीर पत्रकार श्री राजेन्द्र सोनबोइर कहते हैं कि 'निर्देशक तिवारी जी ने छत्तीसगढ़ी लोकमंचीय कला के आधुनिक इतिहास में यकीनन नूतन क्रांति पैदा की। लोकमंचीय जगत में अलग तरह की संवेदना, श्रृंगार और सौंदर्य की नई अनुभूतियों को जन्म दिया।

छत्तीसगढ़ी लोकमंच को गरिमामय और गमकदार बनाने में तिवारी जी जसे निपुण निर्देशक का बहुत बड़ा हाथ है। उन्हीं के कारण छद्मीसगढ़ी लोमंच में अपनी एक अलग ही तरह की सम्मोहकता, मधुरता और लोकप्रियता आ पायी है – जो अन्यथा स्थिति में शायद संभव नहीं थी। अलग–अलग विधाओं में निष्णात जिन कलाकारों को तिवारी जी के साथ काम करने का जब भी मौका मिला – उन्हें कुछ न कुछ नई बातें सीखने को जरूर मिली। इसका जिक्र कई कलाकार स्वयं मुझसे कर चुके हैं। मैं यदि श्री तिवारी जी से नहीं जुड़ा होता तो एक कलाकार के रूप में या लोकरंग के संचालक निर्देशक के रूप में शायद इतना लंबा सांस्कृतिक सफर सफलतापूर्वक जारी नहीं रख सकता था। इसलिये अपने मंचीय संबोधनों में, जब भी मुझे मौका मिला है – मैंने अक्सर इस बात को दोहराया है कि छत्तीसगढ़ी लोक सांस्कृतिक जगत में तिवारी जी 'वन पीस' है।[3]

कर्मफल और ईश्वर में गहरी आस्था रखने वाले श्री तिवारी जी, परस्पर संबंधों में विश्वसनीयता के प्रबल पक्षघर हैं। फुर्सत के दुर्लभ पलों में वे आखिर क्या करते हैं? उनकी राइटिंग टेबल के ठीक सामने लगी हुई खुली छत है – जहाँ वे चिड़ियों के लिये प्रायः रोज पानी और चावल के दाने बिखेर कर रखते हैं। दानों को चुगने गौरैया चिड़ियों का, कबूतरों का झुंड आता है। कभी मिठ्ठू तो कभी कभार गिलहरी भी दाने चुगने आ जाती है। तिवारी जी कुर्सी पर बैठे सामने के इस मोहर दृश्य का सुख लेते रहते हैं या कभी–कभी पीछे लगी टी.वी. पर पुराने गाने या भजन सुनने का आनंद उठाते पाए जाते हैं। आमतौर पर गंभीर से दिखने वाले तिवारी जी अपने अंतरंग मित्रों की बैठकी में ठहाके लगाने के मौके कभी नहीं छोड़ते। यह भी एक प्रिय शगल है मेरे कलागुरू श्री रामहृदय तिवारी का।

बालक जैसी निर्दोषिता एवं सरलता। समृद्ध, मेधा, पारदर्शी प्रज्ञा। दृष्टि में सत्य की खोज और पल–पल उस सत्य की जीवंत साधना। विविध विषयों एवं बहुआयामी साहित्य का अध्ययन एवं प्रबल ग्रहणशीलता। उमंगी एवं धीर श्रोता। हृदयस्पर्शी लेखन कला। विभिन्न विषयों के व्याख्यता। बेजोड़ रचनाधर्मी, विनम्र, विनयी, स्नेही और अपनत्व भरा हृदय। शुद्ध, चरित्रवान एवं गंभीर चिंतक। ऐसे अनुक गुणों के सुंदर सुयोग का नाम है – बहुमुखी सृजनशील रामहृदय तिवारी।

इसके साथ ही रंगमंच की पीठ पर थिरकते पैर परस्पर एकता के सूत्र की प्रस्तुति में रामहृदय तिवारी ने अपनी लेखनी प्रतिभा और निर्देशकीय कौशल से जनमानस की भावनाओं को साकार कर दिखाया।

श्री तिवारी की लेखनी ने, उनकी मंचीय प्रस्तुतियों ने युवाशक्ति की उर्जामय मानसिकता को सामाजिक बदलाव की एक सार्थक दिशा दी। उन्हें गांवों की ओर लौटने का भावाकुल आह्वान किया। छत्तीसगढ़ की नयी चेतना की संघर्ष कथा तथा बढ़ती विघटनकारी प्रवृत्तियों के विरूद्ध जनमानस में बिजली की तरह कौंधने वाले सपने जगाने का दुस्साहस भी किया है। श्री तिवारी की लेखनी एवं प्रस्तुतियों ने राष्ट्रप्रेम और कर्त्तव्यशील अवदानों की चेतना को भी जागृत किया है। उन्होंने अपनी कृतियों में राष्ट्र को केवल भूगोल नहीं, सनातन संस्कृति का गढ़ माना है। श्री तिवारी की छत्तीसगढ़ी लोक सांस्कृतिक लोकमंचीय गतिविधियों में आंचलिक चेतना के साथ–साथ राष्ट्रीयता के स्वर मुखरित होते रहे हैं।

यही कारण है कि श्री तिवारी की साहित्यिक एवं रंगमंचीय मान्यताओं की गहरी जड़ें भारतीय संस्कृति से जुड़ी है। इनकी मंचीय, साहित्यिक और सांस्कृतिक यात्रा में मात्र पुस्तकीय आदर्श नहीं है, अपतु जीवन मूलक यथार्थ संदेश है। मामागांव दुर्ग जिले का (अब बेमेतरा जिला) गांव पीपरभट्टा – परसबोड़, पुरखौती गांव उरइहा की सोंधी गंध से ओतप्रोत हो सुसंस्कारी माँ चंद्रिका देवी ने साढ़े सात दशक पूर्व सेवा के वट वृक्ष की छाया में जिस धनाजी बनाम रामहृदय नामक बालक को जन्म देकर मानव सेवा का सूक्ष्म संस्कार दिया वह पिता कर्त्तव्यनिष्ठ उदाचेता पंडित लखनप्रसाद तिवारी की छत्रछाया में वसुंधरा के भूषण सा प्यार सिद्ध हुआ है।

प्रबुद्ध कला पारखी, आज के सशक्त निर्देशक व रचनाकार रामहृदय तिवारी ने हिन्दी एवं छत्तीसगढ़ी दोनों रंगमंचों को विकसित आकर्षक और प्राणवान बनाया है।

'चंदैनी गोंदा' दरअसल लोक की भाषा में नागर रंगमंच को ढालने की एक ईमानदार, और जाहिर, कामयाब कोशिश थी, जिसने छत्तीसगढ़ी के लोक जीवन में एक नई ऊर्जा और आत्मविश्वास का संचार किया। रामहृदय तिवारी ने इससे एक अलग रास्ता अपनाया।

'चंदैनी गोंदा' में लोक की बुनियाद पर एक नई तरह के लोकमंच का ढांचा खड़ा करने का प्रयत्न किया गया था। 'चंदैनी गोंदा' का यह लोक मुखर, प्रदर्शनात्मक और सतह पर चमकता दिखाई पड़ता है। रामहृदय तिवारी के रंगकर्म में लोक मुखर या वाचाल नहीं, अंतर्भूत है। वह अभिव्यक्ति नहीं, अभिव्यक्ति का मुहावरा है। उनका रंगकर्म मूलतः लोकरंगकर्म नहीं है, न ही वह लोकरंगकर्म होने का कोई दावा करता है। कहने की जरूरत नहीं कि रामहृदय तिवारी ने मूलतः नागर रंगमंच के दायरे में ही सृजनकर्म किया है।

वस्तुतः रामहृदय तिवारी के निर्देशिक नाटकों से गुजरते हुए सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि उनके रचनाकर्म में जनधर्मिता प्राणवायु की तरह विद्यमान है।

डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी के संस्मरण से प्रेरित लोकनाट्य 'कारी' उनकी एक दूसरी वृहत् महत्वाकांक्षी योजना थी।

रामहृदय तिवारी द्वारा निर्देशित टेलीफिल्म 'लोरिक चंदा' दिल्ली दूरदर्शन पर तीन बार प्रसारित हो चुकी हे। 'संधिबेला', 'शिवनाथ की गोद में', 'आतंक', 'यात्रा जारी है' इत्यादि सार्थक वीडियों फिल्मों का निर्देशन उन्होंने किया। इन प्रस्तुतियों की खूब चर्चा भी हुई। कुष्ठ उन्मूलन एवं साक्षरता कार्य{मों के लिए भी उन्होंने अपना निर्देशकयी योगदान दिया। 'जेठू अउ पुनिया', और 'कसक' टेलीफिल्म उनकी विशिष्ट प्रभावशाली प्रस्तुतियाँ हैं, जिन्हें भरपूर सराहना मिली है। हिन्दी में डेढ़ दर्जन से ऊपर मंचीय और नुक्कड़ नाटकों को उन्होंने अंचल के दर्शकों के बीच संवारकर प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। आकाशवाणी रायपुर दिल्ली तथा विभिन्न

समाचार पत्रों के लिए तिवारी जी ने समय–समय पर खास–खास विषयों पर लेखक कार्य किया है। 'क्षितिज रंग–शिविर' के वे संस्थापक निर्देशक है। आज यह संस्था और संस्था के कलाकार अंचल के तमाम प्रचार माध्यमों माध्यमों पर छाये हुए हैं। ख्यातिलब्ध संतोष जैने, विनायक अग्रवाल, दीपक चंद्रकार, शैलजा क्षीरसागर जैसे अनेक मशहूर नाम 'तिवारी स्कूल' की 'कला साधना परंपरा' से प्रेरित रहे हैं।[4]

दुर्ग जिले के चार बड़े दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख, श्री महासिंग चन्द्राकर, श्री लक्ष्मण चंद्राकर और श्री दीपक चंद्राकर हैं, जिन्होंने छत्तीसगढ़ की संस्कृति की लगातार सेवा की है। तन–तन धन समर्पित करते हुए। 'कारी', 'लोरिक चंदा', 'संवरी', 'मैं छततीसगढ़ महतारी हूँ, 'तथा 'शहंशाह संन्यासी स्वामी विवेकानंद' जैसे दुर्लभ और प्रभावी नाटकों का निर्माण इन दाऊओं ने किया है। अकूत संपदा के स्वामी दाऊ लोगों का विश्वास जीतना बहुत कठिन कर्म है। परदे के पीछे रहते हुए, दाऊ जी के सानिध्य और संरक्षण में रामहृदय तिवारी ने इन सभी महत् मंचीय प्रस्तुतियों को अपने निर्देशन से न केवल प्राणवान बनाया वरन् उन्हें अमर कर दिया।

तिवारी जी द्वारा निर्देशित कृतियों की सूची काफी लंबी है। कुछ प्रमुख प्रस्तुतियों में घर कहॉ है, कसक, संवरी, अहसास, संधिवेला, एक नई सुबह, आखरी मौका, आतंक, राजा जिन्दा है, अरण्यगाथा, गम्मतिहा, शिवनाथ की गोद में, जेठू पुनिया, यात्रा जारी है, विकल्प, अंधेरे के उस पार और भविष्य आदि हैं। तिवारी जी द्वारा निर्देशित दो और अविस्मरणीय व चर्चित मंचीय कृतियां हैं जिनकी स्क्रिहप्ट भी उन्होंने ही लिखी है। एक है समूचे छत्तीसगढ़ अंचल की अस्मिता, गरिमा और वर्तमान स्थिति का बेबाक चित्रण रकती सुप्रसिद्ध नाटिका 'छत्तीसगढ़ महतारी हूॅ'। यह एक ऐसी मनोमुगधकारी मंचीय प्रस्तुति है जिसका सफल प्रदर्शन संपूर्ण छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त देश के कई नगरों, महानगरों में भी हो चुका है। रायपुर आगमन पर देश के राष्ट्रपति के अतिरिक्त कई शीर्षस्थ मंत्री एवं राजनेतागण इस प्रस्तुति को देखकर प्रशंसा कर चुके हैं। सच–मुच 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूॅ' मार्मिक चित्रण एवं संवेदनशील संवाद इस मंचीय कृति को चिरस्मरणीय बना देते हैं। दूसरी मशहूर प्रस्तुति उनकी ही लिखित व निर्देशित एक और ऐसी नवीनतम

सर्जना है जो अपनी भव्य कल्पना, अद्भूत चरित्र चित्रण के साथ 'लाईट एवं साऊन्ड' टेक्निक के सटीक इस्तेमाल से सचमुच दर्शकों को एक अलग तरह के अनुभव लोक में पहुंचा देती है। यह अद्वितीय मंचीय प्रस्तुति है 'शहन्शाह संन्यासी–स्वामी विवेकानंद' इन दोनों नायाब प्रस्तुतियों के प्रस्तुतकर्ता होने का गौरव लोकरंग अर्जुन्दा को हासिल है।

frokjh th d: }kjk funf’kr ukVd

तिवारी जी द्वारा निर्देशित 'आपरेटा' शैली में मंचस्थ लोकनाट्य 'लोरिकचंदा' की इतनी ख्याति फेली कि टेली प्ले के रूप में इसको दूरदर्शन नई दिल्ली ने 1983 में तीन बार प्रसारित किया। केवल इतना ही नहीं, दिल्ली दूरदर्शन ने तब इसे अपनी प्रारंभिक 25 वर्षों की श्रेष्ठतम् प्रस्तुतियों में शुमार किया। माना जाता है कि 'लोरिकचंदा' छत्तीसगढ़ के 'लोरिकचंदा' नामक लोकगाथा के इतिहास का नया नयनाभिराम अध्याय था। अपने नाम के अनुरूप यह लोरिक और चंदा के अतृप्त प्रेम की बहुप्रचलित लोकगाथा है। संवादों के साथ नृत्य गीत एवं नाट्य तरंगशैली में अर्थात् 'ओपरेटा' शैली में इसे मंचस्थ किया गया था। इसकी स्क्रिप्ट लिखी थी विख्यात नाट्य लेखक प्रेम साइमन ने। जुगलबंदी के रूप में यानी साइमन की स्क्रिप्ट और तिवारी जी के निर्देशन का वो जादू चला जिसे जमाना आज भी तारीफों के साथ याद करता है।

तिवारी जी द्वारा लिखित व निर्देशित लोक नाटिका 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ', भी अपनी शुरूआती प्रदर्शनों से लेकर आज तक बेहद प्रशंसित कृति है। इसमें अतीत से आज तक छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक वैभव को बेहद कलात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक संस्था लोकरंग अर्जुन्दा के बैनर तले इसके अनेकानेक मंचीय प्रदर्शन गौरव के साथ हो चुके हैं। पूर्व लोकसभा अध्यक्ष श्रीमती मीराकुमार, तात्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज तथा राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी के समक्ष, उनके रायपुर प्रवास के दौरान छत्तीसढ़ राज्य शासन ने 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' का शानदार प्रदर्शन कराया था। छत्तीसगढ़ के प्रमुख स्थानों के अतिरिक्त इस चर्चित नाटिका का प्रदर्शन दिल्ली, नागपुर, जगन्नाथपुरी, बैंगलूर जैसे महानगरों में भी सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

'घर कहॉ है' तिवारी जी द्वारा निर्देशित एक और बहुचर्चित नाटक है। यह छत्तीसगढ़ियों में अंगड़ाई लेते साहस और स्वाभिमान पर केंद्रित है। नृत्य गीतों के माध्यम से छत्तीसगढ़ की महिमा का धारा प्रवाह बखान करने के बाद नाट्य कथा की प्रेरक शुरूआत होती है। 'छत्तीसगढ़ अपने अस्तित्व की लड़ाई जीत चुका है, लेकिन एक लड़ाई अभी और जीतना बाकी है, अपने साहस, स्वाभिमान और गौरव की लड़ाई।' इस आह्वान के साथ नाटक का समापन होता है। इस नाटक के प्रदर्शनों के दौरान 'कुछ वर्ग' के लोगों में इतनी बेचैनी फेल गई थी कि इसके प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगाने की मांग उठाई जाने लगी थी। नई दिल्ली में हाट शिल्प उत्सव के मंच पर भी लोकरंग अर्जुन्दा के बेनर पर प्रदर्शित इस 'घर कहॉ हे' के मंचन ने अत्यंत सराहना बटोरी थी। छत्तीसगढ़ राज्य बनने के पहले तक अनगिनत बार मंचस्थ हुए 'घर कहॉ है' की भरपूर प्रशंसा नाट्य समीक्षकों ने भी की। स्वयं तिवारी जी कहते हैं –'घर कहॉ हे' स्थूल अर्थ में केवल 'घर' की तलाश नहीं बल्कि यह हामरी अस्मिता, सुसुप्त गौरव बोध और स्वाभिमान की तलाश यात्रा है। हमारी सोई हुई अंतर्चेतना को झकझोर कर जगाने की मंचीय चेष्टा है।' लोकरंग के ही बैनर पर तिवारी जी द्वारा निर्देशित 'धन रे मोर किसान', 'नवा बिहनिया' , 'आजादी की गाथा' को भी संदेश मूलक प्रस्तुतियों के रूप में दर्शकों द्वारा काफी पसंद किया गया।

सुप्रसिद्ध लोक सांस्कृतिक संस्था 'लोकरंग अर्जुन्दा' के साथ स्थापना काल से यानी सन् 1993 से मार्गदर्शक के रूप में जुडत्रे श्री तिवारी जी संस्था के संस्थापक, संचालक, दीपक चंद्राकर के अटूट श्रम, संघर्ष और कला के प्रति समर्पण की तारीफ करते नहीं अघाते। दीपक जी की भावनाओं के अनुकूल लोकरंग के बैनर तले तिवारी जी ने अनेक मंचीय एवं फिल्म संबंधी प्रस्तुतियों को निर्देशकीय अंजाम दिया। लेखन कार्य भी लगातार किया। इसी श्रृंखला में उन्होंने लोकरंग अर्जुन्दा के बैनर तले छत्तीसगढ़ी नाचा कलाकारों पर केन्द्रित छत्तीसगढ़ी फीचर फिल्म 'गम्मतिहा' का निर्देशन किया।

श्री तिवारी जी ने हाल के वर्षो में छत्तीसगढ़ के करिश्माई संत 'बालक भगवान' पर केन्द्रित डाक्यूमेन्ट्री फिल्म का निर्देशन किया। इसके बाद सुप्रसिद्ध

दार्शनिक संत 'श्री राजन महाराज' के व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन पर आधारित डाक्यूमेन्ट्री फिल्म भी निर्देशित की। इसी क्रम में श्री रावलमल जैन 'मणि' के आग्रह पर जैन तीर्थ स्थल के रूप में विश्व विख्यात 'पार्श्वतीर्थ नगपुरा' पर डाक्यूमेन्ट्री फिल्म का निर्देशन किया। इस डाक्यूमेन्ट्री फिल्म का प्रसारण क्रमशः आई.बी.सी. चैनल के अतिरिक्त अरिहंत और पारस टीवी चैनलों ने भी किया। पुणे एवं मुंबई के भव्य सभागारों में भी हजारों जैन धर्मावलंबियों के बीच इसका सफल प्रदर्शन हुआ। बहुप्रशंसित लघु डाक्यूमेन्ट्री फिल्म 'राजन का स्वप्न संसार' का निर्देशन भी तिवारी जी के खाते में दर्ज है।

लोकनाट्यों के निर्देशन के दौरान तिवारी जी को छत्तीसगढ़ के कई दिग्गज नाचा कलाकारों के साथ काम करने तथा उनके संपर्क में आने का अवसर मिला। इनमें मदन निषाद, लालूराम, झुमुकदास, न्याईक दास, गोविंदराम निर्मलकर, बाबूराम, कोदूराम नचकहार, कोदूराम वर्मा, संतराम, शिवकुमार दीपक, चतरूराम साहू जैसे कलाकार मानते हैं कि तिवारी जी से काफी कुछ नई–नई चीजें सीखने को मिलीं। उन्होंने हमें मंचीय संस्कार भी सिखाया। रामहृदय तिवारी स्वयं मानते हैं कि 'सफल प्रस्तुति के लिए मंचीय संस्कार और मर्यादा अनिवार्य शर्त है। अक्सर होता है कि यह है कि संस्कार और अनुशासन की प्रक्रिया का दबाव लोग झेल नहीं पाते हैं और कलामंडली या संस्था प्रायः बिखर जाती है। अमूमन ऐसा होता हुआ देखा गया है।' निःसंदेह रामहृदय तिवारी ने अपने जीवन क लंबा अरसा लोकमंच को प्रतिष्ठित और समृद्ध करने में बिताया है।

lEeku

तिवारी जी के लिए 5 नवंबर 2011 का दिन उनके 35–36 वर्ष के सांस्कृतिक सफर का एक महत्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध हुआ, जब उन्हें महान कला तपस्वी 'दाऊ मंदराजी सम्मान' के माध्यम से उनके लोक नाट्य संबंधी साधना को राज्य स्तरीय प्रतिष्ठा और मान्यता मिली। बावजूद उनको सन् 2005 में 'संस्कृति सौरभ सम्मान' और सन् 2008 में 'रूखक्खड़ नाथ' मानव सेवा सम्मान व पुरस्कार, सन् 2010 में दाऊ रामचन्द्र देशमुख बहुमत सम्मान, सन् 2011 में 'छत्तीसगढ़ विभूति सम्मान', मार्च 2005 में 'मानव रत्न सम्मान' तथा मार्च 2016 में उन्हें छत्तीसगढ़

फिल्म संग्रहालय सोयायटी द्वारा 'लाइफ टाइम एचीवमेंट अवार्ड' जैसे सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। यह सम्मान उनके लंबे अरसे के समर्पित सेवा का प्रतिफल है मैं अपने शोध सामग्री एवं ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से शोधावधि में उनसे बराबर मिलती रही जिससे मुझे यह अनुभव हुआ कि ये सम्मान की लिप्सा से बेखबर केवल कर्म पर विश्वास करते हैं अपने कार्यो के द्वारा उन्होने यह चरितार्थ भी किया है।

बिना जुनून या पागलपन के श्रेष्ठ या कहें सार्थक सर्जना किसी के लिए भी संभव नहीं है। अपनी तमाम अभिव्यक्तियों और प्रस्तुतियों के माध्यम से मैं क्या कह रहा हूॅ, किस अंदाज से कहा रहा हूॅ, उसका प्रभाव दर्शकों या पाठकों पर क्या पड़ रहा है– उस पर मेरी बराबर सजगता और सतर्कता रही है।

श्री रामहृदय तिवारी की कला यात्रा बहुआयामी है। वे लम्बे समय तक हिन्दी रंगमंच के साथ–साथ नुक्कड़ नाटकों से जुड़े रहे। आम आदमी की कतलीफों को जन सामान्य तक पहुंचाने वाले नुक्कड़ नाटकों की गौरवशाली परंपरा हालांकि अब सरकारी प्रयोजनों में ज्यादा फल फूल रही है, किन्तु 'घर कहॉ है', 'पेंशन', 'मुर्गीवाला', 'भूख के सौदागर' जैसे नाटक आज भी हमारे देश के वंचित और उपेक्षित समाज के दुःखों को उद्घाटित करने की क्षमता रखते हैं।

श्री रामहृदय तिवारी की बहुआयामी सृजन क्षमता निरंतर विस्तारित होती गई। पहले श्री प्रेम साइमन के साथ श्री दीपक चन्द्राकर के साथ उनकी जुगलबन्दी ने छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति को अत्यंत समृद्ध किया। श्री तिवारी जी अपनी संपूर्ण कला यात्रा में कहीं ठहरे नहीं। कहीं रूके नहीं। निरंतर चलते रहे। आज भी पूरी ऊर्जा से वे सक्रिय हैं। साथ ही अपने बहुप्रशंसित कलाकर्म को लेकर व कभी संतुष्ट भी नहीं हुए। सदैव कुछ नया तथा कुछ और बेहतर करने की ललक उनमें हमेशा बनी रही। उम्र की सत्तरहवीं सीढ़ी पर पहॅुचे श्री रामहृदय तिवारी के लिए 'कला तपस्वी' जैसी शब्द संज्ञा अतिश्योक्ति नहीं होगी।

श्री तिवारी जी एक बेहतरीन नाट्य शिल्पी के साथ–साथ एक विचारशील कलमकार के रूप में भी जाने जाते हैं। समसामयिक विषयों के अतिरिक्त लोक कला विधा संबंधी उनका लेखन निःसंदेह अत्यधिक प्रेरक एवं प्रभावशाली होता है।

यदि हम तिवारी जी द्वारा लिखित व निर्देशित 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' को ही देखें – तो यह पूर्ण रूपेण छत्तीसगढ़ की समग्र छवियों की एक रोचक, मोहक, ज्ञानवर्धक, प्रेरणादायक एवं विशिष्ट लोकतात्विक–शास्त्रीय प्रस्तुति है। यह अपूर्व प्रस्तुति हर वर्ग के दर्शकों को विभोर कर देती है। उन्हाने अपनी इस महत् प्रस्तुति को जिस कलात्मक, तथ्यात्मक एवं खास लयात्मक अंदाज में प्रस्तुत किया है, उससे न केवल छत्तीसगढ़ के आम जन में बल्कि अन्य राज्यों के साथ केन्द्र के कला दृष्टि संपन्न अतिविशिष्ट अतिथियों की दृष्टि में भी हमारे छत्तीसगढ़ का सम्मान बढ़ा है। तिवारी जी के स्वयं का अध्ययन, अनुभव एवं हमत्वर्पूा कवियों और चिंतकों के विचारों से सुसज्जित यह नायाब नाटिका दर्शक को आरंभ से अंत तक अपने सम्मोहन पाश में बॉधे रखती है।

तमाम प्रदर्शनकारी प्रस्तुतियों के द्वारा उन्होंने आंचलिक भाषा, परंपराओं, रीतिरिवाजों के साथ–साथ मानवीय मूल्यों, जीवन की गरिमा तथा स्वाभिमानी लोकचेतना के पक्ष में सदा प्रेरक स्वर दिये और निरंतर देते जा रहे हैं। हम माध्यम की प्रस्तुति के कथ्य पर तिवारी जी सजगता के साथ ध्यान देते हैं। कथ्य के पड़ने वाले प्रभावों पर वे बराबर नजर रखते हैं। मानवीय पीड़ा, शोषण, अन्याय और अनीतियों के खिलाफ अपनी हर प्रस्तुति में उन्होंने आवाजें प्रखरता से उठाई हैं। इसका कारण है कथ्य को प्रस्तुत करने का रोचक ढंग और अंदाज उनका एकदम जुदा है। लोग उनकी विलक्षण लेखनी के साथ लेखन शैली के कायल हैं। लेखनी में ऐसा सम्मोहन पैदा करने के लिए गहन और व्यापक अध्ययन के साथ–साथ खुद की अच्छी सोच और बारीक दृष्टि संपन्नता भी चाहिए। तिवारी जी ऐसे इंसान हैं जिन्हें यथा संभवत्र यथा सामर्थ्य दूसरों को खुशियॉ बांटते रहने की आदत सी हो गई है।[5] हिन्दी नाटकों से लेकर छत्तीसगढ़ लोक नाट्य के निर्देशन की उनकी बानगी का अब तक कोई मुकाबला नहीं है।

सोनहा बिहान के बैनर तले 'लोरिक चंदा' की आंचलिक प्रेम गाथा हो या फिर चंदैनी गोंदा की छांह में सामाजिक विसंगतियों की या 'कारी' के स्त्री चरित्र की हो, हर पात्र की हर हरकत में निर्देशन श्री रामहृदय तिवारी की भंगिमाएं जानकारों को नजर आ ही जाती हैं।

संधिबेला, आतंक, शिवनाथ की गोद में, यात्रा जारी है, जेठू पुनिया, सुन मनटोरा, नदिया के तीर और विकल्प जैसी कई विडियोफिल्मों के निर्देशन के वक्त श्री रामहृदय तिवारी को देखने वाले ही जानते हैं कि हर दृश्य का हर शाट् उनके लिए संतान को कौर खिलाने और कंधों पर बस्ते टांगकर स्कूल भेजने जैसी वात्सल्यमयी मशक्कत वाला ही काम था। 'कारी' नाटक में, प्यार था, मिलन था, विछोह था, हंसना था, रोना था, कर्णप्रिय संगीत था।[6]

तिवारी जी द्वारा लिखित–निर्देशित 'शहंशाह संन्यासी स्वामी विवेकानंद' के नाट्य रूपांकन के समय अध्यात्म की रूझान स्वामी जी के विचारों की गूढ़ता को समझने और नाटक में चमक पैदा करने में सहायक हुई थी। स्वामी विवेकानंद के धड़कते हृदय में मानव सेवा और ईश्वर पूजा, पौरूष और श्रद्धा में, नैतिक नियमों और आदर्शों में कोई अंतर नहीं था।'[7] 'कबीर की तरह उनमें भी सही को सही और गलत को गलत कहने का अप्रतिम साहस था।

छत्तीसगढ़ी लोकसांस्कृतिक जगत की दो कालजयी लोकमंचीय सर्जनाएं हैं–'चंदैनी गोंदा' तथा 'सोनहाबिहान' जिनके सर्जक–शिल्पी थे क्रमशः दाऊ रामचंद्र देशमुख और दाऊ महासिंह चन्द्राकर। संयोग और सौभाग्य से श्री तिवारी जी इन दोनों कला महारथियों से लंबे समय तक जुड़े रहे। इन्हीं महानुभावों के संरक्षण और सहयोग से 'कारी' और 'लोरिक चंदा' नामक अमर छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों का उदय हुआ। इन दोनों छत्तीसगढ़ी नाटकों का निर्देशन श्री रामहृदय तिवारी ने बखूबी किया। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध की सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोकमंचीय प्रस्तुतियों का जब भी जिक्र होगा– इनमें 'कारी' और 'लोरिक चंदा' के साथ–साथ निर्देशक श्री रामहृदय तिवारी का भी जिक्र अवश्य होगा। छत्तीसगढ़ की अस्मिता की रक्षा करते हुए छत्तीसगढ़ की नारी की गरिमा को, उसके उज्जवल रूप को 'कारी' में तिवारी जी ने जिस गांभीर्य और कौशल के साथ मंचस्थ किया है, वह केवल देखकर ही अंदाजा लगाया जा सकता है। इसके साथ–साथ इस प्रस्तुति में वे सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं की रक्षा करने में कहीं भी चूके नहीं हैं।

अपने कृतित्व के माध्यम से छत्तीसगढ़ महातरी के सुख और दुख दर्द, पीड़ा को न केवल वाणी दी, वरन आगे बढ़कर उाके सुसुप्त स्वाभिमान को जगाया। उसे

मुखरित किया। 'कारी' डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी की अमरकृति 'छत्तीसगढ़ की आत्मा' से प्रेरित, प्रभावित नाट्य रूपांतरण था जिसे दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख के संयोजन में तिवारी जी ने नाटकीय ताना–बाना में गूँथकर अपने निर्देश्न से आकार दिया था। वस्तुतः यह छत्तीसगढ़ की नारियों के प्रति नकारात्मक और भ्रांत घारणाओं के विरूद्ध एक सशक्त मंचीय प्रतिरोध था। छत्तीसगढ़ की नारियॉ मेहनत कश, अपने परिवार के प्रति समर्पित और परिवार के सशक्तिकरण में, परवरिश में अपना जीवन न्यौछावर कर देती हैं। बदले में कुछ नहीं मांगती। अपने परिवार के लिए छत्तीसगढ़ की नारियों का यह आत्मत्याग, यह आत्मसमर्पण और जीवनाकांक्षा वंदनीय है। इस तथ्य को श्री रामहृदय तिवारी के द्वारा निर्देशित प्रभावी छत्तीसगढ़ी नाटक 'कारी' को प्रत्यक्ष देखकर ही समझा जा सकता है और उसे परिचित भी हुआ जा सकता है।

'लोरिक चंदा' हिन्दी प्रान्तों के अलावा अन्य भाषायी प्रदेशों के लोक जीवन में प्रचलित प्रसिद्ध लोकगाथा है। छत्तीसगढ़ अंचल की मांग के अनुकूल थोड़े बहुत परिवर्तनों के बावजूद महत्पूर्ण लोकगाथा है। उत्तर भारत में प्रचलित 'लोरिक चन्दा' लोरिक नामक यादव की शौर्य गाथा है और इसे इसी रूप में लिया भी जाता है। चन्दा और मंजरी दोनों गाथा में महत्वपूर्ण सीान नहीं बना पाती। एक जाति विशेष की गाथा बनकर यह वहीं रह जाती है। छत्तीसगढ़ की लोरिक–चन्दा किसी जाति विशेष की गाथा नहीं है। यह गाथा है 'प्रेम' की। प्रेम में जाति, धर्म और इसी तरह के सवाल नहीं पूछे जाते। समर्पण और पूरा समर्पण, मन, कर्म और वचन से छलछलाते समर्पण के पूज्य भाव का महत्व दिया जापता है और इस पूज्य भाव का सही निरूपण श्री रामहृदय तिवारी द्वारा निर्देशित 'लोरिक चन्दा' नाटक में पूरी संवेदशीलता के साथ दिखाई देता है।

'घर कहां है'–हमारी आन अपौर अस्मिता, हमारे स्वाभिमान, हमारे साहस और गौरव बोध की तलाश गाथा है।

लोकमंच अर्जुन्दा के संस्थापक दीपक जी घोषित रूप से श्री तिवारी को अपना कलागुरू मानते हैं और अक्सर इस बात को सार्वजनिक तौर पर दोहराते रहे हैं कि 'आज लोकरंग अर्जुन्दा' की जो व्यापक लोकप्रियता और लोकमंचीय जगत में

जो प्रतिष्ठा है– उसके पीछे मेरे कलागुरू श्री रामहृदय तिवारी का प्रेरक मार्गदर्शन है, एकमात्र उनका हाथ है इधर श्री रामहृदय तिवारी भी मुझसे चर्चा के दौरान अपने परम प्रिय मित्र की बात अवश्य करते हैं। तिवारी जी कहते हैं–'मुझे दाऊ महासिंह चन्द्राकर, श्री लक्ष्मण चन्द्राकर एवं दाऊ श्री रामचन्द्र देशश्मुख के बाद श्री दीपक चन्द्राकर का जिस तरह साथ, सहयोग और सम्मान मेरे मंचीय सफर में मिला है–उसे बयॉ करना मेरे लिए मुश्किल है।[8]

jkeân; frokjh th ls vU; 'kk/kdrkvk ds lk{kkRdkj

लोक नाट्य नाचा के मर्मज्ञ निर्देशकीय कला से युक्त श्री तिवारी जी से मैने अपने मुख्य विषय दुर्ग जिला के लोकनाट्य नाचा के संबंध में समय–समय पर विस्तृत चच्रा की है। उन्होने मेरे समस्त प्रश्नों का उत्तर मौखिक एवं लिखित रूप से दिया है जो अध्याय–4 में है इसके अतिरिक्त उन्होने अन्य लोगों के साथ भी लोकनाट्य एवं नाचा से संदर्भित वार्तालाप एवं साक्षात्कार दिया है जिसे मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ इसके माध्यम से लोक नाट्य नाचा की सूक्ष्म विस्तृत पूर्ण एवं गम्भीर जानकारी हमें प्राप्त होगी।

श्री तिवारी जी कहते हैं– रंगमंचीय कला की भूमिका स्कूल टीचर की तरह शिक्षा देने की नहीं, जागरूकता और संवेदना पैदा करने की होती है। वैचारिक दिशा, संस्कार बोध और मानवीयता जागृत करने की होती है। यहां यह याद रखना जरूरी है कि किसी भी गम्भीर कलाविधा का प्रभाव मनुष्य की चेतना में सूक्ष्म तरीके से और धीमी गति से पड़ता है। विभिन्न विद्वान प्रश्नकर्ताओ के उत्तर देते हुए श्री ततिवारी जी ने नाचा की अंतरात्मका, मर्म एवं इसके समस्त पहलुओं को उजागर किया है जिससे हम पूर्णतः लोकनाट्य नाचा को बारीकी से समझ सकते हैं। उनके द्वारा दिये हुए कुछ उत्तर इस प्रकार से है –

- Mk- J)k pinkdj

Mk- J)k pinkdj – लोक जीवन और उस पर आधारित संस्कृति के क्रमिक विघटन के साथ छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य भी शनैः शनैः क्षरण दिखाई देने लगा है। इस स्थिति में आप क्या कहना चाहेंगे?

jkeân; frokjh : लोक जीवन और उस पर आधारित संस्कृति के क्रमिक विघटन की जो बात आप कह रही हैं उसे मैं प्रवाहित समय की मांग के तहत क्रमिक और अपरिहार्य परिवर्तन के रूप में देखता हूँ। उसी के साथ लोकनाट्य कर्म का भी शनैः–शनैः जो क्षरण दिखाई देता है – उसे भी मैं समयानुकूल समायोजन की संज्ञा देता हूँ। 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' नियम के आविष्कारकर्त्ता भलेचार्ल्स डार्विन हों – पर यह प्राकृतिक नियत आदिकाल से मौजूद है और हर वस्तु, जीव, जन्तु, घटना या स्थिति पर लागू होता चला आया है। परिवर्तन इस सृष्टि का अटल और अपरिहार्य नियम है। हमारे सनातन मूल्य और आदर्श जो आज तक पूरी ऊर्जा और प्राणवत्ता से कायम हैं – वे अपनी अर्थवत्ता और योग्यतम की संभाव्य क्षमता या प्राणिक क्षमता के कारण ही बचे हैं। यह प्राकृतिक नियम जीवन, लोकजीवन, संस्कृति लोकनाट्यों पर ही नहीं–सभी चीजों पर अनिवार्यतः लागू होते हैं। हर युगीन परंपरा प्रवाहित नदी की तरह होती है। इनमें शनैः शनैः क्रमिक परिवर्तन होंगे ही। उस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता। इसे नितान्त स्वाभाविक, प्राकृतिक और अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में लेना चाहिए। मैं यही कहना चाहूँगा।

Mk- J)k pnkdj : क्या आने वाले दिनों में लोक–नाट्य की परंपरा विघटित होती जान पड़ती है? क्या इलेक्ट्रॉनिक जन माध्यम उसे पुनर्जीवन दे सकेगा? अर्थात् क्या लोकनाट्य टेलीविजन पर प्रदर्शित होकर अपने अस्तित्व को बचा सकेगा?

jkeân; frokjh : कतई नहीं। यहाँ फिर मैं अपनी बात को दोहरना चाहूँगा कि लोकनाट्य परंपरा विघटित नहीं हो रही है बल्कि समयानुकूल उसके स्वरूप में क्रमशः स्वभाविक परिवर्तन हो रहा है जिसे रोका नहीं जा सकता। सब जानते हैं – रूके हुए पानी में सड़ांध पैदा होती है। शुद्धता प्रवाहित जल की नैसर्गिक पहचान और विशेषता है। इसलिए लोक विधाओं को, लोकतात्विक परंपराओं को भी युगानुकूल प्रवाहित याने परिवर्तित होते रहना चाहिए और वे होती रहती भी हे। इलेक्ट्रॉनिक जन माध्यम इन तत्वों और परंपराओं को बेशक सहयोग दे रहा है, समर्थन और शक्ति भी। आज के दौर में दोनों माध्यम एक–दूसरे के संपूरक है। जो युग की मांगों को पूर कर रहे हैं – अपनी अलग–अलग पहिचान और विशिष्टता

को बरकरार रखते हुए। मगर एक बात और कहूँगा – लोकतांत्रिक परंपराएँ या लोक कलाएँ अपने अस्तित्व रक्षा के लिए इलेक्ट्रॉनिक मिडिया की मुहताज नहीं है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की चकाचौंध कारी प्रभावों के बावजूद आज भी लोकमंचों का अबाध और अकूत आकर्षण लोगों के बीच बना हुआ है और परिवर्तनों के बावजूद बना ही होगा। जिंदा मनुष्य के प्रत्यक्ष कला करतब के माध्यम होते हैं मंच–जिसका न–ही कोई विकल्प है–न ही कोई मुकाबला। परिवर्तन होते रहेंगे मगर लोकमंचों को, लोकतात्विक कलाओं और कला परंपराओं का अस्तित्व – परिवर्तित स्वरूप में सही, मगर अमर रहेंगे। कायम रहेंगे। यह सुनिश्चित सत्य है।

MkW- J)k pnkdj : लोकनाट्य 'नाचा' में बिना निर्देशक के भी चुम्बकीय आकर्षण बना रहा। इतना अधिक दर्शक बांधने की क्षमता है। फिर भी इन्हीं छत्तीसगढ़िया कलाकारों द्वारा समानान्तर नाटक में अभिनय व प्रदर्शन करते समय निर्देशकों की आवश्यकता क्यों पड़ती है? क्या 'नाचा' जैसा ही निर्देशक विहिन समानान्तर नाटक भी बन सकता है?

jkeâan; frokjh : श्रद्धा जी, आपने जो ये कहा कि बिना निर्देशक के भी लोकनाट्य 'नाचा' में चुम्बकीय आकर्षण बना रहा – यह सच नहीं है। आपकी जानकारी के लिए बता दूँ कि 'नाचा' में जो 'हारमोनियम मास्टर' होते हैं – उनकी बड़ी अहमियत होती है। वे 'मनीजर' कहलाते हैं। ये 'मनीजर' ही 'नाचा' के मैनेजर' होते हैं और ये ही 'निर्देशक' की भी भूमिका का निर्वाह करते हैं। दृश्य में किसको कैसा और क्या अभिनय करना है, क्या अभिनय करना है, क्या संवाद बोलना है, कैसे बोलना है – ये स बवह 'हारमोनियम मास्टर' ही तय करते बताते चलता है। हालांकि वह 'निर्देशक' के नाम से नहीं पुकारा जाता। बल्कि उसे 'मुखिया' या 'मनीजर' का ही संबोधन दिया जाता है। वह ही नाचा टीम का मुख्य कर्त्ताधर्ता होता है। कभी–कभी नाचा में साझेदारी से भी 'निर्देशन' का चलाते हैं – जैसे कुछ अनुभवी कलाकार भी एक दूसरों को बताते चलाते हैं कि किसको क्या करना है, क्या बोलना है। मगर यह समझना या यह मानना कि नाचा 'निर्देशक विहीन' होकर भी आकर्षण पैदा कर लेता है – बड़ी गलत फहमी है। 'निर्देशक विहीन' 'नाचा' हो, या 'नाटक' दोनों नाविक विहीन नाव की तरह हैं, जो निर्दिष्ट मुकाम तक कभी नहीं

पहुँच सकेंगे। यह याद रखा जाना चाहिए कि चाहे वह ‘नाचा’ हो या हो समानान्तर ‘नाटक’ – दोनों में ‘निर्देशक’ की अनिवार्यता होती है – ताकि ‘नाचा’ या ‘नाटक’ को अपेक्षित प्रवाह, प्रभाव, आकर्षण और सुनिर्दिष्ट दिशा मिल सके। मेरे इस कथन का सटीक और सर्वोत्त्म उदाहरण लोरिक चंदा, कारी मैं छत्तीसगढ़ महतरी हूँ – जैसी अन्य मेरी कई लोकप्रिय प्रस्तुतियाँ हैं। निर्देशक विहीन किसी भी नाचा, नाटक या कोई भी मंचीय प्रस्तुति की कल्पना करना संभव नहीं हैं।

- **jktUn th l ckrphr**

jktUn % नाटक ऐसी विधा है, जिसमें कलाकार, लेखक, गीतकार, संगीतकार, शिल्पकार, तकनीशियन्स – यानि अभिव्यक्ति की विभिन्न विधाएँ एकजुट होकर कार्य करती है। इन सबके साथ सामंजस्य की सीमा तय करने में निर्देशक की कसौटी क्या होती है?

jkeân; : निर्देशक के लिए यह जरूरी है कि वह संवेदनशील और दृष्टि संपन्न हो, उसे मानवीय पहलुओं की गहरी समझ हो, नाटक के व्याकरण और तकनीकी पहलुओं की जानकारी हो और उसमें टीम को कमान्ड कर सकने की क्षमता हो। सारे सहयोगी सूत्र जब वांछित बिन्दु में जमते हैं तभी नाट्यानुभव की सृष्टि होती है और अपेक्षित प्रभाव पैदा होता है। मुख्यतः कथ्य का प्रभावपूर्ण संप्रेषण, निर्देशक के कला कौशल की कसौटी है।

- **vkfIQ th l ckrphr**

vkfIQ : आखिर नाचा है क्या?

jkeân; : ‘नाचा’ छत्तीसगढत्र की लोक संस्कृति की आबोहवा का एक महकता झोंका है। जनजीवन के सरल सपनों का प्रतिबिम्ब है। सच पूछिए तो यह ग्रामीण कलाकारों द्वारा पथरीली जमीन पर चंदन बोने की हिमाकत है। इसमें अलग रंग, भाव मस्ती और प्रवाह है। नाचा में एक ओर जहाँ परंपरा निर्वाह की चाह है, वहीं अनचाही परंपरा को तोड़ने की अदम्य शक्ति भी है।

vkfl Q : नाचा में कलाकार कौन होते हैं और इसकी पृष्ठभूमि कैसे बनती है?

jkeân; % नाचा में कलाकार आमतौर पर खेतिहार मजदूर ही होते हैं, जो अपने जीवन और समाज की विसंगतियों को उजागर करने के लिए स्वयं अपनी सूझबूझ के अनुरूप छोटे–छोटे प्रहसन रचते हैं। उनकी कोई लिखित स्क्रिप्ट नहीं होती। सब कुछ परस्पर सामंजस्य और साझेदारी में मौखिक रूप से चलता है। कई चुटीलेव सटीक संवाद तात्कालिक रूप से मंच पर भी बनते चले जाते हैं। ठेठ मुहावरों और पैनी लोकोक्तियों के सहारे हास्य व्यंग्य से ओतप्रोत संवाद को सुनकर दर्शक हँस–हँसकर लोटपोट हो जाता है।

vkfl Q : कलाकारों का दर्शकों से तारतम्य कैसे जुड़ता है?

jkeân; : 'नाचा' अपने आप में एक 'टोटल थियेटर' अर्थात् संपर्ण नाट्यशैली है। अभिनेता और दर्शक वर्ग के बीच अंतर्संबंध इसकी मौलिक विशेषता है। कलाकार अपने नाचा गम्मतों के माध्यम से दैनिक जीवन की विद्रूपताओं और समस्याओं पर कटाक्ष और व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियाँ भोलेपन के साथ करते चलते हैं।

vkfl Q : क्या नाचा के कलाकार प्रशिक्षित होते हैं?

jkeân; : वे प्रशिक्षित नहीं होते हैं और नाचा कायह एक उल्लेखनीय पहलू है कि बिना किसी प्रशिक्षण के लगभर सारे नाचा कलाकार गायन, वादन, नृत्य, अभिनय, रूप सज्जा से लेकर नाचा से संबंधित हर काम कर लेने में सिद्धहस्त होते हैं।

vkfl Q : नाचा कलाकार प्रस्तुति की तैयारी में किस तरह जुटते हैं?

jkeân; : वे सारी तैयारी स्वयं करते हैं। कलाकारों की वेशभूषा सामान्य ग्रामीण जैसी ही होती है। अंगराग के लिए सफेद, पीली छुई, खड़ियाँ, हल्दी कुमकुम, काजल, मिट्टी, कालिख, नीला थोथा, मुरदार शंख जैसी सामान्य सुलभ वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं और अपना मेकअप स्वयं करते हैं। मंच में तखत पर संगतकार बैठते हैं और तीन ओर दर्शक वर्ग, जो देर रात से शुरू होने वाले नाचा का सुबह की लाली तक पूरी उत्कंठा और सहज मुग्धता से देखकर उसका छककर आनंद लेता है। नाचा की लयबद्धता में नृत्य गीत कब खत्म होकर गम्मत में परिवर्तित हो जाता है, गम्मत फिर कब नृत्य गीत में ढल जाता है तथा कभी कभी नृत्य गीत

और अभिनय चक्रवात की तरह कैसे एकरस और परस्पर घुलमिलकर हंगामा मचा देते हैं, यह नाचा देखकर ही जाना जा सकता है।

vkfLQ : नाचा में महिला पात्रों की क्या भूमिका है?

jkeâu; : आश्चर्य जनक पहलू यह है कि नाचा में महिला पात्रों का निर्वाह पुरूष कलाकार ही करते हैं। पुरूष ही 'परी' बनाते हैं। 'नचकहरीन' और सिर पर लोटा लिए 'नजरिया' की भूमिका पुरूष ही निभाते हैं। इनकी अदाएँ, हाव'–भाव, चाल–ढाल मोहकता लिए हुए होती है कि शिनाख्त करना मुश्किल होता है। नाचा में 'परी' व 'जोक्कड़' दो ऐसे अदभूत चरित्र हैं, जिनकी अवधारणा ही चिंतन की मांग करती है। ये दोनों अपने केशविन्यास और रूपसज्जा में अपनी पूरी कल्पनाशक्ति उड़ेल देते हैं।

vkfLQ : नाचा में 'जोक्कड़' का क्या महत्व है?

jkeâu; : नाचा गम्मत में जोक्कड़ (विदूषक) की भूमिका व नजरिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। नाचा का जोक्कड़, संस्कृत नाटक के विदूषक, सर्कस के जोकर या अंग्रेजी नाटक के 'क्लाउन' की तरह नहीं है। वह नाचा का सर्वाधिक जीवंत व मुखर चरित्र होता है। वह हँसता है, मनोरंजन करता है, हास्य विनोद की सृष्टि बड़ी सहजता से करता है। वास्तव में, जोक्कड़ ही ऐसा चुंबकीय चरित्र है, जो रातभर दर्शकों को बांधे रखने में सक्षम व समर्थ होता है।

vkfLQ : क्या नाचा का पारंपरिक परिदृश्य आज कुछ बदलता है?

jkeâu; : नाचा का लोमंचीय रूप आज जिस मुकाम पर है, इसका स्वरूप प्रारंभ से ऐसा नहीं था जैसा आज है। युग और परिवेश की बदलती तस्वीर की छाया स्वभावतः नाचा पर भी पड़ती रही है। इलेक्ट्रिकल, बंदोबस्त, साज की जगह आधुनिक वाद्ययंत्र के साथ फिल्मी चाल–चलन और द्विअर्थी संवादों का चलन भी खूब बढ़ गया है। इस तरह आज के दौर में नाचा में फूहड़ता, अश्लीलता व फिल्मी प्रभाव का बोलबाला है, जबकि पहले नाचा कलाकार सामाजिक बोध से बेखबर नहीं थे। जागरूकता पैदा करने में भी पांरपरिक नाचा अग्रणी था। तब बाल विवाह को

रोकने, छूआ–छूत दूर करने, निरक्षरता, कुष्ठ उन्मूलन जैसे जीवंत विषयों को लेकर नाचा कलाकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय देते थे।

जो भी हो, आज छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य 'नाचा' अपने विविध रूपों में, पूरी ऊर्जा, शक्ति और प्रभाव लिए हर दौर के साथ कदम मिलाता चल रहा है। छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति की यह आत्मीय परंपरा जब तक प्राणवान है, तब तक छत्तीसगढ़ के लोक सांस्कृतिक जीवन में स्पंदन है, यह मानने में कोई दो मत नहीं है।

• egkohj vxoky th l ckrphr

egkohj : आपके द्वारा प्रस्तुत लोक नाट्य देखकर जनता शिक्षित हो, उसकी चेतना विकसित हो इस दिशा में आप क्या सोचते है?

jkeân; : केवल 'मनोरंजन के लिए मनोरंजन' उद्देश्य वाले किसी मीडिया पर मेरी न रूचि रही है, न भागीदारी। लोकनाट्य के माध्यम से दर्शक प्रेरणा पा सकें, उनकी चेतना विकसित हो सके, कुछ विचार की ऊर्जा पा सकें – इन्हीं भावनाओं के साथ, लोक मंच में या हिन्दी रंगमंच से मेरी संलग्रता रही है। और सवाल सिर्फ शिक्षित करने तक ही सीमित नहीं है। बल्कि असली सवाल यह है कि उसकी दिशा क्या होनी चाहिए? आज किसी भी मीडिया के प्रभाव का संकट नहीं, असली संकट है – प्रभाव के सार्थक प्रयोग और उसकी दिशा का। आज के लोकनाट्यों में इस जिम्मेदारी के प्रति सजगता थोड़ी कम होती जा रही है। यह एक चिंताजनक स्थिति है।

jkeân; : ठाकुरराम, भुलवा, बाबूदास, मदन, लालू, फिदाबाई, झुमुकदास, नियायिक दास, शैलजा, दीपक, मिथिलेश, चतरू आदि प्रमुख और प्रतिभाशाली कलाकार हैं, जिन्होंने लोकमंच का इतिहास बनाया और बना रहे हैं। स्व. ठाकुरराम की अद्भूत कला प्रतिभा की चर्चा आज भी खूब की जाती है। उनके देहावसान के बाद 'दिनमान' जैसी राष्ट्रीय पत्रिका में पूरे एक पेज का कव्हरेज मैंने पढ़ा है, जिसमें उनकी कलाप्रतिभा की काफी सराहना की गई थी। वैसे ही 'चरणदास चोर' की नायिका फिदाबाई की अभिनय क्षमता का लोहा मानते हुए 'दिनमान' ने टिप्पणी की

थी कि 'दिल्ली के रंगकर्मियों को, अभिनय किसे कहते हैं – यह फिदाबाई की भाव भंगिमाओं से सीखना चाहिए।' शैलजा क्षीरसागर की प्रबल प्रतिभा की और सही अवसर का इंतजार है।

egkohj : लोकनाट्य की प्रस्तुति में संगीत, नृत्य और आधुनिक उपकरणों (दृश्य श्रव्य) सामग्री का प्रयोग आप किस सीमा तक जरूरी मानते हैं। इनके प्रयोग की क्या सीमा होनी चाहिए।

jkeân; : लोकनाट्य की प्रस्तुति में संगीत–नृत्य का प्रयोग जरूरी ही नहीं, अभिन्न अंग के रूप में अपरिहार्य है। नृत्य, गीत, संगीत और अभिनय का 'समानुपातिक' प्रयोग ही लोकनाट्य की पहिचान है और यही उसकी सीमा होनी चाहिए। लोक नाट्य के दर्शकों की बेशुमार बढ़ती संख्या के दबाव के कारण आधुनिक तकनीकी साधनों के अपनाए जाने की विवशता बढ़ी। आज के युग में यह जरूरी ही नहीं लगभग अनिवार्य हो गया है। 190

egkohj : लोकनाट्य के उद्भव और विकास को आप किस रूप में देखते हैं? उसके बदलते हुए स्वरूप पर आपके क्या विचार हैं? छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य के विकास में किन निर्देशकों के योगदान को आप महत्वपूर्ण मानते हैं?

jkeân; : छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य 'नाचा' गतिशील झरने की तरह, लोक जीवन की अनुभूतियों को, आवेगों और प्रवृत्तियों को, उनके क्रियात्मक व्यापारों को सहजता, सरलता और संगीतमयता के साथ अभिव्यक्त करने वाला प्रतिनिधि लोक मंच है। जिसके उद्भव का तालमेल ग्रामीण गांड़ा बाजा – बजनिया समूह के साथ बिठाया जा सकता है। समय के प्रवाह के साथ संपर्कों से स्वयं स्फूर्त परिवर्तन इसमें सहजता पूर्वक होते गए। पहले मशाल फिर पेट्रोमेक्स के बाद अब हेलोजितन लाइट की उपलब्धता के साथ युगानुरूप बढ़ते दबावों के परिप्रेक्ष्य में नाचा के क्रमिक बदलते स्वरूप को देखा और समझा जा सकता है। इन परिवर्तनों के बावजूद खास बात यह है कि नाचा के प्राणों में पारंपरिकता की लयताल अभी भी बरकरार है। चंदैनी गोंदा और उसके बाद बेनर वाली जितनी भी मंचीय प्रस्तुतियाँ हुई वे सब, जैसा कि मैंने कहा, समानान्तर लोकनाट्य हैं जिनकी अपनी अलग ही किस्म की शर्ते और तेवर हैं, बावजूद लोकतत्वों की मौजूदगी के। इस तरह के लोकनाट्यों के

प्रचलन और विकास में श्री रामचंद्र देशमुख, श्री हबीब तनवीर, श्री महासिंग चंद्राकर, श्री लक्ष्मण चंद्राकर, श्री दीपक चंद्राकर के साथ–साथ श्री प्रेम साइमन के योगदान को स्वीकार किया जाना चाहिए।

egkohj : जीवन के यथार्थ और जनता के स्वप्न को क्या लोकनाट्य में साथ रखा जा सकता है? यदि हाँ तो आपने अपनी किस प्रस्तुति में ऐसा किया है?

jkeân; : नाचा, लोकमानस के यथार्थ और स्वप्न का समिश्रित प्रतिबिम्ब है। अंचल की संपूर्ण सहजता, सरलता, मोहकता, और माधुर्य जहाँ एक मंच पर सिमट गए हो, उन सबसे साथ दीनता, अशिक्षा, उपेक्षा और अपमान की आग में तापकर जिस कला संसार की रचना सामने आती है – उसका नाम है – नाचा। स्वप्न और यथार्थ के मंचीय द्वन्द्व में, जहाँ यथार्थ घुटने टेक दे, उस कुरूक्षेत्र का नाम है नाचा। लोरिक चंदा, कारी, घर कहाँ है, कमोबेश तीनों प्रस्तुतियों में इस द्वन्द्व को रूपायित होते देखा जा सकता है। हालांकि ये प्रस्तुतियाँ पारंपरिक अर्थ में 'नाचा' नहीं है।

egkohj : ऐसा महसूस किया जा रहा है कि, लोककला की प्रस्तुति के लिए जो मंडली तैयार हुई उनका उद्देश्य लोक कला का प्रचार–प्रसार कम और व्यावसायिक अधिक रहा है। लोककला के इस व्यवसायीकरण को आप कहाँ तक उचित या अनुचित मानते हैं और क्यों?

jkeân; : मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि आज लोककला मंडलियों का उद्देश्य व्यवसायिक अधिक होता जा रहा है। मैंने आज तक अंचल में मंचीय कला को लेकर व्यवसाय करते और समृद्ध होते किसी को नहीं देखा है। मैंने आज तक एक भी कलाकार ऐसा नहीं पाया, जिसकी आजीविका का आधार एकमात्र लोकमंचीय कला हो।

- **nhun;ky lkgw th ls ckrphr**

nhun;ky lkgw :– लोकनाट्य की दृष्टि से छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति और लोक जीवन के साथ आप किस तरह का संबंध महसूस करते हैं?

jkeân; frokjh : मेरी जन्मभूमि छत्तीसगढ़ का एक गांव 'उरइहा' है। इसी कारण गांव की मिट्टी के प्रति मेरा विशेष लगाव है। गांव की संस्कृति, परंपरा, परिवेश और समूचा वातावरण मेरे अंदर रचा–बसा है। यह सत्य है कि जीवनशैली, आचरण, सभ्यता और जीवन के तमाम पहलू मूलतः हमें गांव के अंदर ही मिलते हैं, इसे हमें स्वीकार करना ही चाहिए और उन्हें अपने जीवन में उतारना भी चाहिए। मेरे तमाम नाटकों फिल्मों व लेखन में अमूमन मूल स्वर गांव केन्द्रित रहता है। 'आओ गांव की ओर लौटे चले' यह मेरा मूल मंत्र रहा है। मेरा पहला नाटक 'अंधेरे के उस पार' एक गांव की ही कहानी पर आधारित है।

मूलतः लोकमंच से मुझे लख्मण चंद्राकर जी ने और दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख जी ने ही जोड़ा।

nhun;ky lkgw : आप अपनी मंचीय प्रस्तुतियों में किस बात का ज्यादा ध्यान रखते हैं?

jkeân; frokjh : मेरा पूरा फोकस अपनी प्रस्तुतियों की गुणवत्ता, स्तर, प्रभाव तथा सामाजिक सरोकारों में ज्यादा होता है। मेरा पूरा ध्यान 'कथ्य' की दिशा और जनमानस पर पड़ने वाले प्रभावों पर होता है। मंच के माध्यम से मैं क्या कह रहा हूँ, किस तरह कह रहा हूँ और उन सबकी सम्यक संप्रेषणीयता प्रभावी तरीके से दर्शकों तक बराबर पहुँच भी रही है या नहीं, इस दृष्टिकोण से मैं प्रस्तुतियाँ तैयार करता हूँ। इन्हीं तथ्यों की मंचीय सफलता से मुझे पूरी तसल्ली मिलती रही है।

nhun;ky lkgw : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आप लोकनाट्यों की कितनी उपयोगिता व आवश्यकता महसूस करते हैं?

jkeân; frokjh : आज पहले से भी ज्यादा लोकनाट्यों की सार्थकता व उपयोगिता है, इसीलिए आवश्यकता भी है। ऐसा मैं महसूस करता हूँ। बेशक आज हम 21वीं सदी में जी रहे हैं, जिसमें भूमंडलीय–बाजारवाद और इलेक्ट्रानिक संचार

साधनों की बाढ़ है। आज की वैज्ञानिकी प्रगति और प्रौद्योगिकी ने हमें अकल्पनीय सुविधाएँ दी, मगर इसी दौर ने हमें कई दंश भी दिए है। हम अपनपी 'जमीन' सेकट गए है। धरातल में उखड़ गए है। संवेदनाएँ सूख गई हैं। आत्मीयता का अभाव है। पंरपराओं और मूल्यों का विघटना देखा जा रहा है। दुनिया जितनी सिमटी, उतने ही हम एक–दूसरे से दूर हो गए। ऐसी भयावह स्थिति में लोकनाट्यधर्मिता आश्वस्त कर हमें अपनी जड़ों की याद दिलाती है। हमारी संस्कृति, परंपरा और जीवन मूल्यों की रक्षा करती है। उनसे हमें जोड़ने का काम करती है।

nhun;ky lkgh % आपकी दृष्टि में प्रभावी लोकनाट्य की खास पहचान, उसकी विशेषता या कहें कि मापदण्ड क्या है?

jkeân; frokjh : मेरी दृष्टि में लोकनाट्य की सबसे बड़ी पहचान उसकी सहजता, सरलता और सरसता है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता दर्शकों से गहरा जुड़ाव, सघन तादात्म्य, उसकी आत्मीयता और अपनापन है। यह अपनापन लोकनाट्य की सबसे बड़ी पूंजी है और खूबी भी है। मनुष्य युग–युग से आत्मीय स्पर्श का प्यासा रहा है। लोकनाट्य इस प्यास की तृप्ति का आदिम माध्यम है। मनुष्य के भीतरी तारों का कोमल स्पर्श ही लोककलाओं की असल पहचान है। यही इसका प्रमुख मापदण्ड भी। यही कारण है कि आज की चकाचौंधकारी चुनौतियों के बीच भी लोकनाट्य पूरी ताकत से जिन्दा है। और हमेशा रहेगा।

nhun;ky lkgh : मैं पाता हूँ कि आपके छत्तीसगढ़ी नाटकों में कोई न कोई संदेश अवश्य निहित होता है। इससे उसकी लोकरंजकता को खतरा नहीं होता?

jkeân; frokjh : इसमें संदेह नहीं कि आप मेरे सभी नाटकों में कोई न कोई संदेश अवश्य देखेंगे। इसमें मनोरंजन तो रहता ही है साथ ही चिंतन की सामग्री, सोचने की दिशा, सामाजिक जनचेतना और प्रस्तुतिकरण की शैली जिससे दर्शक प्रभावित हो, जैसे विषय–वस्तु का समावेश मेरे नाटकों में रहते ही है। मेरा संदेश शुष्क न होकर मनोरंजन में अंतर्गुफित होते हैं। इसलिए पंसद किए जाते हैं।

nhun;ky lkg : उम्र के इस पड़ाव पर अपनी कलागत यात्रा में खुद को आप कितना सफल मानते हैं?

jkeân; frokjh : मेरा सौभाग्य है कि मुझे भी श्री रामचंद्र देशमुख और श्री महासिंग चंद्राकर जैसे कला दिग्गजों की छत्र छाया में काम करने का सुअवसर मिला। लक्ष्मण चंद्राकर, दीपक चंद्राकर, डॉ. विनायक मेश्राम, राजेन्द्र सोनबोइर, राधेश्याम चंद्राकर और स्व. प्रेम साइमन, स्व. हिमांशु कुमार जैसे कई आत्मीय साथी और सहयोगी मिले। मेरी तमाम प्रस्तुतियों को हर बार दर्शकों का बेशुमार प्यार मिला। समीक्षकों से भरपूर सराहना मिली। और क्या चाहिए? शुक्र है कि मेरी कलागत सक्रियता इस उम्र में भी बरकरार है। अपनी कला यात्रा से मैं पूर्णतः संतुष्ट हूँ मगर एक बात कहना चाहता हूँ – मेरी मंजिल वह नहीं, जहाँ में आज हूँ। वह मंजिल दूर है, जहाँ मैं पहुँचना चाहता हूँ" खैर! मैं कह सकता हूँ कि 'मंजिल मिले न मिले कोई गम नहीं, मंजिल की जुस्तजू में मेरा करवां तो हैं।'

nhun;ky lkg : आज के छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों की दशा और दिशा के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

jkeân; frokjh : हर पारंपरिक कला में युगानुकूल क्रमिक विकास और परिवर्तन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। समय पर प्रभाव हर कला के रूपों पर पड़ता ही है। परंपराओं के साथ प्रयोग भी होते रहते हैं। परंपरागत कलाएँ प्रवाहित नदी की तरह होती हैं, इसीलिए उनमें ताजगी और जीवंतता बनी रहती है। परंपरा के साथ प्रयोगों की बात आती है, तो यह ध्यान रखा जाना चाहिए – 'परंपरा बोझ न लगे और प्रयोग फैशन न लगे।' मणिकांचन मेल की तरह परंपरागत लोकनाट्यों में परिवर्तन और प्रयोग तो हों, मगर स्वाभाविकता के साथ। अपनी प्रस्तुतियों में मैंने इस बात की सजगता बराबर बरतने की कोशिश की है।

nhun;ky lkg : छत्तीसगढ़ के अलावा देश के किन–किन राज्यों में आपके कार्यक्रमों की प्रस्तुति हुई?

jkeân; frokjh : छत्तीसगढ़ के अलावा दिल्ली के ही प्रगति मैंदान में 'घर कहाँ हैं' और 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' नागपुर जगन्नाथपुर के कुमार उत्सव में, आर्ट

ऑफ लिविंग के बेंगलुरू में हुए विश्व सम्मेलन में 'छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' के भव्य प्रदर्शन हुए। यह एक ऐसी चर्चित नाटिका है, जिसका गौरवपूर्वक प्रदर्शन रायपुर के राजभवन में देश की अनेक शीर्षस्थ बड़ी हस्तियों के समक्ष हो चुके हैं। टेली प्ले के रूप में 'लोरिक चंदा' का प्रसारण दिल्ली, भोपाल और रायपुर दूरदर्शन से कई–कई बार हुआ है।

nhun;ky lkgh : लोकनाट्य की दिशा में आप वर्तमान में किन योजनाओं पर कार्य कर रहे हैं?

jkeân; frokjh : मैं पिछले अनेक वर्षो से 'लोकरंग' अर्जुन्दा के संस्थापक संचालक व निर्देशक श्री दीपक चंद्राकर की संस्था के साथ अभिन्नता से जुड़ा हूँ और आवश्यकता अनुकूल लोकरंग के बेनर पर जिस भी महती प्रोजेक्ट पर मुझसे अपेक्षा की जाती है – उन प्रस्तुतियों का निर्देशन करता हूँ। वर्तमान में विश्व विख्यात नगपुरा पार्श्व तीर्थ पर केन्द्रित डाक्यूमेंट्री फिल्म 'पार्श्व तीर्थ दर्शन' नगपुरा का लेखन और निर्देशन मैंने किया है। जिसकी अवधि एक घंटे की है। इसी तरह लोकरंग के बेनर पर फिलहाल मेरे द्वारा लिखित व निर्देशित एक वृहद् नाटक 'शहन्शाह संन्यासी स्वामी विवेकानंद' के मंचन कई महत्वपूर्ण शहरों, नगरों और स्थानों पर हो चुके हैं। प्रदर्शन जारी है।

nhun;ky lkgh : आप अंचल के वरिष्ठ और अनुभवी रंग निर्देशक है। कला की लंबी यात्रा पूरी की है, इस नाते लोक मंचीय क्षेत्र से जुड़ी युवा पीढ़ी के कलाकारों के लिए आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

jkeân; frokjh : मैं अच्छी तरह जानता हूँ – भाई दीनदयाल जी, आज की युवा पीढ़ी मुझसे अधिक ऊर्जावान, प्रतिभावान, सक्षम–समर्थ और समझदार हे। फिर भी उनके कुछ काम आ सके तो मैं यही सुझाव देना चाहूँगा कि उनके कंधों पर कला जगत की बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं। कला–कर्म जुनून और समर्पण के साथ जिम्मेदारी की मांग करता है। मेरे युवा कलाकार साथी एक क्षण ठहरकर गंभीरता पूर्वक सोंचे, अपनी कलाओं में थोड़ी और सतर्कता बरतने की कोशिश करें। कला को गंभीरता से ले। छत्तीसगढ़ संस्कृति और लोककला के नाम पर हम क्या कर रहे हैं, कहाँ

और किस दिशा में जा रहे हैं, इस पर भी थोड़ा विचार कर लें। इससे केवल उनका ही नहीं, छत्तीसगढ़ के कला जगत का भी भला होगा।[9]

उपर्युक्त समस्त प्रश्नों के उत्तर एव साक्षात्कार मैने "कालजयी लोकनाट्यों के निर्देशक रामहृदय तिवारी, कला तपस्वी की यात्रा का समग्र, सम्पादक राजेन्द्र सोनबोईर, प्रकाशक दीपक चन्द्राकर की बहुमूल्य पुस्तक से वर्णित किया है।

ykdukV; ukpk dk tud nkÅ nqykjflag eanjkth

दाऊ जी का जन्म 01 अप्रैल 1611 में राजनांदगांव से 7 किलोमीटर दूर स्थित ग्राम रवेली के संपन्न मालगुजार परिवार में हुआ था। उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा सन् 1622 में पूरी की थी। गांव में कुछ लोक कलाकार थे। उन्हीं के निकट रहकर ये चिकारा और तबला बजाना सीख गये थे। वे गांव के समस्त सामाजिक एवं धार्मिक पर्वो मं होने वाले कार्यक्रमों में भाग लेते रहे थे। जहाँ कहीं भी ऐसे कार्यक्रम आयोजित होते थे तो वे पिताजी के विरोध के बाद भी रात्रि में होने वाले नाचा आदि कार्यक्रमों में अत्यधिक रूचि लेते थे। उनके पिता स्व. रामाधीन दाऊजी को दुलारसिंह की ये रूचि बिल्कुल पसंद नहीं थी इसलिये हमेशा अपने पिताजी की प्रताड़ना का सामना भी करना पड़ता था। चूंकि इनके पिता जी को इनकी सांगीतीय रूचि पसंद नहीं थी अतएव पिता जी ने इनकी रूचियों में परिवर्तन होने की आशा से मात्र 14 वर्ष की आयु में ही दुलारसिंह दाऊ को वैवाहिक सूत्र में बांध दिया किन्तु पिताजी का यह प्रयास पूरी तरह निष्फल रहा। आखिर बालक दुलारसिंह अपनी कला के प्रति ही समर्पित रहे। दाऊजी को छत्तीसगढ़ी नाचा पार्टी का जनक कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

बचपन से ही रूचि थी और रवेली में ही मैंने यह काम प्रारंभ किया। सन् 1627–28 तक छत्तीसगढ़ में कोई भी संगठित नाचा पार्टी नहीं थी। कलाकार तो गांवों में रहते थे किन्तु संगठित–पार्टी के रूप में नहीं थे। आवश्यकता पड़ने पर तथा संपर्क करके बुलाने पर कलाकार कार्यक्रम के लिये जुड़ जाते थे और कार्यक्रम के बाद अलग हो जाते थे। आवागमन के साधन भी सीमित थे।[10]

नाचा के प्रति पूरी तरह समर्पित और नाचा को परिष्कृत करने को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेने वाले मंदराजी ने सन् 1928–29 में कुछ कलाकारों को एकत्रित कर आने गांव में रवेली नाचा पार्टी की स्थापना की। रवेली नाचा पार्टी के 1928 से 1953 तक लगभग पच्चीस वर्षो के कार्यकाल में छत्तीसगढ़ के अनेक मूर्धन्य एवं नामी कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया। पच्चीस वर्षो में मंदराजी दाऊ ने नाचा में युगान्तकारी परिवर्तन किये। रवेली नाचा पार्टी के प्रारंभिक दिनों में खड़े साज का प्रचलन या यानि वादक पूरे कार्यक्रम के दौरान मशाल की रोशनी में खड़े होकर ही वादन करते थे। दाऊ जी ने इसमें परिवर्तन करके नाचा को वर्तमान स्वरूप में लाया। इसके अलावा मध्यरात्रि को समाप्त हो जाने वाले नाचा के समय सीमा को उन्होने प्रातःकाल तक बढ़ा दिया। उसी प्रकार पूर्व में चिकारा नाचा का प्रमुख वाद्य था। उसके स्थान पर दाऊ जी ने नाचा में हारमोनियम का प्रयोग शुरू किया। नाचा में हारमोनियम का प्रयोग सन् 1933–34 में हुआ। 1936 के आते आते नाचा में मशाल के स्थान पर पेट्रोमैक्स का प्रयोग शुरू हो गया था। रवेली नाचा पार्टी में 1936 में एक पेट्रोमैक्स आ गया था। सन् 1940 में दशक में नाचा के मंच पर एक पेट्रोमैक्स के स्थान पर चार चार पेट्रोमैक्स का प्रयोग शुरू हो गया था।

सन् 1940 के आते आते रवेली नाचा पार्टी ने समूचे छत्तीसगढ़ में धूम मचा दी थी। इस पार्टी के कलाकारों की ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी की दर से बढ़ रही थी। उन दिनों इसके समकक्ष छत्तीसगढ़ में कोई भी पार्टी नहीं थी। सन् 1940 से 1952 तक का समय रवेली नाचा पार्टी का स्वर्ण युग माना जाता है। इस अवधि में पूर्णतः व्यावसायिक रूप से उभरकर आने वाली इस पार्टी ने गांव ही नहीं वरन् शहरों में भी आपार खति अर्जित कर अपनी कला का डंका बजाया था। मंदराजी दाऊ ने रवेली नाचा पार्टी में अपने गम्मत के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक बुराईयों पर जमकर प्रहार किया तथा जनजागरण लाने में अपनी सार्थक भूमिका निभायी। मद्यपान, बहुपत्नी प्रथा, विवाह में फिजूलखर्ची, सामन्ति प्रवृत्ति ढ़ोंग जैसे विषयों पर जमकर कटाक्ष किया। इसके अलावा परिवार नियोजन, छूआछूत, औद्योगिकीकरण, पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं साक्षरता जैसे विषयों के माध्यम से

जनचेतना जगाने का प्रयास किया। उन्होने मेहतरीन गम्मत में छूआछूत को दूर करने का प्रयास किया, ईरानी में हिन्दू मुस्लिम एकता, बुढ़वा बिहाव में बाल विवाह पर रोक एवं मरारिन में देवर भाभी के रिश्ते को माँ और बेटे के रिश्ते में परिभाषित किया। इसके साथ ही उन्होने कुछ राष्ट्रीय गीतों को भी नाचा में शामिल कर अंग्रेजी राज के खिलाफ जनजागरण का शंखनाद करने का प्रयास किया।

रवेली नाचा पार्टी के उत्तरार्ध में 1948–49 में भिलाई के समीप ग्राम रिंगनी में रिंगनी नाचा पार्टी का जोर शोर से अभ्युदय हुआ था। सन् 1951–52 तक यह पार्टी भी प्रसिद्धी के शिखर पर पहुंच चुकी थी। तब समूचे छत्तीसगढ़ में सिर्फ रवेली और रिंगनी नाचा पार्टी का डंका बज रहा था। लोककला मर्मज्ञ दाऊ रामचंद देशमुख ने फरवरी सन् 1952 में अपने गृहग्राम पिनकापार में दो दिवसीय मंडई का आयोजन किया। इस कार्यक्रम के बाद रवेली एवं रिंगनी नाचा पार्टी का एक दूसरे में विलय हो गया। यही से रवेली नाचा पार्टी का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया। बाद में रिंगनी रवेली नाचा पार्टी के प्रमुख कलाकार दाऊ रामचंद्र देशमुख की सांस्कृतिक संस्था छत्तीसगढ़ देहाती कला विकास मंच में शामिल हो गये। कालांतर में प्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर के आग्रह पर रिंगनी रवेली नाचा पार्टी के छः कलाकार क्रमशः मदन निषाद, लालू राम, ठाकुर राम, बापूदास, भुलऊराम एवं शिवदयाल नया थियेटर में शामिल होकर नई दिल्ली चले गये। आर्थिक प्रलोभनों के कारण मंदराजी दाऊ के कलाकार धीरे धीरे बिखर गये और कुछ बेहतर करने की तलाश में कुछ कलाकारों ने छत्तीसगढ़ से पलायन भी किया। इन बीते वर्षो में तीन सौ एकड़ के स्वामी मंदराजी दाऊ अपनी सारी संपत्ति नाचा के पीछे होम कर चुके थे। इस कारण वे अपनी नई टीम भी बना नहीं पाये लेकिन कलाकारों के छोड़कर जाने के बाद भी नाचा के प्रति उनका मोह मृत्युपर्यन्त बना रहा।

24 सितम्बर 1984 को नाचा के इस महान सर्जक एवं हजारों लोक कलाकारों के प्रेरणास्त्रोत ने अंतिम सांस ली । बाद में छत्तीसगढ़ सरकार ने दाऊ जी की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उनके नाम पर दो लाख रूपये का दाऊ मंदराजी सम्मान देना शुरू किया है। दाऊ जी ने अपनी जिंदगी में धन कमाया बल्कि अपनी संपत्ति को गंवाया। इसके एवज में उन्होने सिर्फ अपना नाम

कमाया जो बहुधा लोगों के लिए मुश्किल होता है। श्रीमंदराजी दाऊ समर्पण और साधन के पर्याय थे।

nkÅ nqykjflag enjkth dk ukpk ikfV;ks dh lxBu e fo’k"k ;kxnku

नाचा पार्टियाँ तब संगठित नहीं थी। 1627–28 में मैंने नाचा पार्टी बनाई। कलाकारों को इकट्ठा किया। कलाकारों में थे परी नर्तक के रूप में 1. गुंडरदेही (खलारी) निवासी नारद निर्मलकर, 2. सुकलू ठाकुर लोहारा (भर्रीटोला) निवासी गम्मतिहा के रूप में, 3. नोहरदास खेरथा (अछोली) निवासी गम्मतिहा के रूप में, 4. राम गुलाल निर्मलकर कन्हारपुरी (राजनांदगांव) निवासी तबलची के रूप में और 5. स्वयं दाऊजी मदराजी (दुलारसिंह) रवेली निवासी चिकरहा के रूप में ये पांच कलाकार ही प्रथम छत्तीसगढ़ी संगठित रेवली नाचा के आधार स्तम्भ बने।

लोकजीवन पर आधारित रवेली नाचा पाटी को प्रारंभ से सन् 1650 तक फिल्मी भोंडेपन से अछूता रखा। पार्टी में (महिला नर्तक) परी, हमेशा ब्रम्हानंद, महाकवि बिन्दु, तुलसीदास, कबीरदास एवं तत्काली शायरों के अच्छे गीत और भजन प्रस्तुत करते रहे हैं। 1630 में चिकारा के स्थान पर हारमोनियम और मशाल के स्थान पर गैसबत्ती से शुरूआत मैंने की।

खड़िया और हड़ताल का उपयोग करते हैं। धीरे–धीरे अब स्नो–पाऊडर का भी उपयोग होने लगा है।

हमारी नाचा पार्टी ने अंग्रेजी शासन के खिलाफ – स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का साथ दिया। अंग्रेजी शासन के विरूद्ध उत्तेजक संवाद बोलने के कारण इसके प्रदर्शन पर प्रतिबंध भी लगा दिया गया था। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीत भी हम गाया करते थे।

रीछन से दस हाथ बैकल से बीस हाथ
तीस हाथ रहे चुगलखोर से चालीस चांडाल से
पापी से पचास हाथ सांप से साठ हाथ
अस्सी और नब्बे, नहारू, नाई, कलार (शराबी) रे
हाथी से हजार हाथ, लड़कन से सात हाथ

पंडित पुरानिक से बचे रहो ख्याल से

कहे दयानंद जी यह कवित्त सीख राख

लाख हाथ रांड, भांड, लम्पट, लबार से।[11]

दाऊ दुलारसिंह मंदराजी की 'रवेली नाचापार्टी' जैसी पारंपरिक पार्टियों के अभियान का बलिदानी इतिहास आज सुनहरे पन्नों में दर्ज है। अंचल के आहत स्वाभिमान और सांस्कृतिक विखंडन के मर्मभेदी संत्रास ने जिन कला मनीषियों को उद्वेलित किया था।

राजनांदगांव के समीप स्थित ग्राम रवेली के सम्पन्न गौटिया दाऊ मंदराजी ने कुछ युवकों की टोली बनाकर तबले, हारमोनियम व मंजीरे के साथ समवेत स्वर में छत्तीसगढ़ी बोली में गीत रचकर सन् 1932 में पहली बार संगठित नाचा पार्टी का गठन किया। दाऊ जी स्वयं अच्छे लोक कलाकार थी। घर से सम्पन्न होने के कारण अपने ही खर्च से नाचा पार्टी के कलाकारों को प्रशिक्षित करते हुए विभिन्न ग्रामों में वे कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहें। धीरे–धीरे दाऊ जी की नाचा पार्टी का नाम अंचल में ख्याति अर्जित करने लगा। रवेली वाले नाचा पार्टी का नाम आज भी संपूर्ण छत्तीसगढ़ में लोकप्रिय है।53

joyh ukpk ikVh ¼1928&1953½

स्व. दाऊ दुलार सिंह 'मँदराजी' के नेतृत्व में गठित रवेली नाचा पार्टी का नाचा गम्मत की कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। यह छत्तीसगढ़ की पहली संगठित नाचा पार्टी थी और अंचल के श्रेष्ठ कलाकार इससे जुड़े थे। प्रारंभ में इसके कलाकार खड़े साज में नाचा प्रस्तुत करते थे। बाद में बैठक साज का चलन हुआ तथा चिकारा के स्थान पर हारमोनियम का प्रयोग होने लगा। मँदराजी दाऊ नाचा में हारमोनियम बजाने वाले प्रारंभिक कलाकारों में थे। यहाँ रवेली पार्टी में 1928 से 1953 तक सम्मिलित कलाकारों का विवरण प्रस्तुत है –

lu1928 ls 1930

स्व. मँदराजी दाऊ (चिकारा, तबला) रवेली, स्व. अगरमन देवदास (तबला) कन्हारपुरी, स्व. चुनूराम करीगीर (तबला) कन्हारपुरी, स्व. रामगुलाल निर्मलकर

(तबला, चिकारा) कन्हारपुरी, स्व. रामरतन साहू (परी–नर्तक–नजरिया) रवेली, स्व. घसिया कारीगीर (जोकर), रवेली, स्व. रामरतन गोड़ ठाकुर (जोकर) रवेली

lu 1931 l 1933

स्व. मँदराजी दाऊ (चिकारा) रवेली, स्व. रामगुलाल निर्मलकर (तबला) कन्हारपुरी, स्व. सुकलू यादव (परी नर्तक) रवेली, स्व. पंचराम देवदास (परी नर्तक) तोरनकटा, स्व. सुकलू हल्बा ठाकुर (जोकर) भर्रीटोला (लोहारा), स्व. नोहरदास मानिकपुरी (जोकर या नजरिया) अछोली (खेरथा), स्व. रामरतन साहू (नजरिया) रवेली, स्व. सहनी ठाकुर (जोकर, नजरिया) रवेली।

lu 1933 l 1935

स्व. मँदराजी दाऊ (हारमोनियम, तबला) रवेली, स्व. धनऊ देवदास (हारमोनियम, तबला) बेलरगोंदी (कोकपुर), स्व. पंचराम देवदास (परी नर्तक) तोरनकटा, स्व. नोहरदास मानिकपुरी (जोकर), अछोली, स्व. सुकलू ठाकुर (जोकर) भर्रीटोला, स्व. नारद राम निर्मलकर (नजरिया), खलारी (गंडरदेही)

lu 1935 l 1936

स्व. मँदराजी दाऊ (हारमोनियम) रवेली, स्व. धनऊ देवदास (तबला) बेलरगोंदी, स्व. पंचराम देवदास (परी) तोरनकटा, स्व. नोहरदास मानिकपुरी (जोकर) अछोली, स्व. सुकलू ठाकुर (जोकर) भर्रीटोला, स्व. नारद राम निर्मलकर (नजरिया)खलारी,

lu 1936 l 1939

स्व. मँदराजी दाऊ, स्व. धनऊ देवदास, स्व. पंचराम देवदास, स्व. नोहरदास मानिकपुरी, स्व. सुकलू ठाकुर, स्व. नारद राम निर्मलकर

lu 1940 l 1942

स्व. मँदराजी दाऊ (हारमोनियम), स्व. जगेसर देवदास (तबला) गुंगेरी नवागांव (धनऊ की मृत्यु बाद), स्व. पंचराम देवदास (परी), स्व. सुकलू ठाकुर, स्व. नोहरदास, स्व. झाडूराम निर्मलकर (नजरिया) राजनांदगांव (ढिमरा पारा) (नारद के छोड़ने के बाद), स्व. धन्ना लाल जैन रवेली[12]

ukV &% 1936 में एक गैस बत्ती और 80, 41 तक चार गैस बत्ती का उपयोग होने लगा था। (रवेली पार्टी में 1936 से एक गैस बत्ती आ गयी थी)

रवेली नाचा पार्टी के लगभग 25 वर्षो के इतिहास में अनेक कलाकार शामिल हुए लेकिन मँदराजी दाऊ के अतिरिक्त धनऊ, देवदास, पंचराम देवदास, मदन निषाद, सुकलू ठाकुर, आदित सर्वाधिक लंबे समय तक जुड़े रहे। ये स्थायी कलाकार सरीखे थे।

स्व. मँदराजी, स्व. जगेसर देवदास, स्व. पंचराम देवदास, स्व. सुकलू ठाकुर, स्व. नोहरदास मानिकपुरी, श्री मदनलाल निषाद (जोकर), मोहारा (राजनांदगांव), स्व. पूसूराम यादव (जोकर), बसंतपुर (राजनांदगांव),स्व. जगन्नाथ निर्मलकर (नजरिया), बासपेयी पारा (राजनांदगांव)

lu 1942 l 1944

स्व. मँदराजी दाऊ, स्व. जगेसर देवदास तबला, स्व. फागूराम मानिकपुरी तबला, स्व. पंचराम मानिकपुरी तबला स्व. लालूराम (बिसाहू साहू) परी, स्व. नोहर दास मानिकपुरी जोकर, श्री मदन निषाद जोकर, स्व. जगन्नाथ निर्मलकर नजरिया, स्व. झाडूराम निर्मलकर, नजरिया,

lu 1944 l 1946

स्व. मँदराजी दाऊ, स्व. फागूराम दास तबला, स्व. भुवन दास तबला, श्री मदन निषाद जोकर, स्व. भुवन दास तबला, श्री गोविंद निर्मलकर, (बच्चा जोकर), श्री जगन्नाथ, नजरिया,श्री पंचराम देवदास, परी नर्तक, श्री लालू राम साहू, परी नर्तक, (1942 में लालूराम साहू कुरूद (धमतरी) पार्टी को छोड़कर रायपुर–टूरी तटरी से आगे और रवेली पार्टी में सम्मिलित हुए थे।)

lu 1946 l 1948

स्व. मँदराजी दाऊ, स्व. फागूदास, तबला, स्व. अमरू दास मानिकपुरी,तबला अछोरी (अंडा), स्व. मोहनलाल श्रीवास,तबला इन्दामरा (तुमड़ीबोड़), स्व. पंचराम देवदास, परी नर्तक, स्व. लालूराम साहू, परी नर्तक, स्व. मुकुंद राम साहू, गुंडरदेही, स्व. मदन निषाद, जोकर, स्व. बुधराम देवदास, जोकर देवरी (पैरी) पूर्व में नंदई राजनांदगांव (नोहरदास के बदले), स्व. जगन्नाथ निर्मलकर, नजरिया (राजनांदगांव), श्री गोविंद निर्मलकर, जोकर (मोहारा)

lu- 1948 l- 1950

स्व. मँदराजी दाऊ, स्व. फागू दास, तबला, स्व. मोहनलाल, तबला, स्व. चटनी देवार तबला (लोहारा), स्व.पंचराम देवांगन, परी नर्तक, स्व. लालू राम साहू, परी नर्तक, स्व. रूपराम साहू, परी नर्तक (बेलटिकरी),स्व. मदन निषाद, जोकर, स्व. बुधराम देवदास जोकर, स्व. बर्सनदास मानिकपुरी, जोकर (कोल्हियापुरी), स्व. जगन्नाथ निर्मलकर, नजरिया (राजनांदगांव), श्री गोविंद निर्मलकर , जोकर (मोहरा), lu- 1950 l- 1953

स्व. मँदराजी दाऊ (हारमोनियम), रवेली, स्व. फागू दास मानिकपुरी (तबला), मोतीपुर स्व. मोहनलाल श्रीवास (तबला), इन्दामरा, स्व. जीवनलाल चंद्राकर (तबला), कुरूद (धमतरी), स्व. पंचराम देवदास (परी), तोरनकटा, स्व. लालूराम साहू (परी), राजनांदगांव, स्व. जगमोहन (शहनाई), रायपुर, स्व. रूपराम साहू (परी), दुर्ग (नवापारा), श्री मदन निषाद (जोकर), नवागांव, स्व. बुधराम देवदास (जोकर), देवरी, श्री गोविंद मिर्नलकर (जोकर), मोहारा, स्व. गुलाबचंद जैन (जोकर), रामलीला पार्टी का जोकर राजनांदगांव, श्री छन्नूलाल साहू (परी), नवापारा (राजिम)[13]

lu- 1954 l- 1955

इसी समय रवेली पार्टी और रिंगनी पार्टी के प्रमुख कलाकारों ने एक साथ शामिल होकर एक नयी नाचा पार्टी का गठन किया। और उस नयी पार्टी का नाम हुआ रिंगनी–रवेली नाचा पार्टी राजनांदगांव। इसका मुखिया बनाया गया था लालूराम साहू को।

इस पार्टी का संचालन लालूराम ने किया। इसमें मँदराजी दाऊ जी को सिर्फ एक वादक के रूप में शामिल किया गया था। इस नयी पार्टी में हारमोनियमवादन का कार्य दाऊ जी के अतिरिक्त कुछ अन्य लोगों ने भी किया। इनमें कन्हारपुरी निवासी स्व. दाऊ टहलसिंह निर्मलकर, श्री जयेन्द्र सिंह (बाबा) जमींदार गुंडरदेही निवासी, श्री देवीलाल नाम चिलम निवासी आदि प्रमुख है।

रिंगनी–रवेली नाचा पार्टी के अतिरिक्त स्व. दाऊ जी ने अन्य–अन्य छोटी नाचा पार्टियों में भी वादन कार्य किया था। इन पार्टियों के कलाकार दाऊ जी को संचालन के कार्य भी सौंप दिया करते थे। चूंकि पार्टियों छोटी होने के कारण अधिक प्रसिद्ध प्राप्त नहीं कर पाई थी इसलिये कार्यक्रम थी कम मिलते थे एवं

पारिश्रमिक की भी राशि कम होती थी। इन्हीं सबके कारण दाऊ जी, जो बुलाये उन्हीं के साथ चले जाया करते थे और इसी कारण उनको कई कलाकारों के साथ कार्य करने का अवसर प्रापत हुआ था।

यहाँ उन कलाकारों को सूचीबद्ध किया जा रहा है जिन्होंने दाऊ जी के साथ छिटपुट तौर पर कार्य किया था। सूची में कहीं चूक संभव है, चूँकि इसे स्मृति के आधार पर तैयार किया गया है। इसके लिए संकलनकर्त्ता क्षमाप्रार्थी है।

rcyk

श्री महेशराम ठाकुर तबला, कोनारी (आमगांव),श्री तलफराम देवदास, तबला, व्हायोलिन, नवागांव (कातुलबोड़), श्री भगतराम निर्मलकर, तबला, कान्हारपुरी, श्री तुलसीराम कारीगीर, तबला, कन्हारपुरी,श्री बलीराम साहू, तबला, कन्हारपुरी, श्री वुकील साहू, तबला , कन्हारपुरी, श्री गन्नू (गनेश) यादव, तबला, ढोलक, दुर्ग, श्री बरसन देवदास, तबला, राजनांदगांव, श्री भागवत देवदास,तबला, राजहरा, श्री अमरदास मानिकपुरी, तबला, कोल्हियापुरी, श्री शिव देवदास, तबला, खुटेरी, श्री गोविंद निर्मलकर, ढोलक, मोहरा, श्री कुन्दरू सारथी, ढोलक, राजनांदगांव, श्री हरिशचन्द देवदास, तबला, बोदेला –ढोलक

ijh urd

श्री बृजपाल, परी नर्तक एवं नजरिया हमालपारा, (राजनांदगांव), श्री देवीलाल नाग परी नर्तक, चिलम–कन्हारपुरी, श्री सत्यमूर्ति देवांगन, परी नर्तक, कोनारी, श्री चतुरराम यादव, परी नर्तक , मतवारी (दुर्ग), श्रीमती माला (कांडिल) मरकाम, परी नर्तक, राजनांदगावं, श्री गोविंदराम मैथिल, परी नर्तक, जंजगिरी (दुर्ग), श्रीमती फिदा मरकाम, परी नर्तक,राजनांदगांव, श्रीमती कौशिल्य मरकाम, परी नर्तक, बसंतपुर, श्री शंकर लाल, परी नर्तक, आमटी, श्री छन्नूलाल साहू, परी नर्तक, कन्हारपुरी, स्व. रामसेवक, परी नर्तक, मनेरी, श्री जगन महाराज, परी नर्तक, धमतरी, श्रीमती राधा मरकाम, परी नर्तक,राजनांदगांव, श्रीमती तारबाई, परी नर्तक, दुर्ग, श्रीमती शकुन्तला देवी, परी नर्तक,नाटक कंपनी (स्थान अज्ञात), श्रीमती गोपाल बनर्जी, परी नर्तक, टाटानगर वाले, श्री दुखुराम, परी नर्तक, टाटानगर वाले आदि

utfj;k urd

श्री बलवाराम यादव, नजरिया, रिंगनी, स्व. प्रेमलाल निषाद नजरिया हरदी (मोहरा), श्री गंगाराम साहू नजरिया सुकुल दैहान, श्री चिंताराम साहू नजरिया ईरा, श्री चिंताराम साहू नजरिया जंगलपुर

tksdj

श्री बोहरिक लाल साहू जोकर खैरा, लखोली, स्व. बल्दूराम यादव जोकर गठुला, बोरी, स्व. बरातू श्रीवास जोकर सुरगी, स्व. भगवान दास साहू जोकर लखोली, स्व. रविलाल श्रीवास जोकर लखोली, स्व. खोलूराम साहू जोकर लखोली, स्व. राधेलाल साहू जोकर लखोली[14]

Jh jkepn n'ke[k ¼ukpk d d'ky f'kYih½

इनका जन्म 25 अक्टूबर 1916 में दुर्ग जिला छत्तीसगढ़ के ग्राम पिनकापार में हुआ था पिता का नाम गोविंद प्रसाद देशमुख एवं माता का नाम मालती देवी देशमुख था। विद्यार्थ्री जीवन में हॉकी के चर्चित खिलाड़ी अध्ययन लेखन कला अभिनय, गीत संगीत, लोक साहित्य संकलन एवं शोधात्मक कार्य में विशेष रूचि रखते थे। कृषि में बी.एस.सी. और नागपुर विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. किया। दाऊ रामचन्द्र जी न8 1973 में लोकनाट्‌य "एक रात का स्त्रीराज" 1976 में उपेक्षित शोषित विकास की रोशनी से कोसो दूर तथा दूसरे की जमीन पर निवासरत देवार जाति के पुनरोत्थान हेतु 'देवार डेरा' किया। 1984 में नारी व्यथा – कथा पर केंद्रित प्रस्तुति 'कारी' के रू‌प में सामने आया। कारी ने सफलता का इतिहास रचा।

श्री देशमुख हमेशाा शोषण दमन उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करते रहे। छत्तीसगढ़ में एक यायावर जाति है–देवार जिसके रगों में उसके रक्त के साथ–साथ संगीत और नृत्य प्रवाहित होते है। देवारों की जन्मजात प्रतिभाओं का भरपूर दोहर और शोषण हुआ लेकिन बदले में उन्हें घोर उपेक्षा और तिरस्कार मिला। श्री रामचन्द्र देशमुख इसे अपनदेखा न कर सके । देवारों के हितों को ध्यान में रखकर उनकी कलात्मक संस्कृति और बेबस नियति को रेखांकित करता हुआ देवार डेरा अस्तित्व में आया। जिसमें अब तक प्रतिष्ठित मंचों से वंचित रखे गये देवारों को मुख्य भूमिकायें देकर उनके प्रति समाज की दृश्टि और मान्यता को

बदलने का साहसिक प्रयास किया। दाऊ रामचन्द्र देशमुख ने छत्तीसगढ़ी लोकमंचों को प्रतिष्ठित करने हेतु अपना तनम न और धन समर्पित किया। सन् 1930 में इन्होने 'नरक और सरग', 'जनम और मरण' तथा काली माटी नामक नाटकों को गम्मत नाचा में कार्य करने वाले ग्रामीण कलाकारों के माध्यम से तैयार करके छत्तीसगढ़ी मंचों को जो प्रसिद्धि दिलाई वह लोकमंचों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य घटना है।[15]

दाऊ जी ने 1971 में 'चंदेनी गोंदा' नामक एक इतना भव्य, इतना आकर्षक चमत्कार उत्पन्न करने वाला कार्यक्रम तैयार किया गया कि फिल्म 'मदर इंडिया' मुगले आजम, राम–राज्य, नागिन, शोले की तरह ही आम दर्शकों के बीच प्रसिद्धि दिन–दूनी रात चौगुनी फैलती गई और जहाँ उसके प्रदर्यान होते थे, वहाँ–वहाँ पचास साठ हजार से भी ज्यादा दर्शक की उपस्थिति होती थी।

छत्तीसगढ़ी लोकमंच को ऊँचाइयों पर पहुँचाने वाले लोकनाट्य में शिष्ट नाट्य का स्वरूप देकर जन–जन के मन–मन में छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य और संस्कृति को गौरवान्वित करने वाले तथा छत्तीसगढ़ की मनीषा को मथकर चंदैनी गोंदा के रूप में प्रस्तुत करने वाले दाऊ रामचंद्र देशमुख छत्तीसगढ़ के समर्पित साधक रहे हैं। चंदैनी गोंदा के संस्थापक कला सर्जक अनोखे व्यक्ति थे श्री रामचंद्र देशमुख ने 1970 की शुरूआत में ग्राम बघेरा में छत्तीसगढ़ के जनजीवन को संवारने एवं लोकतात्विक कलाओं के संरक्षण संवर्धन और प्रदर्शन की जिम्मेदारी ली तथा उसे बखूबी निभाया भी। लगभग 50 वर्ष पहले स्थिति यह थी कि नाचा, करमा, देवार और इस प्रकार की कुछ और लोककलाएँ संभ्रांत वर्ग के देखने के लायक नहीं मानी जाती थी। नाचा में प्रयुकत द्विअर्थी अश्लील वार्तालाप औरफूहड़ता के कारण यह कला केवल निम्न वर्ग के ही लोगों के मनोरंजन का साधन समझी जाती थी। यह भी उतना ही सत्य है कि लोककला पर पिछड़े वर्ग के लोगों का ही जन्मजात अधिकार पहले भी था। और आज भी है। दाऊ रामचंद्र देशमुख ने उस स्वाभाविक कला के उस अश्लील पहलू के उपचार स्वरूप उसे शालीनता का आवरण दिया। उतने पूर्व से चली आ रही इस पंरपरा को परिष्कृत करना सामान्य कार्य नहीं था उनके प्रयासों के परिणाम स्वरूप यह वृहत जनसमुदाय में प्रतिष्ठित

हुआ। सभ्रांत वर्ग भी इसे देखने और उसकी चर्चा करने लगे हैं। यह युगांतकारी प्रभाव है।

यह सर्वसम्मत है कि 1951 के पूर्व मानो नाचा लकवाग्रस्त था। रामचंद्र देशमुख ने छत्तीसगढ़ के जाने माने नाचा कलाकारों को जोड़कर अच्छे संवाद की अभियोजन करके उसे नई दिशा प्रदान किया। वे छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य और मंच के युग–पुरूष थे।

शब्द और स्वर की बारीकी से परख, पूरी गंभीरता से नाट्यांकन और गरिमामय प्रस्तुति हेतु दाऊ रामचंद्र देशमुख जी तोड़ मेहनत करते थे। प्रत्यक्षदर्शी बताते है कि चंदैनी गोंदा की प्रस्तुति के पूर्व उन्होंने एक–एक वादक, गायक, अभिनेता आदि की खोज के लिए अथक प्रयत्न किया था। लगभग दो साल तक उनकी खोज यात्रा चली। रामसहाय और एक दो व्यक्ति को लेकर दिनभर घूम–घूम कर कलाकार ढूंढते थे। इस बीच भोजन और विश्राम की भी परवाह नहीं करते थे। दानेश्वर शर्मा जी ने लिखा है कि उनके पास रामचंद्र देशमुख ने रात 10 बजे एक रूंजू बजाने वाले को लेकर आये। रूंजु वादक तार के उस यंत्र से शब्दों के बोल प्रश्नोत्तर शैली में निकालता था। उस कलाकार से मिलने के लिए वे भिलाई (छ.ग.) के कैम्प 1, रामनगर, सुपेला इत्यादि स्थानों पर दिनभर भटकते रहे वह उनकी कर्मठता का एक उदाहरण है। पेज 42–43 (लोकमत के पुरोधा प्रयास प्रकाशन डॉ. संतराम देशमुख)

दाऊ जी जानते थे कि कलाकार 'दिन में तोला छिन में मासा' होते है अतः बाकायदा उन्हें बड़े अनुशासन की डोर में बाँधकर रखने के लिए ये विख्यात रहे हैं।

Jh egkfl ag pUnkdj

दाऊ रामदयाल के घर में 1919 में जन्मे श्री महासिंह चन्द्राकर का लालन पालन भरे पूरे परिवार के बीच हुआ। दाऊ महासिंह चन्द्राकर का बचपन आमदी गांव में बीता यह वहीं आमदी गांव है जिसमें जवाहर लाल नेहरू चिकित्सालय, सेक्टर 9 खड़ा है। यही दाऊ महासिंह की शिक्षा दीक्षा प्रारंभ हुई। शासकीय विद्यालय दुर्ग से दाऊ महाविद्यालय दुर्ग से दाऊ महासिंह ने छठवी कक्षा उत्तीर्ण की। चूंकि वे कला के संस्कार लेकर जन्मे थे इसीलिए आगे पए नहीं सके। मठभेरा

नाचा पार्टी बनाकर उन्होने कला यात्रा प्रारंभ की। मठभेरा साज में अनपढ़ कलाकारों को दाऊ जी ने अपने ढंग से प्रशिक्षित किया। वे कलाकारां को पेड़ पर चढ़ा देते थे और अपना पाठ याद करने को कहते थे जब तक कलाकार पाठ कंथस्थ नहीं कर लेता था वे उतरने नहीं देते थे। भठभेरा साज की लोकप्रियता इसी से हम जान सकते हैं कि गांव के लोग एक दिन की बेगारी करने को भी तैयाररहते थे। भठभेरा साज कीह प्रदर्शन देखने के लिए एक दिन का श्रम वे मुफ्तकरने को राजी होते थे। दाऊजी तबले पर निरंतर रियाज करते थे। एक बार दाऊ महासिंह चन्द्राकर के तबले को दाऊ रामदयाल ने तसले के रूप में उपयोग हेतु फोड़वा दिया। दाऊ महासिंह इससे बेहद रूष्ट हुंए, उन्होने अपने पिता के द्वारा पूजित भगवान शालिगराम को यह कहकर उठा लिया कि मेरे आराध्य तबले का अपमान आपने किया है तो शालिग राम आके अराध्य है, मैं उसे फेक आऊंगा। फिर कभी ऐसी अवमानना संगीत की नहीं होगी, इस आश्वासन के बाद ही भगवान शालिगराम अपने मूल स्थान पर विराज सके। दाऊ महासिंह चन्द्राकर की कला साधना एवं दिलचस्पी से उनके पिता दाऊ रामदयाल सिंह नाराज रहते थे। दाऊ महासिंह चन्द्राकर दिन दिन भर तबले का रियाज करते रह जाते। एक बार रामदयाल दाऊ ने महासिंह चन्द्राकर तथा वासुदेव चन्द्राकर ने महमरा गांव में दाऊ लखन चंद्राकर के यहां दरोगाी कर दो वर्ष का निर्वासन का समय काटा। पांचवे दयाक तक दाऊ महासिंह चन्द्राकर मतवारी में नाचा पार्टी चलाते रहे। स्थानीय कलाकारों को संगठित कर उन्होने नाचा दल बनाया छठवे दशक में वे दुर्ग आ गये। यहां पंडित जगन्नाथ भट्ट के मार्गदर्शन में उन्होने तबला वादन सीखा। तबला तो वे शुरू से बजाते थे लेकिन शास्त्रीय मान के अनुरूप पुनः कठोर रियाज कर उन्होने पंडित जगन्नाथ भट्ट के निर्देशन में किया और अपने कठिन परिश्रम से उम्र में भी अगस्त 1964 में प्रयाग संगीत, इलाहाबाद से तबले में डिप्लोमा की उपाधि प्राप्त की। दाऊ चन्द्राकर ने सदैव गुणी जनों एवं सिद्ध कलाकारों का सम्मान किया। प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक श्री जगदीश अपने संकट के दिनां में दाऊ के यहां रहे। कला के माध्यम से अपनी पीड़ा को उन्होने बेहद प्रभावी ढंग से रखा। छत्तीसगढ़ के यशस्वी साहित्यकार डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा महासिंह के अत्यंत समीप थे। इसमें छत्तीसगढ़ का सुख दुख, हर्ष विषाद, जय पराजय चित्रित है। छत्तीसगढ के

लिए यश मान समृद्धि का स्वर्ण विहान चाहने वालों के लिए महासिंग के सोनहा बिहान की प्रस्तुति विलक्षण सिद्ध हुई। लोगों ने इसे हाथे हाथ उठा लिया। यह खूब चर्चित हुआ निश्चित ही यह विलक्षण मंचीय करिश्मा था। टाटा नगर एवं छत्तीसगढ के समस्त गांवों कस्बों और कुछ नगरों में इसका प्रदर्शन हुआ यहां तक कि रात भर छाता लेकर भी लोग प्रदर्शन देखते रहे। दिल्ली दूरदर्शन पर इसे टेलीकास्ट किया गया। इसकी सराहना देश भर में हुई इस प्रकार से स्पष्ट है कि महासिंह चन्द्राकर ने लोकनाट्य के क्षेत्र में अनुपम परिश्मा दिखाया।[16]

रामहृदय तिवारी इनके संबंध में कहते हैं कि – सच कहा जाय तो महासिंग चन्द्राकर व्यक्ति का नहीं, एक तपस्या का नाम था। लोक मंचीय कलाओं के लिये दिन रात लगे रहने वाले इस महान तपस्वी साधक का देहावसान एक सांस्कृतिक काल खंड का अवसान था। उनके जीवन के व्याकुल क्षणों में जन्मी उनकी तमाम कलागत सज्रनाओं ने उनसे बड़ी–बड़ी कीमतें वसूल की। सम्पन्न घर में जन्म लेने के बावजूद उनका सांस्कृतिक सफर सुगम कभी नहीं रहा। पग–पग अनगिनत बाधायें, पिताश्री परिजनों का प्रबल प्रतिरोध, फिर भी वे न कभी विचलित हुये न आपना साधना पथ बदला। जीवन भर, यहाँ तक कि गंभीर अस्वस्थता और वार्धक्य की विवशता के बावजूद सांस्कृतिक मशाल को जलाये अपने हाथों में थामें रहे। यह विलक्षण जीवटपन दाऊ जी के व्यक्तित्व की खास पहचान थी, जिसकी मिसाल अंचल के सांस्कृतिक इतिहास में दाऊ रामचन्द्र देशमुख और मंदराजी दाऊ के अलावा दुर्लभ है। "भट मेरा साज" के गर्भ से जन्मे "सोनहा बिहान" की सांस्कृतिक सुरसरिता के विभिन्न पड़ावों के रूप मं गीतांजलि, लोक–रंजनी, फिर लोरिक चंदा का अविरल प्रवाह महासिंह दाऊ की उपाम कलानिष्ठ, साधना और समपर्ण का अनूठा प्रमाण है। माटी की गंध और खुदरापन लिये अनगढ़ सुघड़ता को लोकमंचीय सर्जना का प्राण मानने वाले महासिंह जी यह मानते थे कि कला की कोई सीमा नहीं होती, नही उसे सीखने में उम्र या हैसियत आड़े आनी चाहिये। वे जिज्ञासु भव से नित्य नई चीजें गुणी लोगों से स्वंय सीखते रहे, साथ ही युवा पीढ़ी को भी पूरी तल्लीनता के साथ सीखाते रहे। 'लोरिक चंदा' का निर्देशन भार मुझे सौपने के साथ कई सीख भी उन्होने मुझे भी दी थी। इस प्रोजेक्ट के लिए उनक अपने मकान की छत पर संध्या समय गड़हा ददरिया उन्होने स्वंय गाकर मुझे जब सुनाया था, मेरी

आँखे भीग गयी थी। कलाकारों के प्रति उनकी सदाशयता और उदारता अंत तक बनी रही। मैं स्वंय उनसे मिले उदार स्नेह और अपनापन लिए सम्मान को भूल नहीं पाता हूँ।[17]

egRoi.k dykdkj

ijn'kh jke cypnu – इन्होने 16 वर्ष की उम्र में नाचा पार्टी में काम आरंभ करके 60 साथ तक उसी से जुड़े रहे। इन्होने सोमनी के कलाकार गुरूदत्त से प्रेरणा मिली। रिंगनी कुरूद, कुर्राश कल्याणपुर, दुर्ग और राजिम की नाचा पार्टी से जुड़े रहे। इन्होने गम्मत में प्रभावी काम किया। मंदरा जी एवं दाऊ रामचंद्र के साथ काम करना बेहतर लगता था।

fo".kjke fu"kkn – नाचा का ग्राम लखना से आरंभ किया। इन्हें अपने चाचा एवं पता से प्रेरणा मिली। इन्होने बताया कि गम्मत की कहानी धार्मिकम गाथा या कल्पना से तैयार करते हैं। ये लेखना मटिया, खैरखुंट सरोरा नाचा पार्टी से जुड़े रहे ये जोकड़ का अभिनय करते रहे। रामलाल एवं सूरजखान भदेवा पूर्व जोकड का प्रभाव पड़ा।

fefFky'k lkgw – तीसरी की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करते करते ही गांव के अन्य लोगों के साथ मिलकर नाचा पार्टी का निर्माण किया इनके झघर में पिताजी के संरक्षण में ख्याति प्राप्त नाचा अभिनयकर्ता का रिहर्सल होता था 'राजिम कुर्रा' नाच पार्टी के संचालक उनके पिता थे अतः उन्हें पूर्व वातावरण ही मिला। ग्राम बारूका, राजिम कुर्रा, मटेवा आदि नाचा पार्टी से जुड़े। उन पर बाद में तुलसी सम्मान से सम्मानित सर्व मदन निषाद, गोविंद निर्मलकर, इंदरागाधी स्मृति राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित लालूराम साहू, झुमुकदास, मामिक दास, खलारी नाचा पार्टी के रामाधीन, छोटा नाचा पार्टी के रामलाल, राजिम कुर्रा नाचा पार्टी के रजऊ, तिहारू, सोनू साहू, कोदू साहूख परदेशी राम बेलचंदन, गन्नू यादव, नारायण दादा, कचना मडेली पार्टी के कुलेश्वर, रायखेडा नाचा पार्टी के गंगाराम, शंकर साहू ठेकला वाले, मचेवा नाच पार्टी, रायपुर के सूखा भाई बुलुआ एवं रिंगनी नाचा पार्टी कलाकारों का प्रभाव पड़ी। साथ ही मानदारा टंडन पुराने खड़े साज नाचा पार्टी बेरला विकासखण्ड दुर्ग

जो आज भी छत्तीसगढ़ी के सबसे प्राचीन और शसक्त नाच विधा को जीवित रखा है।

nokjk dh ikVh e crjuhu ckbZ, फिदाबी, माला बाई, पदमा, बसंती, माया, किस्मत बाई और चंद्रभान का नाचा से भी प्रभावित थे।

चतरूराम साहू – इन्होने सन् 1958 से नवापारा नाचा पार्टी दुर्ग से कार्य करना प्रारंभ किया। इनकी अभिनय यात्रा,सांस्कृतिक कला मंच 'हमर बिहाव', 'भुईंयां के भगवान', 'सोनहा बिहान', 'कारी', 'हरेली', 'गम्मतिहा', 'पुन्नी के चंदा', 'मोर गंवई गाँव', 'छत्तीसकढ़ महतारी', 'चंदैनी गोंदा', 'अनुराग धारा', 'मोगरा मितान' तथा लोकरंग अर्जुन्दा से जुड़े रहे हैं। ये नगवाराम साहू, नयापारा दुर्ग, श्री मदन निषाद नवांगांव, श्री ठाकुर राम रिंगनी, श्री भैयालाला हेड़ाऊ राजनांनगाँव इत्यादि क साथ इन्होने कार्य किया।

l[khjke uxkMph – इन्होने 1946 में अपना कार्य आरंभ किया। पिता की प्रेरणा मिली। कुरूद नाचा पार्टी एवं अन्य नाा पार्टी में कार्य किया।

रामखिलावन चंद्राकर – नाचा पार्टी में तबला वाद का कार्य करने वाले खिलावन जी 1963 से कार्य आरंभ किया तथा सोनहा बिहान, लोकरंजनी, लोरिक चंदा भुइंया के भगवान, तुलसी के चंऊरा आदि अनेक लोकनाट्यों में तबला वादन का कार्य किया।

Jherh dfork oklfud – पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश के कारण ही चंदैनी गोंदा, सोनहा बिहान, लोरिक चंदा लोकोत्सव, कारी, अनुराग धारा एवं कविता नाइट में अपनी गायन कला का अच्छा प्रदर्शन करती रही। "पता ले जा रे गाड़ी वाला" गीत बी.बी.सी. लंदन से भी प्रसारित होता रहा है।

Hk;kyky gMÅ– इन्होने पार्श्वगायन शैजी चंदैनी गोंदा, सोनहा बिहान जैसे लोकमंचों से इन्होने यह कार्य आरंभ किया।

गिरजा कुमार सिन्हा – अनुरागधारा, राजनांदगांव के संचालक रहे गिरजा कुमार लोकगीत और लोक संगीत के क्षेत्र में प्रवीण रहे हैं। चंदैनी गोंदा में संगीत के सहनिर्देशक रूप में सोनहा बिहान में एक प्रमुख बन्जो वाद्य वादक के साथ ही लोरिक चंदा लोकोत्सव 'कारी' अनुराग धारा तथा लोकनाट्यों में प्रमुख रूप से बेन्जो वादक के रू‍प में सहयोग प्रदान किया।

gch ruohj& भारत में लोक नाट्य की परंपरा बहुत पुरानी है लोकनाट्य ऐसा मनांरंजन है जो ग्रामीण उत्सवों में ग्रामवासियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जिसका अभिनय करने के लिए किसी प्रकार के रंगमंच की विशेष तैयारी नहीं करनी पड़ती। ये सामूहिक आवश्यकताओं एवं प्रेरणाओं से निर्मित होने के कारण कथानकों, विश्वासों एवं अन्य तत्वों को समेटकर लोकजीवन से सीधे जुड़े रहने के कारण लोकभावनाओं का प्रत्पद्य प्रतिनिधत्व करते हैं। हमारे देश में भी रंगमंच का विकास सबसे पहले लोकनाट्य के रूप में हुआ।

हबीब तनवीर जी ने छत्तीसगढ़ी लोकसंस्कृति बोली और लोकनाट्य की नाचा शैली के आधार पर एक ऐसी रंगदृष्टि का विकास किया जिसे देश दुनियां में व्यापक स्वीकृति और सम्मान मिला हबीब तनवीर जी नाटक और लोकनाटक के मध्य एक सेतु बनकर आये। उन्होने लोकनाट्य की शक्ति को अच्छी तरह पहचाना और आधुनिक नाटक के साथ उसे समन्वित किा हबीब जी ने अपने नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य, नाचा के पारंपरिक संगीत वाद्य, नृत्य, गायन, अभिनय और मंच का अत्यंत कलात्मक एवं कल्पनाशील प्रयोग किया।

लोकसाहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी सूचना लोक करता है। इस कार्य में लोक प्रवृत्ति किसी प्रतिबंध को स्वीकार ही नहीं करती।

enu fu"kkn

मदन निषाद ने मोहारा नाचा पार्टी से लेकर रिंगनी साज मंचों से अनगिनत नाच, गम्मत और प्रहसन प्रस्तुत किए, करवाये और अपने बाद के भावी कलाकारों को सिखाकर तैयार करते रहे। शुद्ध हास्य, मनोविनोद और समाज सुधार की भावना से किए जाने वाले गम्मतों में नकली साधु भटरी, तीजापोरा, देरानी जेठानी, सउत झगरा, देवार, छेरछेरा और जमादारिन जैसी प्रस्तुतियों की ग्रामीण इलकों में घूम थी, जिनमें उन्होनें अविस्मरणीय केन्द्रीय भूमिकाएँ निभायीं। नया थियेटर के बेनर पर आगरा बाजार, मिट्टी की गाड़ी, रूस्तम सोहराब, मोरनाव दामाद जैसे कई सुप्रसिद्ध नाटकों में काम किया परन्तु सर्वाधिक चर्चित हुए चरणदास चोर में, जिसमें मदन निषाद के अभिनय की बुलंदी ने विदेशी नाट्य समीक्षकों को भी चकित कर दिया था। दाऊ रामचंद्र देशमुख के देहाती कला विकास मंडल की काली माटी में काम

करने के बाद दाऊ महासिंह चंद्राकर जी ने सोनहा बिहान में भी वे स्वर्णिम कला स्तंभ बने। बाद में उन्होंने लोरिकचंदा, हरेली और गम्मतिहा जैसे चर्चित नाटकों में भी काम किया।

जिनके निर्देशक क्रमशः इन पंक्तियों के लेखक के अतिरिक्त श्री लक्ष्मण चंद्राकर और दीपक चंद्राकर थे। यह हमारा सौभाग्य और इस कला महारथी की सहज सौजन्यता थी कि उन्होंने हम जैसे सामान्य कला साधकों के साथ ही उसी विनम्रता और शालीनता और आदर के साथ काम करना काबूल किया था। उनके साथ बिताये कितने यादगार क्षणों का जखीरा है हमारे पास, जिन्हें हम भूल नहीं सकते।

विगत 20 फरवरी 2005 को मदन निषाद जैसे कलाकार की मौत के साथ नाचा गम्मत की एक दुनिया ही उठ गई। मदन निषाद के मुकाबले का गम्मतिहा नचकार, छत्तीसगढ़ अब शायद कभी नहीं ढूंढ पायेगा। इस वरदानी और विनम्र कलाकार को अपनी जीवन में कभी किसी से कोई शिकायत नहीं थी। रही भी हो तो उन्होंने कभी व्यक्त नहीं किया।

nhid pUnkdj

आज की सुविख्यात लोक सांस्कृतिक संस्था 'लोकरंग अर्जुन्दा' के साथ रामहृदय तिवारी का प्रगाढ़ सृजनात्मक संबंध परस्पर पूरक के रूप में जगजाहिर है। यह लोकमंचीय कला जगत के लिए सुखकारी और लाभकारी सिद्ध हुआ है। पूरी सादगी, विनम्रता और आदर्श निष्ठा के संगम व्यक्तित्व वाले दृढ़ती, नैतिकता एवं स्नेहसुधा के प्रतीक रामहृदय तिवारी के हृदय में उत्साह का निर्मल कमल निरंतर खिला रहता है।

Hkyokjke ;kno

'रिंगनी साज' की पार्टी के कलाकार इन्होंने महिलाओं की भूमिका की है। इन्होंने स्वीकार किया है कि फिल्मी गाने का प्रवेश होना गाना में ठीक नहीं गांव में काफी इज्जत होती है।

fQnkckbZ

इन्होंने बचपन से ही नाचा में काम करने लगी थी मंदराजी दाऊ उन्हें सायकल में बैठाकर ले जाते थे। देवार जाति में जन्म लेने के कारण नृत्य एवं

संगीत में रूचि पूर्व से ही थी उनका कहना है कि इन्होंने हबीब तनवरी के साथ नया थियेटर में काम करने गई। रवेली साज एवं दूसरी नाचा पार्टी में काम किया है। उन्होंने मदन निषाद, मंदराजी दाऊ और ठाकुर राम से भी बहुत सीखा है। नाचा में सिनेमा के गीत की नकल ठीक नहीं वे मानती है। कमाई होने से घर वाले प्रसन्न रहते हैं। उन्हें अभिनय के लिए नाटक अकादमी का पुरस्कार मिला।

xkfonjke fuelydj

मोहरा गांव में जन्में गोविंद राम के गुरू मदन निषाद रहे है। रिंगनी रवेली नाचा मटेवा साज तथा 'कटकू' नाचा पार्टी में काम किया।

ckcnkl cMjk

दस वर्ष की उम्र से ही तबला बजाना प्रारंभ किया सन् 1920 में तब खड़े साज का प्रचलन था। उनका गांव के नाम ससुराल और नाम दामाद गम्मत अत्यधिक लोकप्रिय हुई 'चिखली', 'मिरोदा', 'रिंगनी', 'रवेली' में कार्य कर चुके बोडरा जी हबीब तनवीर के साथ दिल्ली में लगभग 20 साल तक ठाकुर राम मदन तथा लालूराम के साथ काम किया। इनका मानना है कि ब्रम्हानंद के भजन के साथ पहले की तरह नाचा देखने नहीं मिलता।

ykyjke lkg

ये बचपन में नाचा पार्टी में मंजीरा और धुंधरू बजाते थे। चरणदास चोर फिल्म में इनके अभिनय की प्रशंसा श्याम बेनेगल ने, मैसी साहब में सत्यजीत रे जान सटब बरो और अशोक कुमार ने भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

U;kf;dnkl ekfudiqjh

सन् 1940 के लगभग नाचा पार्टी में काम करना शुरू किया। इन्होंने सत्य कबीर लोक नाचा पाटी में काम किया। नाचा के कारण ही उनके गांव की प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैली है तथा पारिभ्रमिक भी मिलता है इसलिए वे खुश रहते है ऐसा उनका मानना है।

jkeyky fuelydj

अछोटा गांव के रामलाल को मदन निषाद से प्रेरणा मिली। ये गंगा जमुना नाचा पार्टी के अतिरिकत हबीब तनवीर के चरणदास चोर, मिट्टी की गाड़ी और

सोन सरार तथा में भी काम किया है। एक दर्जन टेलीविजन राजबब्बर एवं ए.के. हंगल उनके अभिनय को पसंद करते थे।

उपर्युक्त शीर्षस्त एवं रंगमर्मियों के अथक समर्पित प्रयास संरक्षण, संर्वधन एवं निरंतर कर्मशील बने रहना ही छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य कला विशेषकर नाचा को दूरस्थ क्षेत्र एवं विश्व स्तर पर लोकप्रिय बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

lanHkZ xzUFk

1. कालजयी नाटकों के निर्देशक, राजेन्द्र सोनबोइर, प्रशांत प्रिटिंग प्रेस दुर्ग
2. – वही –
3. – वही –, पृ. 169
4. – वही –
5. – वही –
6. कला तपस्वी की यात्रा का समग्र, राजेन्द्र सोन बोईर, प्रशांत प्रिंटिंग प्रेस
7. – वही –
8. शोध ग्रंथ, श्रद्धा चन्द्राकर
9. कालजयी नाटकों के निर्देशक, राजेन्द्र सोनबोइर, प्रशांत प्रिटिंग प्रेस दुर्ग
10. छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ. रमाशंकर शुक्ल, वैभव प्रकाशन, प्रशांत प्रिटिंग प्रेस, दुर्ग
11. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग,
12. लोकनाट्य परंपरा और प्रयोग, डॉ संतराम देशमुख, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली,
13. गम्मत, मंदराजी महोत्सव समिति का प्रकाशन, अजय कम्प्यूटर्स राजनांदगांव
14. – वही –
15. लोकमंच के पुरोधा, डॉ संतराम देशमुख, प्रयास प्रकाशन बिलासपुर
16. मेरे यशस्वी कलावंत पिता डॉ. भूधर चंद्राकर अगासदिया, 2008
17 कालजयी लोक नाट्यों के निर्देशक, रामहृदय तिवारी, दीपक चन्द्राकर, आर बी. प्रिंटर्स, दुर्ग

v/;k;&4

yksd ukV~; ukpk dk cnyrk Lo:i % n'kk ,oa fn'kk

v/;k;&4
NRrhlx<h ykd ukV; dk cnyrk Lo:i

छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य छत्तीसगढ़ के लोक जीवन के विषद एवं शसक्त अनुभूति है जनजीवन की हर अनुभूति कल्पना उसके सघर्ष, उल्लास और विजय की मुस्कान है। लोक नाट्य के माध्यम से उनका आक्रोश भी चूटिले व्यंग्य में निपटकर मुखर होता रहा है। छत्तीसगढ़ लोक नाट्य का अतित में क्या स्वरूप था यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य की कोई लिपिबद्ध पांडुलिपि खोज करनेपर भी सही नहीं मिलती। और यही कारण है कि इसका प्रादुर्भाव मानवीस सभ्यता और संस्कृति के साथ मानते हैं लेकिन 50–60 वर्षों में इसका स्वरूप और विकास पर दृष्टि डाले तो इसकी चर्चा की जा सकती है। उस समय जमीदारों और मालगुजारों की छत्रछाया में रात्री में लालटेन और दीये की रोशनी में गांव का जीवन जिया जाता था लोगों की आतुरता थी कि कहीं नाचा का आयोजन हो गांव का कोटवार गांव गांव में हांका पारकर प्रसारित कर देता था। आयोजन आज की तुलना में अधिक सादगी युक्त होता था। किन्तु दर्शकों भी भीड़ भरी होती थी। रातभर चिकारे की स्वर व तबले कील बोल के साथ गाते हुए कार्यक्रम होता था परिवर्तन इस सृष्टि का नियम है। जड़ से जीवन तक परिवर्तन जारी है व रहेगा जो इस परिवर्तन को स्वीकार नहीं करने वसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा जैसे लोक नाट्य रहस धीरे धीरे विलुप्ती के कगार पर है।

"नाचा" के प्रस्तुतीकरण में कुछ विशेष नियमों का कड़ाई से पालन अनिवार्य रूप से किया जाता था। गुरू–शिष्य परंपरा से विकसित हुए 'नाचा' के लिये यह आवश्यक भी था। सबसे पहले वादक गण सुर–ताल साधते थे। फिर प्रमुख नर्तक (नर्तकी के रूप में पुरूष) नेपथ्य से मंच पर प्रकट होता था। आते ही वह इस विश्वास के साथ वाद्य–यंत्रों को प्रणाम करता था कि वाद्य यंत्रों में विद्या की देवी माँ सरस्वती विराजित है, फिर गुरू वंदना करके सुर साधता हुआ गीत व नृत्य आंरभ करता था। नर्तकी वेष में यह पुरूष नर्तक मुख्य परी कहलाता था। पहला और दूसरा गीत क्रमशः माँ सरस्वती व श्री गणेश एवं गुरू वंदना ही होते थे। उसके बाद ब्रम्हानंद के भजनों की संगीतमय प्रस्तुति बड़े ही प्रभावशाली ढंग से की

जाती थी – "सरस्वती ने स्तर दिया कि गुरू ने दे दिया ज्ञान....., "जैसे गीतों के सधे हुए ताल छंदों में कलात्मक प्रस्तुतीकरण के बाद ब्रम्हानंद के भजन दर्शकों को मानों मुग्ध कर लेते थे। इसके बाद सर पर लोटा रखकर नाचते हुए एक यो दो पुरूष नर्तकों का नर्तकियों के रूप में क्रमशः आगमन होता था। इनके द्वारा ऐसे गीत गाये जाते थे, जिनसे बाद में प्रस्तुत किये जाने वाले प्रहसन का पूर्वानुमान लगाया जा सकता था।

'नाचा' के विशेष रूप से रेखांकित की जाने वाली बात यह थी कि प्रस्तुत किये जाने वाले गम्मत (प्रहसन) में नायक, खलनायक, नायिका, खलनायिका, विदूषक, चरित्र नायक सभी पात्र अपनी भूमिका विदूषकीय अंदाज में निभाते थे। अभिनय, संवाद, सब कुछ हास्य व व्यंग्य से सराबोर होते थे विदूषकीय अंदाज में नायक द्वारा अपनी भूमिका के गंभीर भाव को प्रस्तुत करने की कला सचमुच सुखद आश्र्च की अनुभूति कराती थी। दूसरी खासियत यह भी थी कि सार्वजनिक स्थलों पर प्रस्तुत गम्मतों में जिस निर्भीकता से कलाकार व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन विसंगतियों पर कटाक्ष करते थे, उसी दिलेरी व निर्भीकता से राजाओं, जमींदारों व मालगुजारों के प्रांगणों पर भी वे कला प्रस्तुत करने में हिचकिचाते नहीं थे। बालविवाह, दहेज, साहूकारों द्वारा शोषण, अंधविश्वास आदि पर गम्मत के माध्यम से ऐसा प्रभावशाली कटाक्ष किया जाता था कि उसका सीधा प्रभाव मन पर पड़ता था। यहाँ तक कि जिन सम्पन्न लोगों के बुलावे पर ये नाच मंडलियाँ आती थी, उनकी हो चारित्रिक कमजोरियों को सहज हास्य व्यंग्य के माध्यम से उजागर कर देने का साहस दिखाने में कलाकार नहीं चूकते थे। बदले में उन्हें मिलती थी दर्शको ंसे वाहवाही और आयोजनकर्त्ता से पुरस्कार। आज वह सब कहाँ! टब तो ''हमहू कहब जब ठकुर सुहाती" वाली बात रह गई है। मीडिया में छा जाने का आकर्षण, सरकारी अनुदान पाकर सरकारी भोंपू बनने की ललक व जनरूचि का नाम लेकर अश्लीलता परोसने की होड़ व एक–दूसरे की टाँग पकडत्रकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति कला की आत्मा को ही क्षत विक्षत कर रही है।

नाचा में ज्यादातर गांव के कलाकार होते हैं, जो अपनी साधना से नाचा को संवारते है। नाचा के पितामह मँदराजी दाऊ जैसे विराट व्यक्तित्व की छाया में तो

नाचा को जीवन मिल जाता है। समय–समय पर नाचा में संशोधन, परिवर्द्धन आदि मंडली के समीक्षकों की समीक्षा के बाद किये जाते हैं। नाचा के माध्यम से अंधविश्वासों व रूढ़ियों को समाप्त करने हेतु प्रयत्न किये जाते रहे हैं। इसके साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, ज्ञान–विज्ञान की बातों सहित मानवीय गुणों के विस्तार/प्रचार में नाचा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नाचा ने अपने कथानकों के माध्यम से शासन की अनेक कल्याणकारी योजनाओं को जनता तक पहुँचाया है, वहीं व्यवस्था में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने में वह पीछे नहीं रहा।

नाटक पटकथा, संवाद, गीत–संगीत व नृत्यों में छत्तीसगढ़ की मौलिकता, प्रमाणिकता, आत्मीयता, सहजता, जीवंतता को बरकरार रखना होगा। अंततः हमारी कृतियों में हमारी मिट्टि की खुशबू होनी ही चाहिए। प्रस्तुतियॉ अपनी समग्रता में हमारी 'अपनी' लगे। आयातित कृतियों की अप्रिय नकल न लगे। हम यदि चाहें तो, अपने परिवेशगत सामग्रियों के साथ भी 'माडर्न शैली' को अंगीकार कर सकते हैं, बशर्ते उसमें अपनी क्षेत्रीय निजता और मौलिकता हर हाल में बरकरार रहे। हर कृत शुद्ध छत्तीसगढ़ अवश्य लगे। 'प्रयोग' अवश्य किए जायें पर वह 'फैशन' न लगे और परंपराएं बोझ की तरह न लगें– इस बात पर बारीकी से ध्यान रखना हम सब के लिए जरूरी है। छत्तीसगढ़ की अस्मिता और यहां की विश्वविख्यात सांस्कृतिक गरिमा के संरक्षण के साथ–साथ उसमें और समयोचित निखार के लिए हमारे छत्तीसगढ़ हमारे छत्तीसगढ़ के शीर्षस्थ चिंतकों और विद्वत्तजनों को मार्गदर्शन के लिए सामने आना चाहिए।

वर्तमान संदर्भ में छत्तीसगढ़ के गांव में 'नाचा' की आकृति में विकृति हुई है और कुछ बदलाव में आये हैं, जिसके प्रमुख कारण टेलीविजन और वीडियों हैं। विकृति के कारण लोगों की रूचि गम्मत से हटने लगी है। आज कुछ ही नाचा मंडली अपनी छवि को सुरक्षित रख पाई है। लोकनाट्य, छत्तीसगढ़ का साहित्य कोष है। इसमें छत्तीसगढ़ की धरोहर पुरानी संस्कृति लोकनाट्य के पूर्व रूप में मिलती है। लोकनाट्य परम्परा अत्यंत प्राचीन है। अभिनय मनुष्य का कलात्मक वैभव है जो साहित्यिक विधा में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है। 'काव्येषु हैं। छत्तीसगढ़ अंचल के कला–साहित्य की अनेक विधाओं में से एक विधा लोकनाट्य है।

नाचा में गम्मत का विशेष महत्व है। गम्मत एक तरह का प्रहसन है, जिसके द्वारा ग्राम्य जीवन के यथार्थ को हास्य–व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। विदूषकों की वेश–भूषा, उनकी वाक्पटुता, गीत और ''नाच'' का अद्भूत संयोजन पार्श्व–संगीत के साथ चलता है। नाचा, अपनी मौलिक प्रस्तुति में लोक–जीवन के विविध रंगों का, सतरंगी मोहक वातावरण का सृजन करने वाली अनूठी विधा है। छत्तीसगढ़ की यह अनमोल विधा अब स्मृति–शेष होती जा रही है। उसकी मौलिकता, सरलता, ठेठ ग्रामीण महक पर आज व्यावसायिकता और बौद्धिक हस्तक्षेप हावी होता जा रहा है। 'नाचा' के मैनेजर, निर्देशक, कलाकार तब आज की तरह साहित्यिक ज्ञान से सराबोर नहीं थी।

आज से लगभग चार दशक पूर्व तक छत्तीसगढ़ की लोकनाट्य परम्परा विचलन का शिकार हो रही थी। उसमें कई विकृतियाँ पनप आयी थी। 'नाचा' के पितामह स्व. मंदराजी दाऊ जी ने नाचा के जिस पारम्परिक स्वरूप का विकास किया था उसमें अब सिनेमाई धूल जमा हो जाने से वह विदूप लगने लगा था। ऐसे में कुछ बुद्धिजीवियों एवं संगीतकारों के अपार श्रम से कुछ एक ऐसे लोक सांस्कृतिक मंचों का गठन हुआ जिनसे लोकतत्वों के सहज विकास की संभावनाएँ खुलीं। लोग अपनी परम्पराओं, अपने अंचल के मधुर गीत–संगीत की सहजता और मोहकता की आरे आकर्षित हुये और उनमें अपनी संस्कृति के प्रति गौरव–भाव उदित हुआ। इसके पश्चात् इन क्रांतिकारी मंचों की तर्ज पर सैकड़ों लोग सांस्कृतिक संस्थायें गठित हुई और आज भी गठित होती जा रही है। परन्तु, यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इन ढेर की ढेर संस्थाओं द्वारा क्या किसी वैचारिक क्रांति की स्थापना अथवा सामाजिक जागरण के उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हो रही है?

लोकरंजन का यह सशक्त माध्यम प्रचार का मोहताज नहीं था। नाचा के स्वरूप में तब माटी की सोंधी महक थी। उसमें बनावटीपन नहीं था। वह सही अर्थो में मौलिक, जीवंत और सरल था। कलाकारों की भाषा उनके अहसास की गहराइयों से जीवन के विविध रंगों को अपने मुहावरों में व्यक्त करती थी। भोगा हुआ यथार्थ ही गम्मत में साकार होता था, जिसमें झाँकती थी लोकजीवन की सच्चाइयाँ। शैली हास्य–व्यंग्य की, भंगिमाएँ अतिरंजित पर यथार्थपरक, देवर–भाभी की ठिठोली,

ससुर–बहू का मर्यादित संवाद, घरजँवाई की हास्यास्पद स्थिति, ग्राम बालाओं की निजी बातें, सूदखोर बनिये की ज्यादती, नशे की लत और उसका दृष्परिणाम, बेटी की बिदाई, गरीबी की समस्यायें–ग्राम्य जीवन की अनेक परतें मंच पर संवादों, अभिनय, गीत, गम्मत, नाचा के माध्यम से साकार होती।

नाचा का अभ्युदय छत्तीसगढ़ अंचल में कब हुआ इसका कोई लिखित व प्रमाणिक अभिलेख मिल पाना संभव नहीं है। अनुमान के आधार पर ही उसके प्रादुर्भाव के विषय में कुछ कहा जा सकता है। सन् 1944 में नाचा का आनंद लेने का अलग ही महत्व था अब और तब के नाचा में बहुत अंतर आ गया है। अब अश्लीलला आने लगी है। तात्पर्य यह है कि सन् 1944 से कि पूर्व नाचा में नाम मात्र की भी अश्लीलता नहीं थी, भले ही भाषा या संवाद में अनगढ़ शब्दों का प्रयोग होता रहा हो। हम आज प्रस्तुत हो रहे छत्तीसगढ़ी नाचा के बदले हुए रूप के साथ यदि उसके पुराने रूप की तुलना करें तो कह सकते हैं कि तब का नाचा कुम्हार के हाथों बड़ी साधना से बना माटी का पवित्र दीपक था और आज का नाचा विद्युतीय छटा की चकाचौंध है जिसमें कृत्रिमता की चमक तो है पर आत्मा की पवित्रता के दर्शन नहीं होते। छत्तीसगढ़ अंचल के जनजीवन को अभिव्यक्त करने वाले इस सशक्त माध्यम में निरंतर आ रही विकृतियाँ व व्यवसायिकता का चिंता का विषय है। जागरूक व ईमानदार कलाकारों से इसके प्रति कुछ ठोस कदम उठाने की अपेक्षा है।[1]

"नाचा" के प्रस्तुतीकरण में कुछ विशेष नियमों का कड़ाई से पालन अनिवार्य रूप से किया जाता था। गुरू–शिष्य परंपरा से विकसित हुए 'नाचा' के लिये यह आवश्यक भी था। सबसे पहले वादक गण सुर–ताल साधते थे। फिर प्रमुख नर्तक (नर्तकी के रूप में पुरूष) नेपथ्य से मंच पर प्रकट होता था। आते ही वह इस विश्वास के साथ वाद्य–यंत्रों को प्रणाम करता था कि वाद्य यंत्रों में विद्या की देवी माँ सरस्वती विराजित है, फिर गुरू वंदना करके सुर साधता हुआ गीत व नृत्य आंरभ करता था। नर्तकी वेष में यह पुरूष नर्तक मुख्य परी कहलाता था। पहला और दूसरा गीत क्रमशः माँ सरस्वती व श्री गणेश एवं गुरू वंदना ही होते थे। उसके बाद ब्रम्हानंद के भजनों की संगीतमय प्रस्तुति बड़े ही प्रभावशाली ढंग से की

जाती थी – "सरस्वती ने स्तर दिया कि गुरू ने दे दिया ज्ञान....., "जैसे गीतों के सधे हुए ताल छंदों में कलात्मक प्रस्तुतीकरण के बाद ब्रम्हानंद के भजन दर्शकों को मानों मुग्ध कर लेते थे। इसके बाद सर पर लोटा रखकर नाचते हुए एक यो दो पुरूष नर्तकों का नर्तकियों के रूप में क्रमशः आगमन होता था। इनके द्वारा ऐसे गीत गाये जाते थे, जिनसे बाद में प्रस्तुत किये जाने वाले प्रहसन का पूर्वानुमान लगाया जा सकता था।

'नाचा' के विशेष रूप से रेखांकित की जाने वाली बात यह थी कि प्रस्तुत किये जाने वाले गम्मत (प्रहसन) में नायक, खलनायक, नायिका, खलनायिका, विदूषक, चरित्र नायक सभी पात्र अपनी भूमिका विदूषकीय अंदाज में निभाते थे। अभिनय, संवाद, सब कुछ हास्य व व्यंग्य से सराबोर होते थे विदूषकीय अंदाज में नायक द्वारा अपनी भूमिका के गंभीर भाव को प्रस्तुत करने की कला सचमुच सुखद आश्र्च की अनुभूति कराती थी। दूसरी खासियत यह भी थी कि सार्वजनिक स्थलों पर प्रस्तुत गम्मतों में जिस निर्भीकता से कलाकार व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन विसंगतियों पर कटाक्ष करते थे, उसी दिलेरी व निर्भीकता से राजाओं, जमींदारों व मालगुजारों के प्रांगणों पर भी वे कला प्रस्तुत करने में हिचकिचाते नहीं थे। बालविवाह, दहेज, साहूकारों द्वारा शोषण, अंधविश्वास आदि पर गम्मत के माध्यम से ऐसा प्रभावशाली कटाक्ष किया जाता था कि उसका सीधा प्रभाव मन पर पड़ता था। यहाँ तक कि जिन सम्पन्न लोगों के बुलावे पर ये नाच मंडलियाँ आती थी, उनकी हो चारित्रिक कमजोरियों को सहज हास्य व्यंग्य के माध्यम से उजागर कर देने का साहस दिखाने में कलाकार नहीं चूकते थे। बदले में उन्हें मिलती थी दर्शको ंसे वाहवाही और आयोजनकर्त्ता से पुरस्कार। आज वह सब कहाँ! टब तो ''हमहू कहब जब ठकुर सुहाती" वाली बात रह गई है। मीडिया में छा जाने का आकर्षण, सरकारी अनुदान पाकर सरकारी भोंपू बनने की ललक व जनरूचि का नाम लेकर अश्लीलता परोसने की होड़ व एक–दूसरे की टाँग पकडत्रकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति कला की आत्मा को ही क्षत विक्षत कर रही है। उफ अब क्या होगा?[2]

भौतिकता की चकाचौंध से आज सामाजिक जीवन तनावग्रस्त हो उठा है। उसे शांति और स्थिरता की आवश्यकता है। पश्चिमी सभ्यता के धुएँ से आँखें मुँदी

जा रही हैं। हर तरफ प्रदूषण फैला हुआ है। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति सभी धूमिल होती जा रही है। क्या गाँव, क्या शहर सभी इसकी चपेट में है। इसने युवाओं को अपनी जड़ों से ही काट दिया है। सुवा–ददरिया की मधुर–शीतल–कर्णप्रिय धुने आज के युवा के मन को रससिक्त नहीं करतीं, मेडोना और बाबा सहगल का तेज–कर्कश–कानफोडू संगीत ही उन्हें रास आता है। उधार की इस संस्कृति के तार दूर तक फैले हैं। मन, मस्तिष्क और आत्मा तीनों ही इस कृत्रिमता से आच्छादित हैं। उन्हें शांति और स्थिरता की आवश्यकता है। आज शहरी जीवनबोध भारतीयता की गंध नहीं दे पा रहा है। समाज को तलाश है एक भारतीय जीवनस्पंदन की जो अपनी शैली में एक देशी छुवन दे। इस स्थिति में हमें ग्रामधारा की ओर ही मुड़ना पड़ता है। भारतीय–संस्कृति के ये अजस्त्र स्त्रोत हमारे गांव और वहाँ की लोककला ही आज की संभावना है। ऐसे में जरूरत है, समाज के इस कला के प्रति दायित्वबोध की, रचनाशील जीवनदृष्टि की तथा लोककला के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना की।

लोक संगीत भारतीय लोक जीवन की भावना के अत्यधिक निकट है। इसमें किसी भी प्रकार की संवेदना को वहन करने की पूर्ण क्षमता है। इस स्तर पर किसी भी संदेश को गहराई तक पहुँचाया जा सकता है। लोक संगीत राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के संप्रेषण का सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार लोककला–परम्परा की जीवित रखना आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिए।

आज संपूर्ण छत्तीसगढ़ अंचल में कुछ एक सांस्कृतिक मंच ऐसे हैं जो कुछ निश्चित उद्देश्यों को लेकर अपनी सार्थक प्रस्तुति देते हैं शेष लोक मंच जो जाए दिन कुकुरमुतों की मानिंद उत्पन्न हो रहे हैं, मात्र मनोरंजन के उद्देश्य की पूर्ति ही कर रहे हैं और वह भी सस्ता मनोरंजन। ये मंच अपने नाम कुछ इस तरह रखते हैं जिससे दर्शक और आयोजक को प्रसिद्ध सांस्कृतिक मंचों का धोखा हो, पर इन कार्यक्रमों में मात्र फूहड़ श्रृंगारिकता का ही प्रदर्शन देखने मिलता है। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि इन विकृत प्रदर्शनों से समाज में जो विदूपता फैल रही है, उसका दोषी कौन है? ये लोक सांस्कृतिक मंच, जो इन फूहड़ प्रदर्शनों से सस्ती लोकप्रियता और पैसा कमाने का धंधा कर रहे हैं? या वे दर्शक जो ऐसे कार्यक्रमों

के विरूद्ध कोई आवाज न उठा कर इन्हें शांति से झेल रहे हैं? या फिर, वे आयोजक जो कार्यक्रमों के स्तर से भली–भांति परिचित होने के बावजूद इन्हें आयोजित कर इन्हें बढ़ावा देते हैं?[3]

आज के तनावपूर्ण जीवन में शांति का प्रवाह तभी होगा जब ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत किए जायें जिनमें नकलीपन का अभाव हो और लोक जीवन की यथार्थ–झांकी मुखरित हो। इन कार्यक्रमों में पारंपरिक लोकतत्वों की प्रचुरता भी आवश्यक है। साथ ही श्रृंगारिकता का मर्यादित प्रदर्शन वांछित है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो यह हमारी पारंपरिक विरासत, हमारी लोक संस्कृति के विकास में बाधक एक घातक कदम होगा।

अब समय आ गया है जब कला की मौलिकता पहचानी जायेगी। सारे संचार उपक्रमों के बाद भी आदमी का जीवन उदास हो गया है और यही स्थिति है जब लोक, कला, लोकगीत, लोक संगीत और लोक कलाकार मनुष्य को आशा की किरणें दिखा सकते हैं। पुनः एक बार नाचा के पुनरूथान का समय आ गया है। ईमानदार कलाकार समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझें और समाज सुधार और देश की प्रेम की भावना लेकर लोककला फिर से गली–गली और चौपाल पर आये तो कोई कारण नहीं कि जनता उन्हें सर आंखों पर न बिठायेगी।

नाचा के माध्यम से अंधविश्वासों व रूढ़ियों को समाप्त करने हेतु प्रयत्न किये जाते रहे हैं। इसके साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, ज्ञान–विज्ञान की बातों सहित मानवीय गुणों के विस्तार/प्रचार में नाचा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नाचा ने अपने कथानकों के माध्यम से शासन की अनेक कल्याणकारी योजनाओं को जनता तक पहुँचाया है, वहीं व्यवस्था में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने में वह पीछे नहीं रहा।

दशा और दिशा के संबंध में हबीब तनवीर जी का कहना है "छत्तीसगढ़ की नाट्य परंपराओं में आज भी विपुल संभावनायें छिपी हुई है लोक जीवन से उपजे इन सांस्कृतिक धरोहर को फिर से जनमानस के सामने प्रस्तुत किया जाना जरूरी है। आवश्यकता इस बात की है कि लोक कला का पुर्नसृजन करते समय वहाँ की माटी से जुड़े नाटकार उस परम्परागत रचना को अपनी जीवन दृष्टि, अपनी

अन्वेषीय सत्य और अनुभूति को अधिकाधिक प्रमाणिकता के साथ नये संदर्भो में जोड़कर प्रस्तुत करें। उसे गहरी जानकारी द्वारा व्यापक परिवेश में हृदसस्पर्शी बनाये रखे ंतभी इनकी पुनः प्राण प्रतिष्ठा की जा सकती है परन्तु ऐसा करते समय आडम्बर और अंध विश्वास की परतों को हटाना बहुत जरूरी है।"[4]

n'kk ,oa fn'kk % lekt o ljdkj dk nkf;Ro

छत्तीसगढ़ी लोक मंच के संबद्ध कलाकारों की स्थितियाँ भी कमोबेश नहीं है जो अन्य लोक भाषायी क्षेत्र के कलाकारों की है। जिस प्रकार पानी के अभाव में हर फसल को थोड़ा अधिक पानी चाहिए तो किसी को कुद कम लेकिन पानी के बिना तो सब कुछ सूना ही लगता है ऐसे ही देश भर के सभी लोक मंचीय कलाकारों की दुर्दशा प्रायः एक जैसी जी है।

चूंकि ये कलाकार, क्षेत्रीय या आंचलिक सांस्कृतिक जागरण के जीते जागते प्रतीक होते हे, क्षेत्र के वाचाल चारण होते है, कलात्मक हलचल के प्रमाण होते है अतएव इनके प्रति समाज व सरकार को ध्यन देना जरूरी ही नहीं, अनिवार्य है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर के चर्चित कलाकार श्री गोविन्दराम निर्मलकर इस कथन के स्पष्ट प्रमाण है जिन्होंने अपने बाल्यपन से गम्मत–नाचा के श्रेष्ठ कलाकार कहलाकर विश्व भर में अपनी अभिनय कला से लोगों को चमत्कृत कर आए। श्री मदन निषाद को देख्ते–सुनते, खुद एकलव्य की तरह और श्री मदन निषाद को द्रोणाचार्य की तरह मान्यता देते हुए नकल करते गए, एक्टिंग सीखते गए और फिर श्री हबीब तनवीर की संस्था नया थियेटर में श्री मदन निषाद के द्वारा अभिनीत चरित्रों को ही मंचों पर (श्री मदन की दिल्ली से वापसी के बाद) सालों तक प्रदर्शित करते और शाबासी पाते रहे। किन्तु विशेष लाभान्वित नहीं हुए।

चूंकि छत्तीसगढ़ी कलाकार अभावों में पलते, बढ़ते, खपते और मर जाते है अतएव उनके प्रति समाज के उदारमना लोगों और केन्द्र तथा राजय की सरकारों को मन में दर्द उठाना चाहिए और संरक्षण प्रदान करने, सुविधाएँ देने की उदारवादी कार्य योजनाओं को मूर्तरूप में लागू करना चाहिए। सरकार को ऐसे कलाकारों को राज्याश्रय प्रदान करना चाहिए जो वृद्धावस्था में अभाव की जिंदगी जीते हुए, गरीबी

के कुचक्र में फंसे हुए, दवाओं के अभाव में रोगों से लड़ते हुए न मर ही पा रहे है और न ही ठीक से जी पा रहे है। मकान, भोजन और कपड़े जैसी मूल आवश्यकता के लिए भी जो तरस रहे है ऐसे कला के पुजारियों को अच्छी हालात में रखना, सबका सामाजिक और सांस्कृतिक दायित्व है।

श्री लालूराम साहू जैसे विश्व प्रसिद्ध कलाकार के जीवन के अंतिम पंद्रह वर्ष अत्यधिक कष्टप्रद स्थिति में बीते थे। दुर्ग के रसमड़ा नामक छोटे से गांव में एक छोटा साथ झोपड़ा बनाकर पत्नी और छोटे–छोटे बच्चों के साि रहते हुए, मिट्टी–ईट के बने हुए छोटे से चूल्हे पर चाय, बिस्किट, ब्रेड बेचकर, फटी–पुरानी एक लुंगी पहने हुए वे जीवन को जीना था अतएव अपना फर्ज अदा कर रहे थे। अभावग्रस्त, दो जुन के भोजन के लिए तरसते लालूरामजी जैसे मंच के अनेक कलाकार आज उपेक्षित पड़े हुए है।[5]

ऐसे कलाकारों के लिए आजीविका की व्यवस्था की जाए। असहाय, बेसहारा और रोगग्रस्त लोगों के लिए निवास, भोजन की व्यवस्था करके अच्छी चिकित्सा की व्यवस्था की जाए। कलाकारों को पेंशन प्रदान किए जाएं। कलाकारों के प्रशिक्षण के लिए सरकारी व्यवस्था हो और कला मंडलियों तथा कलाकारों को नियमित रूप से प्रदर्शन देने के सुयोग प्रदान किए जाएं ताकि उन्हें जीवन व्यापन के लिए आर्थिक निर्भरता प्राप्त हो सके।

दुर्भाग्य है लोक संस्कृतिक, लोक कला और लोक मंच का कि सिनेमा और टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यम से दमखम के साथ उन्हें ललकार है और अपनी सर्वसुलभ व्याप्ति के कारण लोक संगीत, लोक नृत्य और लोक नाट्य जैसी प्रस्तुतियों को अपनी दानवाकृति के समक्ष बौना सिद्ध करने के लिए आमादा हे। अब अच्छे से अच्छे गम्मत–नाचा, पंडवानी, चनैनी, पंथी, करमा, राऊत, नाचा, भरथरी, छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य को देखने के लिए नगरों, कस्बों की तो छोडिए, छोटे–छोटे गांवों में भी ऐसे लोग नहीं आते जिनके पास टी.वी. है और उनमें उस समय कोई लड़क–भड़क वाली फिल्म आ रही होती है, फिल्मी गीतों का कोई नाच–गाने से भरपूर कार्यक्रम आ रहा होता है, क्रिकेट कमेन्ट्री या कुछ धारावाहिक कार्यक्रम आ रहे होते हैं।

लोक मंचों के प्रति इस उपेक्षा भाव के कारण अब अच्छे छत्तीसगढ़ी कार्यक्रम बुलाए नहीं जाते फलतः कलाकारों और कला मंडलियों में निराशा व्याप्त हो रही है और कई कलाकार और नई मंडलियाँ हताश होकर अब मंचों से दूर हो गई है।

विविध रूपों में छत्तीसगढ़ी लोक मंचों से संबंधित होना यह चाहिए कि जो भी सामग्री है उस पर शोध, उसके आडियों–वीडियों कैसेट तैयार करके उसे सुरक्षित रखने, वाद्य यंत्रों के नमूने, उनके फोटोग्राफ्स, रेखाचित्र और निर्माण की सामग्री, विधियाँ, छत्तीसगढ़ी आभूषणों के नमूने, नाम, फोटोग्राफ, रेखाचित्र, वेशभूषा के कपड़े, खानपान, कलेवा के बाबत् पूरी जानकारी, सभी पर्व त्यौहारों, उत्सव, मेले–मंडई, संस्कार आदि अवसरों के गीत, पारंपरकि लोकगीत, लोक धुन, लोक नृत्य सजावट आदि की सब सामग्रियों को संरक्षित करके रखा जाना अधिक जरूरी प्रतीत होता है।

^jgl^ d: ylr gku: d: vklkj

ऐसा दिखलाई देता है कि अब 'रहस' के प्रति आम जनता में वह ललक नहीं रही जो किसी भी प्रस्तुति के लिए अत्यधिक जरूरी है। अब 'रहस' के आयोजन से लोग जी चुराने लगे है। चूंकि यह खर्चीला आयोजन है और किसी अकेले व्यक्ति के लिए आयोजन का भार सम्हाल पाना मुश्किल का काम है अतएव इसकी गिनी–चुनी जो मंडलियाँ है वे भी हताशा की स्थिति में दिखलाई देती है और जो 'रहस' से जुड़े हुए अनेक गांवों के कलाकार है लेकिन वे भी साल भर में मात्र एक दो प्रदर्शन देकर ही अपने साज–सामान के रख रखाव, पूर्वाभ्यास के लिए इकट्ठा होने पर आने वाले खर्च आदि की समुचित व्यवस्था न हो पाने के कारण बंद होने के कगार पर है।

आखिर ऐसा क्यों हो रहा है, यह भी चिंतन का विषय है। नाचा एवं पंडवानी का आकर्षण, रहस की तुलना में अब भी बना हुआ है। लेकिन आज रहस लुप्तप्राय होने के कगार पर क्यों पहुँच गया है। जिसे शासन का प्रोत्साहन एवं जनता की अभिरूचि व प्रयास से जिवित रखा जा सकता है।

सन् 1970 का दशक छत्तीसगढ़ी लोकमंच के इतिहास से सदैव बड़े आदर से रेखांकित किया जावेगा। वह छत्तीसगढ़ी लोक–नाट्य को अजर–अमर कर देने वाले दशक के रूप में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

लोकनाट्य से संबद्ध रंगकमियों को चाहिए ि कवे ऐसी प्रस्तुतियाँ पुनः दे जो धमाकेदार हो और स्थायित्व प्राप्त करें। बहुत बड़े बैनर, बड़े ताम–झाम भारी भीड़–भाड़ के भले ना हो लेकिन नाम लेवा तो हो। इसी प्रकार गम्मत–नाचा की भी अच्छी मंडलियों की भी आवश्यता है जो रिक्त स्थानों को भरें। गम्मत–नाचा की पुरानी पीढ़ी में से कई समर्थ लोग इक्कसवीं सदी के आते–आते धरा मंच से ही अपने रोल की समाप्ति के बाद सदा–सदा के लिए नेपथ्य में चले गए। ऐसों की थाती को सम्हालकर रखने की जिम्मेदारी सम्हालने वाले लोककला सेवियों को आगे आना चाहिए।[6]

vk/kfudrk dk lidV

आधुनिकता युग में अप्रत्याशित वैज्ञानिक प्रगति के कारण अत्यधिक परिवर्तन सभी ओर हुए है। औद्योगीकरण के बढ़ते चरण के साथ तालमेल बिठा पाने में हमारे लोक जीवन से गहराई से जुड़े लोगों को बड़ी तकलीफों का सामना करना पड़ रहा है। छत्तीसगढ़ में भी औद्योगिक क्रांति का जबर्दस्त प्रभाव रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर, बस्तर, कोरबा और सरगुजा जिलों के अनेक महत्वपूर्ण भूभाग में पड़ा है। हरित क्रांति में रमने वाले किसानों के खेत–खार, गांव आदि अधिग्रहित कर लिए गए और उन स्थानों में बड़े–बड़े कल कारखाने, खदान आदि के कार्य होने लगे।

fLFkfr e lq/kkj&Lo tkxfr t:jh

छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों को अपनी आर्थिक और अन्य स्थितियों में सुधार के लिए स्वतः जागरूक होना होगा। वे लोक कलाकार है, यह एक विशिष्ट पहचान है, एक उल्लेखनीय गुण है लेकिन वे एक जिम्मेदार पारिवारिक सदस्य भी है, एक सद् गृहस्थ भी है इसे उन्हें नहीं भूलना चाहिए।

पश्चिमी संस्कृति के हमले से तमाम मर्यादाएँ छिन्न–भिन्न होती जा रही हैं। भारतीय संस्कृति व लोक संस्कृति को समान रूप से खतरा उत्पन्न हो गया हे।

दुश्य, श्रव्य तथा मुद्रण माध्यम अश्लीलता को बढ़ावा देते जा रहे हैं। उन परिस्थितियों में हमारी लोक अस्मिता को बचाने का एक ही माध्यम रह जाता है वह है नाचा।

सिनेमाई रूचि ने हमारे स्वाद को इस तरह विकृत कर दिया है कि हर वस्तु अयथार्थ और अतिनाटकीय लगने लगी है। यदि लोक–कार्यक्रमों की सुरूचिपूर्ण प्रस्तुति हो और उन्हें पर्याप्त सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की जावे तो वे जीवनबोध तो देंगे ही, साथ ही एक विशिष्ट अपनत्व की भावना का जागरण भी होगा।

आशा है कि बेहतर दिन और बेहतर भविष्य अवश्य आवेगा और उपेक्षित समझने जाने वाले छत्तीसगढ़ी लोक कलाकार, सरकार और समाज से प्राप्तव्य आदर, सम्मान पायेंगे और अपनी दुर्दशा से मुक्ति भी पायेंगे।

I inHk xFk

1. लोकनाट्य परंपरा एवं प्रयोग, डॉ. संतराम विमल, निरज बुक सेंटर दिल्ली
2. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य, नंद किशोर शर्मा, लोकाक्षर प्रकाशन, बिलासपुर
3. छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य एवं रंग कर्म, उषा वैरागकर आठने, श्री प्रकाशन दुर्ग
4. हबीब तनीवीर का रंग संसार, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन दुर्ग, पृ. 167
5. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य में शास्त्रीय तत्व, शोध ग्रंथ डॉ. शैलजा चन्द्राकर
6. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य में शास्त्रीय तत्व, शोध ग्रंथ डॉ. शैलजा चन्द्राकर

v/;k;&5

ykdukV~; ls tqM+s egRoiw.kZ O;fDr;ksa ls lk{kkRdkj

5-1 Jh jkeân;] frokjh] MkW- 'kSyt k pnzkdj] jtuh jtd] nhid pUnzkdj vt;Unk dk yksdjax ,oa laLej.k

5-2 yksd ukV~; ls lnfHkkr QksVksxzkQ

v/;k;&5

ykdukV~; ls tqM+s egRoiw.kZ O;fDr;ksa ls lk{kkRdkj

Jh jkeân;] frokjh

01

शोध विषय : 'छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य – दुर्ग जिला के विशेष संदर्भ में'

डॉक्टर प्रतिमा मिश्रा द्वारा श्री रामहृदय तिवारी जी से साक्षात्कार

प्रश्न 1 : छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य की दशा एवं दिशा के संबंध में आपके अनुभव व विचार क्या है ?

टीप : इस प्रश्न का उत्तर, प्रश्न 2 के उत्तर के साथ ही दिया गया है संक्षेप में। कृपया देखिए।

प्रश्न 2 : वर्तमान परिवेश में 'नाचा' लोकनाट्य के प्रदर्शन पर किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?

उत्तर : वर्तमान परिवेश में लोकनाट्य नाचा प्रदर्शन के मूल आकर्षण को सबसे ज्यादा क्षति पहुँचाने में जिन माध्यमों की प्रमुख भूमिकाएं हैं – उनमें स्मार्ट मोबाइल, टी.व्ही., सिनेमा और शिक्षा तथा संस्थाओं की बहुआयामी शक्तियाँ। नाचा के दर्शक अमूमन कम होते जा रहे हैं। आयोजक नहीं मिलते – न गाँवों में न शहरों में। साँस्कृतिक संस्थाओं के फैलाव के चलते नाचा पार्टियाँ निर्बल होती जा रही हैं। नाचा की अब पहले जैसी शान और माँग नहीं रही, यह एक अफसोस जनक तथ्य है। नाचा के कलाकार अब दूसरे काम धंधों की ओर पलायन करने विवश हैं। नाचा अब प्रायः लुप्तप्राय की सी स्थिति में पहुँचने के कगार पर है। नाचा विधा अब केवल मुख्यरूप से शोधार्थियों के ही काम की चीज रह गई है। पी.एच.डी. करने वाले लोग ही अब नाचा की आत्मा और उसके विभिन्न स्वरूपों की, उसके अन्य विविध आयामों की तलाश में जुटे रहते हैं। <u>प्रतिमा जी, आपने जो अपने पहले प्रश्न में नाचा की दशा और दिशा पर जो प्रश्न पूछा है, उसका उत्तर भी यही है जो मैंने ऊपर दिया है। ग्रामीण कलाकार अब नाचा से जुड़ने में अब पहले जैसी दिलचस्पी नहीं दिखाते। शोधार्थियों को छोड़कर अब नाचा को याद करने वाला, उसकी चर्चा करने वाला या उनकी दशा पर चिंता करने वाला अथवा उसे दिशा बताने वाला बौद्धिक वर्ग नगण्य है। यह एक दुखद स्थिति है।</u>

प्रश्न 3 : छत्तीसगढ़ी नाटक एवं छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य में क्या अंतर है ?

उत्तर : सबसे बड़ा अंतर तो यह है कि छत्तीसगढ़ी नाटक में अनिवार्य रूप से निर्देशक होता है मगर छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य में निर्देशक नामक निर्दिष्ट जीव अनुपस्थित रहता है। अर्थात् लोकनाट्य में कोई एक घोषित निर्देशक नहीं होता। लोकनाट्य प्रस्तुतियों की संरचना दक्ष ग्रामीण कलाकारों की परस्पर साझेदारी, परस्पर सुझाव या आपसी सलाह पर निर्भर होती है। वैसे लोकनाट्य में 'हारमोनियम मास्टर' की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। अमूमन छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य या नाचा पार्टी का वही मुखिया होता है। लोकनाट्य की प्रस्तुतियों में या संरचना में हारमोनियम मास्टर के सुझाव या सलाह प्रायः सर्व स्वीकार्य होते हैं। लोकनाट्यों में कलाकारों की 'प्रत्युत्पन्नमति' अंग्रेजी में जिसे 'इम्प्रोवाइजेशन' कहते हैं, उसका सबसे ज्यादा महत्व होता है। स्पष्ट है, लोकनाट्य के सारे क्रियाकलाप परंपरागत ही निर्धारित होते हैं। हालाँकि प्रयोग लोकनाट्यों में भी हुआ करते हैं, मगर वह सायास नहीं बल्कि समयानुसार सहज स्वाभाविक स्वपरिवर्तन के रूप में। लोकनाट्यों में कलाकारों की वेशभूषा, चालढाल, प्रस्तुति का ढंग, ज्यादातर पारंपरिक ही होते हैं। दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी नाटक में निर्देशक सुशिक्षित होने के कारण, अपनी सोच समझ और अपनी सृजनात्मक कल्पना के अनुसार ही समूची प्रस्तुति की शैली व स्वरूप निर्धारित

करता है। वह प्रयोगों का पक्षधर होता है, नाटक के हर पक्ष में। अतएव छत्तीसगढ़ी नाटक की प्रस्तुतियों के परंपरागत विषय भी थोड़ा अलग, थोड़ा हटकर दिखाए जाते हैं। मैंने अपनी छत्तीसगढ़ी नाटकों में चाहे वह 'लोरिक चंदा' हो, 'कारी' हो, 'घर कहाँ है' हो, 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' हो या मेरी कोई भी छत्तीसगढ़ी नाटक की प्रस्तुति हो, सबकी शैलियों में हर बार भिन्नता थी, सब लगभग प्रयोगात्मक थीं। हालाँकि छत्तीसगढ़ी नाटक में भी संवाद, गीत नृत्य, परिवेश, वेशभूषा, प्रॉपर्टी आदि अमूमन सब विषयानुकूल छत्तीसगढ़ी ही होते हैं। मगर छत्तीसगढ़ी नाटक की प्रस्तुतिगत प्रकृति में कहीं ना कहीं हिंदी नाटकों की छाप दिखाई दे ही जाती है। छत्तीसगढ़ी नाटक में आमतौर पर निर्देशक के साथ साथ कुछ कलाकार भी शिक्षित व शहरी होते हैं। छत्तीसगढ़ी नाटकों के प्रदर्शन की समय सीमा 2-3 घंटे या अधिकतम 4 घंटे की होती है। जबकि लोकनाट्य रात रात भर चलने वाली विधा है। ग्रामीण दर्शक भी उसी हिसाब से लोकनाट्य देखने आते हैं। रात भर देखने की मानसिक तैयारी के साथ।

प्रश्न 4 : छत्तीसगढ़ी के पारंपरिक लोकनाट्यों के संरक्षण सँवर्धन एवं उसे जीवंत बनाए रखने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

उत्तर : इस प्रश्न का अत्यंत सार संक्षेप में मेरा उत्तर एवं सुझाव यही है कि छत्तीसगढ़ के पारंपरिक लोकनाट्यों के स्वरूपों और उनकी शैलीगत परंपराओं के संरक्षण, सँवर्धन और उन्हें जीवंत बनाए रखने के लिए उनमें अनिवार्यतः समयानुकूल, सार्थक प्रयोग होते रहना चाहिए, मगर ये प्रयोग फैशन के बतौर कदापि नहीं, वरन् उसी सीमा तक हों जैसे सब्जियों में नमक और हल्दी का प्रयोग हम करते हैं। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों की आत्मा की रक्षा करते हुए ये प्रयोग होते रहना चाहिए। जरूरी है यह कीमती सूत्र याद रखना 'प्रयोग' फैशन न बने, 'परंपराएं' बोझ न लगने पाए।' तभी हम छ.ग. के पारंपरिक लोकनाट्यों को संरक्षित, सँवर्धित और जीवंत बनाए रख सकते हैं।

प्रश्न 5 : आपने कहा है कि लोकनाट्य जनजीवन के दर्पण होते हैं फिर भी लोकनाट्य शिक्षित व शहरी जीवन में चर्चित क्यों नहीं हो सके?

उत्तर : इसका मुख्यतः कारण यही है कि अधिकांश शहरी जीवन वाले लोग इस मनोग्रंथि से या गलतफहमी से अभी भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके हैं कि लोकनाट्य अशिक्षतों की, देहाती गँवारों की अनगढ़ मंचीय प्रस्तुतियाँ हैं। ऐसी देहाती गवाँरू प्रस्तुतियों से जुड़ना या देखना शिक्षित, शहरी लोग अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। लेकिन शत-प्रतिशत शहरी जीवन ऐसा नहीं सोचता। शहर में रहने वाले अशिक्षित या अर्धशिक्षित ग्रामीणों की संख्या भी काफी होती है। ये लोग बराबर गहरी दिलचस्पी के साथ पर्याप्त रुचि लेते हुए लोकनाट्यों को देखने जाते हैं। मगर छत्तीसगढ़ी नाटक कहे जाने वाली मंचीय प्रस्तुतियों के साथ ऐसी बात नहीं है। शिक्षित शहरी लोगों के साथ-साथ ग्रामीण जनजीवन दोनों वर्ग के लोग छत्तीसगढ़ी नाटकों को पूरी दिलचस्पी से देखते हैं और बहुत पसंद करते हैं। उनकी समीक्षा भी करते हैं। यह मेरा निजी अनुभव रहा है। 'लोरिक चंदा', 'घर कहाँ है', 'कारी' और 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' जैसी अनेक छत्तीसगढ़ी नाट्य प्रस्तुतियाँ इस बात की साक्षी हैं।

प्रश्न 6 : आपने तो छत्तीसगढ़ की संस्कृति की पहचान बनाने एवं बचाने का सक्रिय प्रयास किया ही है। किंतु और ऐसे कौन से व्यक्ति हैं जो इस अभिप्राय से तत्परता एवं निष्ठा से कार्य कर रहे हैं। युवा वर्ग में ऐसा कौन सा नाम हो सकता है, जो पूरे मनोयोग से इस दिशा में प्रयासरत है या रहा है?

उत्तर : सबसे पहले तो विश्वविख्यात नाम हैं - पंडवानी गायिका पद्म विभूषण श्रीमती तीजन बाई, पंथी नृत्य नर्तक देवदास जी बंजारे एवं नाट्य निर्देशक श्री हबीब तनवीर जी। इनके अतिरिक्त बहुत से लोग व नाम हैं जो छत्तीसगढ़ी संस्कृति के सँवर्धन, संरक्षण व पहचान बचाने की दिशा में जुटे हैं। लिस्ट बहुत लंबी है परंतु कुछ प्रमुख नाम तो मैं गिना ही सकता हूँ। उनमें पंडवानी गायक द्वय झाड़ूराम देवांगन, पूनाराम निषाद, भरथरी गायिका सूरुज बाई खांडे, नाचा कलाकार झुमुकदास, नियायिक दास, लोकरंग संचालक दीपक चंद्राकर, दूध मोंगरा वाले पीसी लाल यादव, अनुराग धारा वाली कविता वासनिक, लोकछाया से छाया चंद्राकर, चिन्हारी वाले ममता एवं प्रेम चंद्राकर, रंग झरोखा के दुष्यंत हरमुख, रंग सरोवर वाले भूपेंद्र साहू, मिथलेश साहू, निर्मला ठाकुर, लहर गंगा से पुराणिक साहू, सतीश साहू के अतिरिक्त विव्दत् नामों में डॉ. परदेसी राम वर्मा, महावीर अग्रवाल, डीपी देशमुख, दुर्गा प्रसाद पारकर, महेश वर्मा, नारायण चंद्राकर, रजनी रजक, लोक मंजरी के तरुण निषाद तथा छत्तीसगढ़ी सांस्कृतिक जगत के दो-तीन बहुत बड़े नामों में चंदैनी गोंदा वाले दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख, सोनहा बिहान वाले दाऊ श्री महासिंह चन्द्राकर (दोनों अब स्वर्गीय हैं) एवं हरेली वाले श्री लक्ष्मण चंद्राकर जी।

प्रश्न 7 : हिंदी नाटकों के निर्देशन एवं छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य के निर्देशन में प्रमुख अंतर क्या है? आपने दोनों में ही कार्य किया है। आप से बेहतर अन्य कोई भी इस भेद को नहीं व्यक्त कर सकता।

उत्तर : दोनों विधाओं के निर्देशन में प्रमुख अंतर की जहाँ तक बात है, इसके पहले मैं बता दूँ दोनों विधाओं के निर्देशक को हिंदी, छत्तीसगढ़ी दोनों ही भाषाओं की, साँस्कृतिक स्वरूपों की, पर्व और परंपराओं की, रीति-रिवाजों की, तीज त्योहारों और रहन-सहन की सम्यक और गहरी जानकारी होनी ही चाहिए, तभी कोई भी निर्देशक दोनों नाट्य विधाओं का निर्देशन सफलतापूर्वक कर सकता है। अन्यथा नहीं। यह संयोग मेरे साथ जुड़ा रहा है। हिंदी में एम.ए. किया। हिंदी नाटकों के व्याकरण का गहन अध्ययन, फॉर्मेट का सूक्ष्मता से अवलोकन किया। गहन पड़ताल की। उसी तरह छत्तीसगढ़ के मैदानी इलाके में प्रचलित सभी प्रदर्शनकारी लोकमंचीय विधाओं से भी मैं बचपन से ही भलीभाँति परिचित था। मूलतः छत्तीसगढ़िया होने के नाते छत्तीसगढ़ी बोली भाषा का, उसे बोलने, बोलवाने की समझ मुझमें शुरू से ही रही। लिहाजा छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य प्रस्तुतियों में मैं वांछित व प्रासंगिक लोकशैलियों का प्रभावी प्रयोग सफलतापूर्वक कर सका। मेरी खुशकिस्मती या कहें प्रभु कृपा कि मुझे हिंदी नाटकों के साथ-साथ छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों में भी भरपूर सफलता एवं प्रशंसाएं मिलीं। चूंकि मैं पूर्व से ही हिंदी नाटकों के निर्देशक के रूप में लोगों के बीच भलीभाँति परिचित था, इसलिए भी छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों के प्रस्तोतागण के साथ-साथ कलाकारों ने भी मुझे भरपूर प्रेम, आदर और सम्मान दिया। इन सबके लिए मैं उन सबका आभार मानता हूँ। अगर मैं मूलतः छत्तीसगढ़िया नहीं होता तो छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों को निर्देशित करने की बात मैं सोच भी नहीं सकता था, और न ही मुझे छत्तीसगढ़ी साँस्कृतिक क्षेत्र के दिग्गजों जिनमें दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख, दाऊ श्री महासिंह चन्द्राकर, दाऊ श्री दीपक चन्द्राकर आदि शामिल हैं, इन सबने शायद ही मुझे ससम्मान 'लोरिक चंदा', 'कारी', 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' जैसे कई चर्चित लोकमंचीय प्रस्तुतियों के निर्देशन के लिए इस तरह सुअवसर दिए होते।

प्रश्न 8 : आपके द्वारा लिखित व निर्देशित नाटिका 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' मैं आप अपने कौन से संदेशों को या विचारों को आम जनता तक विशेष रूप से पहुँचाना चाहते हैं?

उत्तर : नाटिका 'मैं छत्तीसगढ़ महतारी हूँ' के क्लाइमेक्स में छत्तीसगढ़ महतारी अपने युवा छत्तीसगढ़िया बेटों का आकुल आव्हान करती है और मार्मिक स्वरों में कहती है 'मेरे बेटो, उठो जागो ! नए राज्य के रूप में तुम्हारे वर्षों के स्वप्न ने आकार लिया है। वक्त ने नई अंगड़ाई ली है। अब नया गंतव्य, नई मंजिल तुम्हारे सामने है। नई राहें बाहें फैलाए तुम्हें पुकारती हैं। नया इतिहास दस्तकें दे रहा है तुम्हारे द्वार पर। उठो मेरे बेटो और चल पड़ो अपने गंतव्य की ओर, हिम्मत के साथ, ताकत के साथ, नई शक्ति और नये स्वाभिमान के साथ।' आगे महतारी अपना स्वर बदलकर कहती है 'अब मुझे तुम्हारी अर्चना, आराधना, पूजा और प्रार्थना नहीं वरन् तुम्हारा शौर्य चाहिए, तुम्हारी शक्ति और पराक्रम चाहिए। महिमा का गान नहीं, जागरण का शंखनाद चाहिए, नयी सर्जना, नये श्रम, नये स्वाभिमान का तूर्यनाद चाहिए।' 'मेरे मासूम छत्तीसगढ़िया बेटो, दिनकर जी की यह बात सदा याद रखना -

'सहनशीलता, क्षमा, दया को तभी पूजना जग है, बल का दर्प चमकता पीछे, जब जगमग जगमग है।'

प्रतिमा मिश्रा जी, मेरी इस नाट्यरचना के लेखन एवं निर्देशन के पीछे मुख्यतः मेरे यही विचार, यही संदेश थे, जो छत्तीसगढ़ महतारी के माध्यम से मैं अपने छत्तीसगढ़ी भाई-बहिनों तक पहुँचाना चाहता था। केवल आधा घंटे की अवधि वाली इस प्रेरक नाटिका को संपूर्ण छत्तीसगढ़ भर के मुख्य मुख्य जगहों में अत्यंत सफलता के साथ प्रदर्शित किया गया था। हमारे देश के तात्कालीन महामहिम राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष के अतिरिक्त केंद्रीय मंत्री जी, ये सब हमारे राज्यपाल जी के सभागार में देख चुके हैं और प्रशंसा कर चुके हैं। और सबसे बड़ी बात इस नाटिका को आम दर्शकों ने भी खूब पसंद किया था।

प्रश्न 9 : अतीत और वर्तमान के लोकनाट्य के परिदृश्य में क्या अंतर है?

उत्तर : बहुत अंतर है और यह अंतर अनिवार्य है, अपरिहार्य है। सहज स्वाभाविक है और समय की माँग भी है। आप भी जानती हैं, नदी की धारा की तरह, समय का प्रवाह अपने साथ सब कुछ बहा ले जाता है। सृष्टि का अनिवार्य नियम है परिवर्तन। हर चीज अस्थायी और परिवर्तनशील है। जहाँ तक जानकारी मिलती है, लोकनाट्य के अतीत और वर्तमान के परिदृश्यों में बहुत अंतर, बहुत परिवर्तन आ चुका है। एक समय था जब लोकनाट्य में मशाल की रोशनी का ही सहारा था। माइक की व्यवस्था का तो सवाल ही नहीं उठता। फिर पेट्रोमैक्स की रोशनी लोकनाट्यों का सहारा बनी। आज उसी लोकनाट्य में हैलोजन या आधुनिकतम लाइटों का प्रवेश हो चुका है। पहले लोकनाट्य में सीमित वाद्य थे, जिनमें केवल चिकारा, हारमोनियम, तबला और मंजीरा ही हुआ करते थे, जिन्हें कलाकार खड़े-खड़े ही बजाया करते थे। इसीलिये उन दिनों छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य को 'खड़े साज' भी कहा जाता था। आज उन वाद्यों के अतिरिक्त ढोलक, बैंजो, घुंगरू, ड्रम, एकार्डियन और भी अन्य आधुनिक वाद्य शामिल हो गए हैं। पहले जमीन का कोई भी टुकड़ा और चार बाँस के सहारे बँधे कपड़े यही उनका मंच हुआ करता था। तब न परदे थे न पखवाइयाँ थीं। इसी मंच के पीछे बाजवट हुआ करता था, जिसमें कलाकार बीच-बीच में बैठा करते थे। पहले गीत संगीत के नाम पर ब्रह्मानंद के भजनों का ही सहारा था। आज उनकी जगह कई लोकधुनों और फिल्मी धुनों पर बने सजे-धजे गीतों पर नृत्य और अभिनय होते हैं। पहले मेकअप सामग्रियों के नाम पर काजल, छुही, हल्दी, नीला थोथा, मुरदारशंख जैसी ग्रामीण सुलभ सामग्रियाँ हुआ करती थीं। आज नाचा के कलाकार मेकअप की आधुनिक साधन सामग्रियों का प्रयोग करते हैं। आज लोकनाट्यों की विषय-वस्तु के साथ-साथ कलाकारों की वेशभूषा भावभंगिमाओं में, अंग संचालनों में भी भारी तब्दीली आ चुकी है। इनके दर्शक पहले केवल ग्रामीणजन ही हुआ करते थे। अब कुछ शहरी शिक्षित समुदाय भी जुड़ चुका है। भले ही शोध सामग्री

के संचालन के ही निमित्त क्यों न हो। इस तरह कल और आज के लोकनाट्यों के परिदृश्यों में समयानुकूल बहुत परिवर्तन दिखाई देते हैं। ये सब परिवर्तन नितांत स्वाभाविक और अपरिहार्य हैं। आप चाहकर भी इन परिवर्तनों को रोक नहीं सकते और न रोका जाना चाहिए।

प्रश्न 10 : छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य 'लोरिक चंदा' में प्रयुक्त 'आपरेटा' शैली की क्या विशेषताएँ है? कहते किसे हैं? स्वरूप क्या होता है?

उत्तर : 'ओपेरा' OPERA अंग्रेजी शब्द का हिंदी रूपांतरण है - गीत संगीत युक्त नाट्यों की प्रस्तुतियाँ। 'ओपेरा' शब्द से 'आपरेटा' बना है, जिसका हिंदी शाब्दिक अर्थ है - छोटे-छोटे गीत संगीत युक्त नाट्य प्रस्तुति। पाश्चात्य देशों के साँस्कृतिक क्षेत्रों में बहुप्रचलित ये दोनों मंचीय शैलियों के शब्दार्थ, उसकी पहचान और विशेषताएँ लगभग एक समान हैं। इन्हीं विशेषताओं के तहत 'लोरिक चंदा' की पूरी मंचीय प्रस्तुति 'आपरेटा' शैली में संगुफित और सुसज्जित की गई थी, जिसे लोगों ने खूब पसंद किया। इस शैली के बारे में मैंने पढ़ा भी था और विदेशी टी.व्ही. कार्यक्रमों में कई बार देखा भी था।

प्रश्न 11 : दाऊ महासिंह, श्री रामचंद्र देशमुख, प्रेम साइमन, हबीब तनवीर एवं लक्ष्मण चंद्राकर के साथ आपके कुछ विशेष यादगार पल जिन्हें आप भूल नहीं सकते, कौन से हैं? लोकनाट्य के क्षेत्र में इन सभी का क्या योगदान है?

उत्तर : दाऊ श्री महासिंह चन्द्राकर की साँस्कृतिक संस्था 'सोनहा बिहान' के उदय के बहुत पहले से ही दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख की प्रसिद्ध साँस्कृतिक संस्था 'चंदैनी गोंदा' का जन्म छत्तीसगढ़ के साँस्कृतिक गगन में हो चुका था और चतुर्दिक सुविख्यात हो चुका था। श्री महासिंह जी चंद्राकर ने मुझे 'लोरिक चंदा' का निर्देशन भार सौंपा। 'लोरिक चंदा' के सम्मोहन से आकृष्ट होकर दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख जी ने आग्रह पूर्वक मुझे 'कारी' लोकनाट्य के निर्देशन की जिम्मेदारी सौंपी। श्री प्रेम साइमन मूलतः स्क्रीप्ट राइटर थे। 'लोरिक चंदा', 'कारी', 'घर कहाँ है' जैसे कई छत्तीसगढ़ी नाटकों की स्क्रिप्ट श्री साइमन ने ही लिखी। पहले वे ख्यातिलब्ध हिंदी नाटकों के स्क्रिप्ट राइटर थे। साइमन जी की लिखी 95% हिंदी तथा छत्तीसगढ़ी नाटकों के निर्देशन का सुयोग मुझे मिला। श्री हबीब तनवीर 'नया थियेटर' नाट्य संस्था के संचालक एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के जाने-माने निर्देशक थे। उनसे मेरी दो-तीन ही मुलाकातें हुई थीं। पहली बार तब, जब 'लोरिक चंदा' का ग्रैंड रिहर्सल देखने वे ग्राम मतवारी पहुँचे थे। जहाँ तक श्री लक्ष्मण चन्द्राकर जी से सम्बंध का सवाल है, लक्ष्मण जी मेरे पहले हिंदी नाटक 'अंधेरे के उस पार' और मेरी पहली वीडियो फिल्म 'संधिवेला' में महत्वपूर्ण किरदार निभा चुके थे। मुख्यतः लक्ष्मण चन्द्राकर जी ने ही मुझे 'लोरिक चंदा' प्रोजेक्ट से जोड़ा और मुझे 'लोरिक चंदा' के निर्देशक बनने पर ज्यादा जोर दिया। लक्ष्मण जी स्वयं एक टेली फिल्म 'हरेली' का सफल निर्देशक कर चुके हैं। बाद में इसी विषय पर बनी 'सँवरी' नामक टेली फिल्म का निर्देशन उसने मुझसे करवाया। आज लक्ष्मण चन्द्राकर जी के साथ मेरे पारिवारिक सम्बंध हैं। प्रतिमा जी, अब आपका सवाल है - उन सबके साथ कुछ यादगार पलों का, तो उन सबको लिखूँ तो कई पन्ने भरजाएंगे। अतः फिलहाल इस पर कुछ भी नहीं लिख सकने के लिए आपसे क्षमा प्रार्थी हूँ। हालाँकि इन सबके साथ कई यादगार पल जुड़े हैं, जिन्हें मैं भूल नहीं सकता हूँ। लेकिन इस सवाल का जवाब फिर कभी दूँगा। अभी संभव नहीं है।

प्रश्न 12 : 'कारी' एवं 'लोरिक चंदा' की निर्देशनावधि में आपका ऐसा विश्वास एवं आभास था कि वे दोनों इतने सफल, लोकप्रिय एवं मंत्रमुग्ध करने वाली लोक मंचीय प्रस्तुतियाँ होंगी?

उत्तर : नहीं था। हाँ कुछ कुछ आभास मन में जरूर होता था। मगर विश्वास नहीं था कि ये दोनों इस हद तक प्रभावी और सफल प्रस्तुतियाँ सिद्ध होंगी। उसकी वजह ये थी कि लोकमंचीय जगत में प्रवेश करने और इतने बड़े-बड़े लोकनाट्यों को निर्देशित करने का मेरा प्रारंभिक और नया दौर था। ईमानदारी से कहूँ तो भीतर से मैं मानसिक तौर पर भयभीत या कहूँ आशंकित भी था। क्योंकि इन दोनों लोकनाट्यों के समृद्ध निर्माताओं ने इन प्रस्तुतियों पर मुक्त हस्त से खर्च किया था। जाहिर है उनकी बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ थीं, उम्मीदें थीं मुझसे। लिहाजा मैंने भी अपनी ओर से निर्देशक के रूप में अपनी पूरी ताकत लगा दी थीं। इन दोनों लोकनाट्यों को मैंने अलग-अलग शैली और अंदाज में संगुंफित किया था। दोनों में मैंने कई नए नए शिल्पगत प्रयोग किये थे। एक पंक्ति में कहूँ तो मैंने इन दोनों 'प्रोजेक्टों' में अपने आप को पूरी तरह झोंक दिया था। परिणाम हुआ वही जो प्रभु की इच्छा थी। दोनों प्रस्तुतियों के क्रमिक प्रथम प्रदर्शनों की सफलताओं ने, हर वर्ग के दर्शकों से मिलने वाली प्रतिक्रियाओं, अनवरत मिलने वाली बधाइयों ने मुझे ही नहीं, हम सबको सुखद आश्चर्य से भर दिया। यह निश्चित ही ईश्वरीय कृपा का ही चमत्कार है, ऐसा मैं मानता हूँ। इन प्रस्तुतियों पर समीक्षकों ने, पत्रकारों ने, कलमकारों ने खूब लिखा। पत्र-पत्रिकाओं में खूब कव्हरेज मिला, इन सबका अपना अलग-अलग सुखद इतिहास है। पुनः सिद्ध हुआ कि ईमानदारी, निष्ठा, लगन और निःस्वार्थ भाव से किया गया श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। इन दोनों प्रस्तुतियों की अपूर्व सफलताओं ने मुझे अलग तरह का आत्मविश्वास दिया। आंतरिक निर्भीकता दी। परिणामतः मेरी भावी सृजनात्मक राहें प्रशस्त और सुगम होती गईं। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ी लोक साँस्कृतिक क्षेत्र में मैं लंबे समय तक कुछ सार्थक करने में समर्थ हो सका।

प्रश्न 13 : 'कारी' एवं 'लोरिक चंदा' के निर्देशन के में आप पूर्णरुप से स्वतंत्र थे?

उत्तर : 100% स्वतंत्र था। स्वतंत्रता की शर्त पर ही मैंने इन नाटकों का निर्देशन भार स्वीकार किया था। सबसे पहले मैंने 'लोरिक चंदा' का निर्देशन किया। इस नाटक के निर्माता थे दाऊ श्री महासिंह चन्द्राकर और कार्यकारी निर्माता थे श्री लक्ष्मण चन्द्राकर। 'लोरिक चंदा' के बाद फिर 'कारी' को निर्देशित करने का संयोग बना। इन लोकनाट्यों से जुड़ने के पहले मैं क्षितिज रंग शिविर के बैनर पर हिंदी नाटकों के लगातार निर्देशन में व्यस्त था। 'लोरिक चंदा' और 'कारी' से जुड़ने के पीछे अलग-अलग किस्म के दिलचस्प कारण रहे हैं। विस्तार से यहाँ लिखा नहीं जा सकता। 'कारी' के निर्माता थे दाऊ श्री रामचंद्र देशमुख। इन दोनों निर्माता दाऊओं से मेरी एकमात्र शर्त थी, निर्देशकीय कार्यों में मुझे पूरी स्वतंत्रता। हस्तक्षेप कतई नहीं। दोनों ने मेरी शर्त को सहर्ष स्वीकार किया और अपने वादों को उन्होंने पूरा निभाया। वैसे भी प्रतिमा जी, आपकी जानकारी के लिए बता दूँ, इन्हीं लोकनाट्यों की बात नहीं है, अपने किसी भी निर्देशकीय कर्म में कभी भी किसी का हस्तक्षेप या दखलअंदाजी न स्वीकार किया, न बर्दाश्त किया और न कभी किसी ने मेरे साथ ऐसा करने की कोशिश की।

प्रश्न 14 : आपने लोकनाट्य को ही अपना कार्यक्षेत्र क्यों बनाया? या क्यों चुना?

उत्तर : स्वयं मैंने अपनी ओर से लोकनाट्य को ही अपना कार्यक्षेत्र नहीं बनाया। बल्कि परिस्थितिजन्य घटनाक्रमों ने या कहूँ नियति ने अथवा संयोगों ने मुझे इस क्षेत्र को अपनाने के लिए विवश कर दिया। हुआ ये कि 'सोनहा

बिहान' के संचालक दाऊ श्री महासिंह चन्द्राकर के भतीजे श्री लक्ष्मण चन्द्राकर को सुप्रसिद्ध छत्तीसगढ़ी लोकगाथा 'लोरिक चंदा' विषय पर एक लोकमंचीय प्रस्तुति तैयार करवाने की तीव्र इच्छा थी। यह उनका ड्रीम प्रोजेक्ट था। इस मंशा को लेकर वे मुझसे मिले। उन दिनों मैं 'क्षितिज रंग शिविर' के बैनर पर हिंदी नाटकों के लगातार निर्देशन और मंचनों में व्यस्त था। लक्ष्मण चन्द्राकर जी से मेरी मित्रता पहले से ही थी। मेरी मदद से प्रेम साइमन जी ने, लक्ष्मण जी के लिए 'लोरिक चंदा' पर एक शानदार स्क्रीप्ट छत्तीसगढ़ी में लिखकर दी। वह स्क्रीप्ट हम सबको पसंद आई। अब इस स्क्रीप्ट की प्रस्तुति के लिए निर्देशक के चुनाव की बारी आई। हमने जिन्हें निर्देशक बनाना चाहा, उन्होंने हाथ खड़े कर दिए। दूसरे शख्स ने भी अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। इधर दूसरी तरफ कलाकारों की चयन की प्रक्रिया पूरी हो गई थी। कॉस्ट्यूम्स के साथ-साथ आवश्यक सामग्रियों की खरीदी में काफी पैसे खर्च हो चुके थे। रिहर्सल की जगह और तारीख भी तय हो चुकी थी। मगर एक के बाद एक, दोनों महाशयों द्वारा क्रमशः निर्देशन में असमर्थता व्यक्त कर दिए जाने की स्थिति में, एक बड़ा संकट था 'निर्देशक' कौन बने? किसे बनाया जाये? इस मुद्दे पर आपातकालीन बैठक हुई और विचार-विमर्श के बाद अंततः काफी अनुनय विनय करके, आग्रहपूर्वक निर्देशन की जिम्मेदारी मुझे सौंपने के साथ 'लोरिक चंदा' की स्क्रीप्ट मुझे सौंप दी गई। विवशता के साथ मुझे यह जिम्मेदारी स्वीकार करनी पड़ी। मैंने इस मंचीय प्रोजेक्ट पर अपनी सारी ताकतें लगा दीं। इसका प्रथम भव्य प्रदर्शन नेहरू हाउस ऑफ कल्चर, सेक्टर 1, भिलाई नगर में संपन्न हुआ। खूब सफलता के साथ प्रशंसाएँ मिली। न्यूज पेपरों में तारीफों के पुल बाँधे गये। नई दिल्ली दूरदर्शन से बुलाया आया। टेलीप्ले के रूप में 'लोरिक चंदा' दिल्ली दूरदर्शन से तीन तीन बार टेलीकास्ट हुआ। दूरदर्शन के प्रारंभिक 25 वर्षों के सर्वोत्तम टेलीप्ले की प्रस्तुति श्रृंखला में 'लोरिक चंदा' को भी शामिल किया गया। इसी के बाद दाऊ रामचंद्र जी ने मुझे साग्रह 'कारी' के निर्देशन का भार सौंपा। चार-पाँच सालों तक 'कारी' के प्रदर्शनों में संलग्न रहने के बाद ही श्री दीपक चन्द्राकर जी के 'लोकरंग अरजुन्दा' के संपर्क में आया। 'लोकरंग अरजुन्दा' के बैनर पर कई कई लोकनाट्य-नाटिकाएं, एलबम, फिल्मों के निर्देशन में मेरा मन ऐसा रमा कि छत्तीसगढ़ी लोकमंचीय संसार से मेरा निकलना मुश्किल हो गया और मैं उसी क्षेत्र का हो गया। इतनी लंबी चौड़ी भूमिका बाँधने का मतलब यह था कि प्रतिमा जी कि आपको स्पष्ट कर सकूँ कि मैंने स्वेच्छा से लोकमंचीय जगत में प्रवेश नहीं किया वरन् शायद नियति ने ही मेरे लिए यही मार्ग मुकर्रर कर रखा था। लोकमंचीय जगत ने अपने स्नेह बंधन में ऐसा जकड़ लिया कि मैं अंततः वहाँ से चाहकर भी निकल नहीं सका। आज मुझे उस लोकमंचीय संसार ने इतना प्रेम, आदर, सम्मान, यश और प्रतिष्ठा दिलाई जिसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। लोकमंचीय संसार का मैं तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ।

प्रश्न 15 : छत्तीसगढ़ के कुछ ऐसे कलाकार है जो प्रतिभाशाली हैं एवं क्षेत्र में अभिरुचि रखने के बावजूद उभर नहीं सके, इसका कारण क्या है?

उत्तर : मेरी अपनी दृष्टि में, इसके एक नहीं, कई कारण हैं। मगर सबसे प्रमुख कारण है, किसी का भी किसी भी कला विधा में प्रतिभाशाली होना या उसमें अभिरुचि रखना पर्याप्त नहीं है, बल्कि विधा विशेष के प्रति गहरी निष्ठा, निष्ठा के साथ निरंतरता, समर्पण एवं जुनून का होना अनिवार्य है। इन तत्वों में से किसी के भी अभाव में कलाकार वहाँ नहीं पहुँच पाता, जहाँ वह पहुँच सकता था। या उसे पहुँचना चाहिए था। उदाहरण के तौर पर किसी का नाम मैं यहाँ नहीं देना चाहता। एक सबसे बड़ी बात और है प्रतिमा जी, कोई माने न माने पर मैं मानता हूँ भाग्य की भूमिका। लोकप्रियता, नाम, यश, प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए तमाम शर्तों की मौजूदगी के बावजूद कलाकार में

खुद का भाग्य प्रबल होना चाहिए। यह आवश्यक है। क्योंकि अंततः भाग्य, हमारे आपके बोये कर्मों का ही प्रतिफलन है। ऐसा मैं मानता हूँ। परमात्मा की कृपा भी उसी पर होती है जो सत्कर्मों की राह पर चलता है। यह अंधश्रद्धा नहीं, प्रमाणिक तथ्य और सत्य है। यह वैज्ञानिक निष्कर्ष भी हैं।

प्रश्न 16 : आप अपनी मंचीय प्रस्तुतियों में किस बात का अधिक ध्यान रखते हैं?

उत्तर : सार्थकता का, अर्थवत्ता का, दर्शकों की ग्राह्यता का। अपना आशय और स्पष्ट किये दे रहा हूँ। मैं अपनी तमाम मंचीय प्रस्तुतियों में सबसे अधिक ध्यान रखता हूँ 'कथ्य' का। केवल मनोरंजन के लिए मंचन पर, और मंचन ही नहीं, किसी भी अभिव्यक्तिक विधा पर मनोरंजन मेरी कभी प्राथमिकता नहीं रही। मेरा ध्यान और जोर सदैव इस बात पर रहा है कि मैं आखिर कहना 'क्या' चाहता हूँ। 'क्यों' कहना चाहता हूँ, 'किन के लिए' कहना चाहता हूँ और 'किस अंदाज' या 'शैली' से कह रहा हूँ ताकि मेरा कथ्य दर्शकों के दिलो-दिमाग तक प्रभावी ढंग से पहुँच सके। बस इन्हीं मुख्य बातों का ध्यान मैंने अपनी सारी मंचीय प्रस्तुतियों में दिया है और प्रभु की कृपा से अपनी प्रत्येक कोशिश में मैं सफल रहा हूँ। अपनी प्रत्येक सार्थक प्रस्तुति के माध्यम से जन जागरण की दिशा में मैं भी सहयोगी बन सकूँ, यही मेरी सबसे प्रबल साध रही है और प्रभु कृपा से मेरी यह साध पूरी होती भी रही है।

प्रश्न 17 : पारंपरिक लोकनाट्य की श्रेणी में प्रमुखतः छत्तीसगढ़ के कौन से लोकनाट्य आते हैं?

उत्तर : लोकगीत संगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य और लोकनाट्य में सर्वाधिक लोकप्रियता लोकनाट्य-नाचा गम्मत को ही प्राप्त है। लोकनाट्य उस त्रिवेणी की तरह है जहाँ पहुँचकर दर्शन और स्नान करने से अलग ही तरह के आंतरिक आनंद की अनुभूति होती है। लोकनाट्य के सम्बंध में ब.व. कारन्त जी का विचार है 'लोकनाट्यों के पीछे कोई शास्त्रीय योजना नहीं होती। वह लोकमानस का पारंपरिक मंचीय प्रतिबिंब है। लोकनाट्य कर्म में वैयक्तिकता नहीं, सामूहिकता होती है। लोकनाट्य का सीधा सादा अर्थ है कि वह लोगों के साथ रहा है और लोगों के साथ ही रहेगा। लोकनाट्य सबसे अधिक प्रचलित विधा है क्योंकि इसमें लोक गीत-संगीत, लोकनृत्य, गम्मत इत्यादि सब समाहित रहते हैं। इसलिए दर्शक इन सबकी सरसता का एक साथ ही आनंद उठा लेता है।' जैसा कि आपने अपने प्रश्न में पूछा है, छत्तीसगढ़ के प्रमुख लोकनाट्यों में नाचा, गम्मत, रहस, पंडवानी ये सब मैदानी इलाकों में खूब प्रचलित हैं। बस्तर जैसे बेल्ट में प्रसिद्ध और सर्वाधिक प्रचलित लोकनाट्य विधा को 'भतरा नाट' के नाम से जाना जाता है।

प्रश्न 18 : 'पंडवानी' लोकगाथा को कुछ लेखकों ने छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य के अंतर्गत रखते हैं, क्या आप इससे सहमत हैं?

उत्तर : निश्चित ही सहमत हूँ। पंडवानी लोकमंचीय प्रदर्शनकारी कलाओं की श्रेणी में रखी जाती है और रखी जानी भी चाहिए। महाभारत के प्रचलित लोकगाथाओं के कलाकार, चाहे स्त्री हो या पुरुष, अपनी अपनी प्रतिभा के अनुसार एक पात्रीय अनुभव (मोनोप्ले) की तरह साजिन्दों के साथ लोकमंच पर अवतरित होते हैं और नयनाभिराम ढँग से अपने गायन और अभिनय से दर्शकों को मुग्ध करते हैं। श्रीमती तीजनबाई, श्री झाड़ूराम देवांगन, श्री पूनाराम निषाद - ये तीनों तो छत्तीसगढ़ के विश्वस्तरीय जाने-माने पंडवानी कलाकार रहे हैं। कई राष्ट्रीय अलंकरणों से अलंकृत श्रीमती तीजन बाई की पंडवानी तो आज भी देश विदेशों में खूब लोकप्रिय है और माँग है। यह तो आप भी जानती हैं।

प्रश्न 19 : इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के चारों ओर फैले चकाचौंधकारी प्रभाव में लोकमंचीय कलाएं जीवित रह पायेंगी? आपके अपने अनुभव एवं चिंतन के आधार पर आपका क्या कहना है?

उत्तर : इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के चारों ओर फैले चकाचौंधकारी प्रभाव में लोकमंचीय कलाएँ आज भी जीवित हैं, शान से, पूरी प्रभावोत्पादकता, अर्थवत्ता और आकर्षण के साथ जीवित हैं। हाँ नाचा गम्मत को जरूर क्षति पहुँचायी है, आज के माहौल ने। बाकी आज भी छत्तीसगढ़ी लोकमंचीय प्रदर्शनकारी कलागत संस्थाएं अनगिनत संख्या में कार्यरत हैं। आयोजकों में उनकी माँग भी पहले से अधिक ही हुई है, कम नहीं। उनके दर्शकों की संख्या भी पहले से बढ़ी ही है, घटी नहीं है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की प्रचुरता के बावजूद लोकमंचीय प्रदर्शनकारी कलाओं की अक्षुण्णता के कई कारण हैं, मगर सबसे बड़ा कारण जो मुझे लगता है, लोकमंचीय साँस्कृतिक संस्थाओं का अपनी जमीन, अपनी धरती, अपनी माटी से गहरा जुड़ाव है। यह जुड़ाव हर क्षेत्र, हर वर्ग के दर्शकों को अमूमन खींचता ही है। हर आदमी जो अपनी माटी से जुड़ा है, अपनी धरती से प्यार करता है, वह लोकमंचों के आकर्षण से बच नहीं पाता। लोकमंचीय कलाएँ उन्हें अलग तरह का आत्मीय आनंद और तृप्ति देती हैं। यह मेरा अवलोकन के आधार पर निष्कर्षतः अनुभव है।

प्रश्न 20 : नाटक लेखन एवं निर्देशन में दोनों में से ज्यादा वजन किसका होता है, जो उसे लोकप्रिय एवं प्रभावशाली बनाता है?

उत्तर : मेरी अपनी दृष्टि में लोक नाट्य लेखन एवं नाट्य निर्देशन, दोनों सर्जनात्मक कर्म एक दूसरे के सम्पूरक, सम्प्रेरक एवं सहयोगी होते हैं। दोनों की आपसी श्रेष्ठतर सहभागिता और तालमेल से ही नाट्यकला मंच पर अवतरित होती है। दोनों एक दूसरे के बगैर अधूरे हैं। नींव या आधार तो नाट्य लेखन ही होता है और उस नींव पर ही शानदार, चमकदार, आकर्षक नाट्य मीनार निर्देशक अपनी कूबत से गढ़ पाता है। लेखन, लेखक का कल्पना जन्य सृजनात्मक आयाम है। निर्देशक के हाथ में 'नाट्य स्क्रीप्ट' आते ही उसे मंचीय धरातल पर अनेकानेक मोर्चों से निर्देशक को जूझना पड़ता है। अनेक चुनौतियों का सामना उसे करना पड़ता है। सफलता के लिए उसे खुद के भीतर के सारे सृजनात्मक कौशल को दाँव पर लगाना पड़ता है। इसीलिये समुद्री जहाज के कप्तान की तरह ही नाट्य निर्देशक भी अपने मंचीय जहाज का कप्तान कहलाता है। इस दृष्टि से देखें और सोचें तो तुलनात्मक रूप से ज्यादा वजन तो निर्देशक का ही हो सकता है। बावजूद इसके कुल मिलाकर यह कहा ही जा सकता है कि नाट्य लेखन का शिल्प सौष्टव जब आले दर्जे का हो, उससे भी ज्यादा आला दर्जे के कल्पनाशील और प्रतिभा संपन्न निर्देशक के हाथों से वह नाटक मंच पर परवान चढ़े, तभी नाटक प्रभावशाली, आकर्षक बनता है और खूब लोकप्रियता अर्जित करता है।

प्रश्न 21 : लोक संस्कृति के संरक्षण एवं सँवर्धन में शासन की संस्कृति विभाग की भूमिका के संबंध में आपके क्या विचार है?

उत्तर : ऊपरोक्त प्रश्न के प्रत्युत्तर में मैं अपने निजी विचार बताऊँ, इसके पहले, वर्तमान छत्तीसगढ़ शासन संस्कृति विभाग के संयुक्त संचालक श्री राहुल सिंह जी के विचार, जो 'नई दुनिया' समाचार पत्र दिनाँक 5 अक्टूबर 2018 को प्रकाशित हुआ था उसे ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहा हूँ, उन्होंने कहा है 'जैसे-जैसे नई पीढ़ी आती जा रही है, वैसे-वैसे छत्तीसगढ़ी संस्कृति को वह भूलती जा रही है। इसे लेकर प्रदेश का पुरातत्व और

संस्कृति विभाग चिंतित है।' श्री राहुल सिंह जी ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है कि 'छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति को बचाने के लिए स्कूलों में पुरातत्व और संस्कृति पर आधारित पाठ्यक्रम अनिवार्य रूप से होना चाहिए।' उन्होंने आगे कहा है 'साँस्कृतिक दृष्टि से छत्तीसगढ़ एक संपन्न प्रदेश है। इसके संरक्षण, सँवर्धन के लिए संस्कृति विभाग द्वारा कई सार्थक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। कलाकारों को बराबर हर तरह से प्रोत्साहित किया जा रहा है। छत्तीसगढ़ी खानपान को बढ़ावा देने के लिए, राजधानी रायपुर के महंत घासीदास संग्रहालय में मॉडल के तौर पर 'कलेवा केंद्र' की शुरुआत की गई है, जहाँ तमाम तरह के छत्तीसगढ़ी व्यंजन परोसे जाते हैं। छत्तीसगढ़ी संस्कृति को प्रोत्साहन मिल सके, ऐसी कई गंभीर योजनाएं बनाई जा रही हैं। मगर संस्कृति को सहेजने की जिम्मेदारी परिवार से लेकर, गुरुजन और समाज की भी है।' मैं, श्री राहुल सिंह के विचारों से पूर्णतः सहमत हूँ। मगर इसके साथ मैं अपनी ओर से यह भी जोड़ना चाहूँगा की संस्कृति के संरक्षण, सँवर्धन की दिशा में तमाम प्रयत्नों के बावजूद युगीन अपरिहार्य परिवर्तनों के तहत संस्कृति और कलाओं के मूल स्वरूप में भी परिवर्तन अनिवार्यतः होना ही चाहिए। इसे चाहकर भी रोका नहीं जा सकता। यह नियम मैदानी संस्कृति और आदिवासी संस्कृति दोनों के लिए लागू होते हैं। अभी हाल ही 9 अगस्त 2019 के 'नवभारत' समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ है, वह गौर करने लायक है। लिखा है 'आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासी लोगों के संपर्क से, एक ओर जहाँ उनकी बोली भाषा पर संकट मंडराने लगा है, दूसरी ओर उनके मूल पारंपरिक और धार्मिक मान्यताएं भी तेजी से बदल रही हैं। सरकारी विकास योजनाओं ने आदिवासियों के जीवन को आसान तो जरूर बनाया है। लेकिन आधुनिकतावाद की घुसपैठ से उनके तमाम मूल सांस्कृतिक विरासतों के खत्म होने का खतरा भी मंडराने लगा है। आदिवासी इलाके की सभी विशेष पिछड़ी जातियों में भी शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से लगातार बदलाव देखने को मिल रहा है। यह अलग बात है कि आदिवासी जाने अंजाने अपनी ओर से अपनी विरासत को बचाने जरूर संघर्षरत हैं।' इसके बाद मैं फिर अपनी बात को दोहराता हूँ कि युगीन प्रवाह के साथ उनके तमाम साँस्कृतिक मूल्यों और मूल रूपों में परिवर्तन को पूरी तरह रोक पाना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। कालांतर में छत्तीसगढ़ लोक साँस्कृतिक स्वरुपों के दर्शन हमें केवल चित्रों में या केवल किताबों में ही संभव हो सकेगा, ऐसा मुझे लगता है।

पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान के विभागाध्यक्ष डॉ. अशोक प्रधान और सहायक प्राध्यापक डॉ. शैलेंद्र कुमार - इन दोनों विद्वानों ने भी माना है कि 'छत्तीसगढ़ आदिवासी अंचल की सभी पिछड़ी जनजातियों में शारीरिक और सामाजिक रूप से काफी बदलाव देखने को मिला है। आदिवासी अंचलों में सड़कें पहुँचने के साथ-साथ 'मोबाइल क्रांति' भी पहुँच गई है। मोबाइल में वहाँ हिंदी गीतों के साथ-साथ, उनके विवाहों में भी पारंपरिक गीतों के बदले फिल्मी गीत सुनाई देने लगे हैं।' डॉ. शैलेंद्र कुमार का तो यहाँ तक कहना है कि बिलासपुर के कई क्षेत्रों में आदिवासी लोग 'सोलर एनर्जी' का इस्तेमाल भी कर रहे हैं। उनके क्षेत्रों में शिक्षा का 'ग्राफ' बढ़ा है। शिक्षित होकर आदिवासी युवावर्ग अपने ही क्षेत्र में रहना नहीं चाहता।

प्रश्न 22 : प्रौद्योगिकी के युग में लोकनाट्यों के बदलते स्वरूप के लिए क्या आपकी सोच सकारात्मक है?

उत्तर : जी हाँ। इस प्रसंग पर मेरी सोच शत-प्रतिशत सकारात्मक है। इसके अपने कारण हैं। लोकनाट्य हों या कोई भी लोकतात्विक कला हो, समय के प्रवाह के अनुरूप - सभी लोकविधाओं में सुसंगत एवं संतुलित परिवर्तन एवं

प्रयोग अपरिहार्य हैं। इन परिवर्तनों को रोका नहीं जा सकता। परिवर्तनों में रुकावट डालने से, ठहरे पानी की तरह, सड़ांध पैदा हो जाती है। नदी की तरह सतत समयानुरूप बहते जाना ही हर कला विधा की अनिवार्य नियति है। कलाओं की बेहतरी के लिए ये परिवर्तन आवश्यक भी हैं। हाँ, कलाओं के इन बदलते स्वरूपों पर सचेत रहना भी उतना ही आवश्यक है। समय प्रवाह के साथ परिवर्तित होते किसी भी कला का स्वरूप उर्ध्वगामी रहे, अधोगामी नहीं। कलाएं अपने स्तर से, स्वरूप से स्खलित न हो - इसका ध्यान कलाकारों को, बौद्धिकों को बराबर रखना चाहिए। समाज के जागरूक वर्ग के लोगों को भी यह जिम्मेदारी होनी चाहिए। कोई भी परंपरागत कला में यह ख्याल बराबर रखा जाना चाहिए कि परंपरा 'बोझ' और स्वरूप परिवर्तन में किये गये 'प्रयोग' 'फैशन' न लगे, बल्कि सहज, स्वाभाविक और युगानुरुप स्तरीय, आकर्षक और ग्राह्य लगे।

प्रश्न 23 : पारंपरिक लोकनाट्य (अतीत) एवं आज के लोकनाट्य शैली में और स्वरूप में क्या अंतर है?

उत्तर : बहुत अंतर है और यह अंतर समयानुसार सहज स्वाभाविक, अनिवार्य और अपरिहार्य है। चाहे वह मंचों में प्रकाश व्यवस्था की बात हो, वाद्यों की बात हो, मेकअप सामग्रियाँ, वस्त्राभूषण, पहरावा, गीत नृत्य, अभिनय, भावाभिव्यक्ति, अंग संचालन, कथावस्तु और उसके मंचीय प्रदर्शन की शैलियाँ हों, सबमें अतीत की तुलना में आज बहुत परिवर्तन, बहुत अंतर आया है, सभी रूपों में, सभी दृष्टि से। हाँ सँवाद और गीत जरूर अभी भी छत्तीसगढ़ी भाषा में हैं, लेकिन छत्तीसगढ़ी भाषा के शब्द विन्यासों में भी पहले की तुलना में काफी अंतर आया है। सर्वमान्य तथ्य यह है कि परिवर्तन समय का अनिवार्य नियम है। लक्षण है। प्रतिमा जी, मैं इसी प्रश्न से मिलता-जुलता आपके प्रश्न नं. (9) में इसका उत्तर दे चुका हूँ। कृपया दोबारा प्रश्न (9) के उत्तर देखें।

प्रश्न 24 : आपकी कलागत सक्रियता तथा पठन-पाठन और लेखन आपकी सेहत के लिए रामबाण औषधि है इससे आप सहमत हैं?

उत्तर : जी हाँ, सहमत तो हूँ, पर शत-प्रतिशत नहीं। इस उम्र में भी मेरी सेहत के पीछे सबसे पहले तो प्रभु की कृपा मानता हूँ। उसके बाद पठन-पाठन, लेखन के अतिरिक्त सामान्य शारीरिक व्यायाम, कुछ सामान्य योगिक क्रियायें, साथ ही लम्बे समय से चल रहा 'जवाँरा रस' सेवन की भूमिका है। बावजूद इन सबके, ढलती उम्र के अपने कुछ अपरिहार्य तकाजे होते हैं, जिन से बच पाना संभव नहीं है। अपनी अवस्था-जन्य स्वाभाविक असमर्थता के कारण मैं नाट्य फिल्मादि के निर्देशकीय गतिविधियों से विराम ले चुका हूँ और इन दिनों केवल पठन-पाठन और लेखन में ही मेरा अधिकांश समय बीतता है - अतिव्यस्तता के साथ। दिनचर्या में निर्धारित समय का अनुपालन, सकारात्मक चिंतन-मनन, ठीक ठाक खान-पान, रहन-सहन ये सब साथ चलते हैं और सब मिलकर ही मुझे 77 वर्ष की उम्र में भी सक्रिय बनाए हुए हैं।

प्रश्न 25 : छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों एवं भारत के अन्य राज्यों के लोकनाट्यों में क्या अंतर है?

उत्तर : अध्ययन के आधार पर ही बताना चाहूँगा - भारत के अन्य राज्यों के लोकनाट्यों में मुख्यतः असम प्रदेश का 'अंकिया', हिमाचल का 'स्वाँगी', 'नाट्य करियाल', बिहार-मिथिला की 'बिदेसिया', 'कीर्तनिया', 'जट-जटिन', 'बिदापत', उत्तर प्रदेश-ब्रज का 'भगत', 'रासलीला', आंध्र का 'कुरवंजी', केरल का 'कुटियाट्टम', महाराष्ट्र का 'गोंधल', 'तमाशा', बंगाल की 'जात्रा', तमिलनाडु का 'तेरूकुन्तु', कर्नाटक का 'यक्षगान',

'दोड्डाता', मध्य प्रदेश-मालवा का 'माच', उत्तर प्रदेश की 'नकल', 'रामलीला' राजस्थान की 'नौटंकी' और 'ख्याल', गुजरात की 'भवई', कश्मीर का 'मांडपथ' आदि आदि। विभिन्न राज्यों में प्रचलित विभिन्न नाट्य स्वरूपों के नाम मैं केवल अध्ययन के आधार पर बता रहा हूँ। और अध्ययन के आधार पर ही कह सकता हूँ कि हमारे छत्तीसगढ़ में प्रचलित नाचा गम्मत, रहस, पंडवानी, चंदैनी जैसे लोकनाट्यों और देश के अन्य राज्यों अंचलों में प्रचलित पारंपरिक लोकनाट्य रूपों की 'आत्मा' एक है। परस्पर स्वरूप तथा प्रस्तुतिगत विभिन्नता के बावजूद सबमें विद्यमान मूल तत्व एक जैसे ही होते हैं। अमूमन सभी प्रांतों, अंचलों के लोकनाट्यों में परस्पर स्वरूप भिन्नता के बावजूद उनमें विद्यमान 'प्राण तत्व' एक जैसे ही होते हैं। सबमें, मनोरंजन और शिक्षण से संबंधित सामग्रियों से दर्शकों को रात-रात भर बाँधे रखने की क्षमता एक समान होती है। तमाम साँस्कृतिक विविधताओं के बावजूद आखिर हमारे देश की 'आत्मा' तो एक ही है न।

प्रश्न 26 : क्या गम्मत और नाचा एक दूसरे के पूरक हैं ?

उत्तर : जैसा कि आप जान चुकी होंगी, छत्तीसगढ़ की पारंपरिक प्रतिनिधि लोकनाट्य है नाचा। नृत्य, गीत, संगीत के साथ गम्मत नाचा के पूरक ही नहीं, अनिवार्य और अपरिहार्य अंग हैं। गम्मत और नृत्य के बिना नाचा के स्वरूप की, उसके सार्थक अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यही कारण है कि नाचा को एक साथ 'नाचा-गम्मत' ही कहकर ग्रामीणजन पुकारते आये हैं। वस्तुतः 'गम्मत' छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा की आत्मा है।

प्रश्न 27 : नाचा, लोकनाट्य में कलाकारों को संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है या वह स्वस्फूर्त (प्रत्युत्पन्नमति) होता है?

उत्तर : जैसे कि मेरा अपना अनुभव और अवलोकन रहा है, नाचा गम्मत के कलाकारों को किसी संस्थान से विधिवत् प्रशिक्षण न पहले दिया जाता था, न अब दिया जाता है। निसंदेह यदि मैं कहूँ, नाचा के कलाकार जन्मजात यानी पैदाइशी कलाकार होते हैं, तो जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे अपना हुनर, अपनी कलाएं अपनी माँ के गर्भ से ही सीखकर आते हैं। अतः कहा जा सकता है कि वे अमूमन 'सेल्फ इंस्पायर्ड', 'सेल्फमेड' यानि वे स्वयंस्फूर्त एवं स्वनिर्मित होते हैं। उनमें 'इम्प्रोवाइजेशन' यानी प्रत्युत्पन्नमति क्षमता भी गजब की होती है। यह अलग बात है कि नाचा लोकनाट्य के कलाकार मिलजुलकर साझा रिहर्सल करते हैं। एक दूसरे को सिखाते और एक दूसरे से सीखते हैं और नाचा में रात रात भर अपने अनोखे हुनर से दर्शकों को बाँधे रखते हैं। ●

रामहृदय तिवारी 4.10.20

- रामहृदय तिवारी

वरिष्ठ लेखक एवं निर्देशक, हिंदी नाट्य, छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य एवं फिल्म्स
निवास : न्यू आदर्श नगर, दुर्ग, छत्तीसगढ़, मो. 96853 66570, 0788 4901965 (R)

Mk- i.frek feJk }kjk Mk- 'kSy tk pUnzkdj th ls lk{kkRdkj

डॉ.शैलजा चन्द्राकर ने छत्तीसगढ़ी लोक नाट्यों में अभिनय एवं नृत्यकला का प्रदर्शन किया। सोनहाबिहान? लोकरंजनी, लोरिकचंदा में प्रमुख भूमिका, "हरेली" में केन्द्रीय भूमिका, गम्मतिहा में चरित्र भूमिका तथा "रथ यात्रा", "घर कहाँ है", "दशमत कैन" इत्यादि लोक नाट्यों में भी अभिनय किया है। इसके अतिरिक्त लोरिकचंदा टेलीफिल्म में केन्द्रीय भूमिका आंचलिक टेलिफिल्म कसक तथा'संधीबेला', 'शिवनाथ गी गोद में', 'मैं छत्तीसगढ़ी महतारी हूँ', नृत्यनाटिका में कार्य किया। छत्तीसगढ़ की ख्याति प्राप्त रंगकर्मी के रूप में जानी जाती है। इनके अनुभव एवं विचार को उनके ही शब्दों में मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ –

प्रश्न– छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य की दशा एवं दिशा के संबंध में आपके अनुभव व विचार क्या है?

अतीत को छोड़ दें वर्तमान की यदि बात करें तो लोकनाट्यों के प्रति नगरीय दृष्टि अब तक उपेक्षा अथवा उदासीनता की रही है इसलिए यदि कुछ आवार्ड को छोड दे ंतो लोकनाट्यों और कलाकारों को अपेक्षित प्रतिष्ठा प्राप्त है जिनकी वे हकदार हैं। छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य अपनी समृद्ध परम्पराओं के बावजूद अनेक कारणों से अपना ओजमय स्वरूप खोते जा रहे हैं।

इससे पूर्व की आज की स्थिति में लोककला लोकनाट्य की दशा, दिशा और विकास पर विचार किया जाय यह आवश्यक है कि समस्त शैली के बाबत व्यापक जानकारी हासिल कर लिया जाय यह दुर्भाग्य है कि नागर मंच की तुलना में लोकमंच के कलाकारों का पारिश्रमिक भी कम है। जिसके चलते अब लोक कलाकार दिशा से भटकर अपनी दशा बिगाडते जा रहे हैं वर्तमान के नाम पर फुहड़ता करने लगे अब इसे उनकी जागरूकता कहें, समय की मांग कहें या उनका भटकाव? इस पर कलाविदों का ध्यान जाना जरूरी है।

प्रश्न– वर्तमान परिवेश में 'नाचा' लोकनाट्य के प्रदर्शन पर किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?

नाचा का शाब्दिक अर्थ हैं 'नाच', नाच का शुद्ध रूप है नृत्य किन्तु नाचा शब्द रूढ़ हो गया है। छत्तीसगढ़ी लोकसंस्कृति और लोककला के क्षेत्र में वह सब कुछ है जो नागर मंच में गर्व के साथ पेश किये जाने वाले नाटक में होते हैं नाचा छत्तीसगढ़ी जनजीवन का एक अत्यंत लोकप्रिय कार्यक्रम है जिसमें जीवन के हर्ष विषाद, सुखात्मक दुःखात्मक अनुभूतियों को बडे कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है किन्तु वर्तमान में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है और नाचा विलुप्ति की कगार पर है उसके स्थान पर वालीवुड की नकल कर छत्तीसगढ़ी फिल्मों ने ले लिया जो थोड़े बहुत नाचा कलाकार सक्रिय हैं वे आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहे हैं तथा वर्तमान में दर्शकों के भी लाले पड़ने वाली बात है।

प्रश्न– छत्तीसगढ़ लोकनाट्यों के संरक्षण संवर्धन एवं उसे जीवंत बनाये रखने के लिए आपके क्या सुझाव है?

अब बहुत देर हो चुकी है जो यकिनन नाचा के उत्कृष्ट कलाकार थे दिवंगत हो गये अब मूल रूप का संरक्षण, संवर्धन कैसे होगा मिश्रित संस्कृति को संरक्षित करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि समय के अनुसार वह बदलती रहेगी। फलेगी फूलेगी।

प्रश्न– छत्तीसगढ़ के कुछ ऐसे कलाकार है जो प्रतिभाशाली हैं एवं इस क्षेत्र में अभिरूचि रखने के बावजूद उभर नहीं सके, इसका कारण क्या है?

इसके लिए मैं यही कहूँगी कि वे मंच पर महान कलाकार हैं लेकिन मंच के बाहर की दुनिया में उनकी प्रस्तुति एकदम कमजोर है वे अपने लिए जगह बनाना नहीं जानते इसे मैं उनके भोलेपन का नाम नहीं दूंगी। समर्पित प्रयास की कमी कहूँगी।

प्रश्न– आप अपनी मंचीय प्रस्तुतियों में किस बात का अधिक ध्यान रखते हैं?

मैं जो किरदार करती थी उसमें सौ प्रतिशत डूब जाती थी तब शैलजा नहीं रहती थी। वेष, विन्यास, संवाद, अभिनय सभी पर कड़ी मेहनत करती थी।

प्रश्न– पारंपरिक लोकनाट्य की श्रेणी में प्रमुखतः छत्तीसगढ़ के कौन से लोकनाट्य आते हैं।

इसके अंतर्गत नाचा, रहस एवं भतरानाट्य प्रमुख रूप से आते हैं।

प्रश्न– इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का चारों और फैला चकाचौंधकारी प्रभाव में लोकमंची कलाएँ जीवित रह पायेंगी? आपके अनुभव एवं चिंतन के आधार पर आपका क्या अनुमान है।

मैं यह मानती हूँ कि दमदार प्रस्तुति हो तो इस विधा को बिलकुल जीवित रखा जा सकता है। और यह बदलते स्वरूप में जीवित रहेगी।

प्रश्न– लोक संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन में शासन के संस्कृति विभाग की भूमिका के संबंध में आपके क्या विचार है।

शासन बहुत कुछ कर सकता है किन्तु जो होता है वह केवल लिपापोती है, संरक्षकों को कुछ लाभ भी होता है किन्तु पात्रों की स्थिति दयनीय है। पात्रों को लोकनाट्य का एक नशा है और यही कारण है कि वे पारिश्रमिक की चिन्ता किये बिना स्वेच्छा से यह कार्य करते हैं। शासन की भूमिका संतोषप्रद नहीं है।

प्रश्न– प्रौद्योगिकी के युग में लोकनाट्यों के बदलते स्वरूप के लिए आपकी सोच सकारात्मक है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है समय के साथ वर्तमान स्वरूप को स्वीकार करना होगा।

jtuh jtd

लोक गायिका रजनी रजक ने अपने परिवार के सानिध्य में सन् 1980 से मंचीय प्रस्तुत करने वाली गायिका एवं लोक निर्देशिका के रूप में जानी जाती है। ये आज छत्तीसगढ़ के यशस्वी, शीर्षस्थ कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित है लोगकगीत, लोक नृत्य कथा गायन लेखन, प्रलेखन एवं रंग मंचीय संचालन का इन्हें 30 वर्षों से अनुभव है रजनी रजक ढोला मारू की विशिष्ठ गायिका हैं वर्तमान में ये भिलाई इस्पात संयंत्र सी.आर.एस. में पदस्थ हैं –

सम्मान– लोक गायिका रजनी रजक को स्वर कोकीला नारी प्रतिष्ठा सम्मान, देवदास बंजारे सम्मान, भूमिपुत्र सम्मान, सृजन चिन्हारी सम्मन, रजत विभूषण सम्मान, कौशिल्या सम्मान, स्वर कोकिला सम्मान, बिलासा सम्मान, दायु महासिंग चन्द्राकर सम्मान इत्यादि के साथ साथ भारत सरकार द्वारा 2018 में नारी शक्ति सम्मान से विभूषित किया गया है। इन्हें यह बड़ा सम्मान महामहिम राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविद जी के कर कमलों द्वारा प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत है इनके साथ साक्षात्कार के कुछ अंश जो प्रश्न उत्तर के रूप में प्रस्तुत है –

jtuh jtd l Mk-ifrek feJk }kjk fy;k x;k lk{kkRdkj

1- ykd dyk d {k= e nxl ftyk dh fLFkfr D;k g\

छत्तीसगढ़ का दुर्ग जिला कला संस्कृति के लिए बहुत समृद्ध व सम्नल्ल, धान की जितनी किस्में है उतनी कला और कलाकारों का गढ़ है। दुर्ग जिले में एक नाम जिनसे छत्तीसगढ़ की पहचसन है वो हैं पद्विभूषण डॉ. तीजन बाई। कला के क्षेत्र में दुर्ग जिले की स्थिति मुझे ऐसा लगता दुर्ग जिला कलाकारों की भूमि है, भिलाई के लोहे की तरह यहाँ नित नवीन कला संस्कृति गढ़ा जा रहा है यहाँ कलाकार छत्तीसगढ़ राज्य बनने का सुख भोग रहे हैं उन्हें राजधानी के प्रमुख उत्सवों में भागीदारी का अवसर से उनकी आर्थिक स्थित मजबूत हो रही है। भिलाई के प्रतिष्ठित छत्तीसगढ़ लोकोत्सवों में दुर्ग जिले के कलाकारों का परचम देश दुनियाँ में जाहिर है। चाहे लोक कला हो शास्त्रीहय हो मूर्तिकला हो यहाँ दुर्ग जिले में कला और कलाकारों की स्थिति बहुत सुखद है।

2- ukpk d ikjifjd :i ,o vkt d :i e D;k vUrj g\

आधुनिकता की चकाचौंध का असर सभी ओर पड़ा है। इनसे नाचा म्मत कैसे अछूता रह सकता है आज नाचा गम्मत के दर्शक नहीं मिलते और ना ही नाचा गम्मत के कलाकार, उस उम्मीद के नहीं जो दर्शकों को बांध सके। बहुत अंतर आया है। आज नाचा के कलाकार अपनी प्रस्तुति की मौलिकता, खड़े साज को भूल, फिज्मी दुनियाँ और शहरीकरण से प्रभावित हो चुके हैं कुछ दल है किन्तु वे भी दर्शकों को आडम्बर परोस रहे हैं। ठेठ को भूलकर, नाचा की साही पहचान को खो रहे हैं। "गम मत करना–गम्मत" की परिभाषा को बदल दे रहे हैं नये जमाने के कला से जुढ़ने वाले कलाकार, गम्मत साज से दूर होते जा रहे हैं जबकि लोककला जन्मदाता, नाचा का संसार है। नाच के कलाकार अब भी वही, साहूकार डाकू बालक गम्मत दिखाता, जबकि आज के परिवेश में राज्य/केन्द्र सरकार की योजनाओं को जोड़ते हुए जल जंगल जमीन, बेटी बचाओ, पर्यावरण संरक्षण जैसे अनेक शिक्षा और संदेशप्रद गम्मत के रूप, दर्शकों को वो कलेवर नहीं मिल रहा है।

3- fHkykbZ bLikr l;a= d }kjk ukpk ,o xEer ykd ukV; dk fo'k"k izkRlkgu fn;k x;k g\

भिलाई इस्पात संयंत्र कला संस्कृति की संरक्षण की दिशा में, सी.एस.आर. विभाग द्वारा आयोजित छत्तीसगढ़ लोक कला महोत्सव, लोक कला व गम्मत नाचा, लोक नाट्य के लिए विगत 42 वर्षो से अनवरत्, अभूतपूर्व, कार्य कर रही है। छत्तीसगढ़ के कला परम्परा के संवर्धन के लिए बहुत ही प्रशंसनीय कार्य करते आ रही है इस महोत्सव में छत्तीसगढ़ की सुवा करमा, ददरिया या पंथी पंडवानी के अलावा, गम्मत नाचा को विशेष महत्व देतु हुए महोत्सव मंच पर, गम्मत नाचा को बहुत अहमियत देते हुए प्रतिवर्ष के आयोजनों में तीनों दिन गम्मत नाचा की प्रस्तुति रखती है साथ ही गम्मत नाचा के सर्जक दाऊ दुलार सिंह साव के स्मृति में (छत्तीसगढ़ राज्य गठन के साथ ही) वर्ष 2000 से 15 हजार की राशि, साल श्रीफल, स्मृति चिन्ह के साथ, छत्तीसगढ़ लोक कला महोत्सव के मंच पर "लोक कला साधक सम्मतान" प्रति वर्ष नाचा गम्मत के क्षेत्र में काम करने वाले उत्कृष्ठ

नाचा पार्टी या लोकनाट्य, चंदैनी गोंदा, ढ़ोलामारू (चरणदास चोर), भरथरी आदि लोकनाट्यों को सम्मानित करते आ रही है।

यूँ तो भिलाई इस्पात संयंत्र आम जन के लिए जीवनदायनी है ठीक उसी तरह लोककला और कलाकारों के लिए सेतुबन्धु है इस प्रतिष्ठित महोत्सव में भाग लेकर, अपनी प्रतिभा का जौहर दिखाने वाले विभिन्न कलादलों ने लोक कला सम्मान, लोककला साधक सम्मान प्राप्त कर अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भिलाई दुर्ग ही नहीं छत्तीसगढ़ को गौरवान्वित कर रहे है। न्यादिक दास, झुमुकदास गम्मत साज के बड़े बड़े नामी कलाकार इसी मंच की देन है। चूंकि महोत्सव को सम्पादित करने वाली संयोजिका रजनी रजक लोक कलाकार अतः लोककला को बहुत प्रोत्साहन व संर्वधन मिलना विशेषकर गम्मत को। चाहे वो भिलाई इस्पात संयंत्र का विराट छत्तीसगढ़ लोक कला महोत्सव हो या ग्रामीण लोकोत्सव।

4- nqxZ ftyk esa yxHkx fdruh ukpk ikVhZ ,oa ykdjax laLFkk,¡ gS\

लेक कला की दृष्टि से लोक कला मंच कलाकार एवं गम्मत नाचा के सन्दर्भ में यही कहना चाहूँगी कि दुर्ग जिला लोक कला का गढ़ है खजाना है यहाँ लगभग गम्मत साज की 45 से 50 पार्टीयाँ होगी जिनमें कुछ लुप्त हो चुकी है कुछ शासन व भिलाई तथा निजी आयोजनों के सहयोग से अपने अस्तित्व को कायर रखी हैं लोककला लोकरंग कली अनगिनत कलादल है लोकरंग अर्जुन्दा, तुलसी चौरा रजनी रजक कृत लोक जगार, लोक सगनी, सोन चिरइया, नवा बिहान, सोनहा बिहान जैसे नामी गिरामी तथा नवोदित लगभग 70 से 80 मंडलियाँ होगी, जो लोक कला को जीवतंता प्रदान कर, छत्तीसगढ़ की संस्कृति में अपना योगदान दे रही है।

5- vki O;fDrxr :i ls NÙkhlx<+ dh ykddyk vkSj fo'ks"k rkSj ij ykdukV~; ds izpkj izlkj ds fy, D;k djrs gS\

लोककला के विकास के लिए विगत 40 वर्षो से अपने लोक कण्ठों से लगभग 20 विधाओं को लोकशैली को संजोये जीवन के मरे 5 महामंत्र को लेकर आगे बढ़ रही हूँ –

1. बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

2. पर्यावरण संरक्षण (जल जंगल जमीन)
3. संस्कृति संस्कार समरसता– गौ पालन
4. स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत की कल्पना
5. नरी शिक्षा, स्वालम्बन, सुरक्षा को, लोक कण्ठो से प्रवाहित करती हुई नवा गढ़बो छत्तीसगढ़– नरवा, गरवा, घुरवा, बारी, छत्तीसगढ़ के चार चिन्हारी के साथ, नवोदित कलाकारों को प्रशिक्षण देकर मंच प्रदान कर एक कलाकर के रूप में स्थापित क कलाकारों के जीवन जीने उनके रोजी रोटी का जरिया देती हूँ। मेरे द्वारा स्थापित सांस्कृतिक पहल लोकजगार– 7 वर्ष के कलाकार सम्मिलित हैं जिसके माध्यम से लोकगीत, नृत्य, नाटक, वादन, संस्कृकित संस्कार, लोककला की बारीकिंयाँ खानपान पहिरावा परम्परा तीज त्यौहार संबंधित।

1. लोक जगार– लोक कला निशुल्क प्रशिक्षण साल में दो बार, 15 दिवसीय शिविर लगाकर, रूआंबांधा मरोदा बस्ती एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बी.पी.एल. बच्चों युवा और गृहणी महिलाओं को निःशुल्क लोक कला प्रशिक्षण देकर जीवनयापन हेतु कलाकार गढ़ती हूँ।
2. लोक कला के विकास के लिए छत्तीसगढ़ के विभिन्न अंचलों में व्यक्तिगत तौर पर, वक्ता, अतिथि, निर्णायक, कलाकर, समाजसेविका, कला साधिका के रूप अलग–अलग विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों में जाकर लोककला का प्रसासर करती हूँ।
3. राम की कहानी, तुलसी की वाणी अर्थात पंडवानी की तरह रामायणी को स्थापित कर रही हूँ।
4. लोकगाथा ड़ोलामारू जो राजस्थान की गाथा इसे छत्तीसगढ़ी के रूपांतरित कर सांस्कृति आदान प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हूँ।
5. दिव्यज्योति संस्था के दिव्यांग बच्चों को निःशुल्क लोककला की तालिम दे रही हूँ

6. अपने पैसे खर्चकर प्रत्येक टीम के लिए 35 कलाकारों की टोली बनाकर उन्हें प्रशिक्षण देकर लोककला मंच रंग छत्तीसगढ़ सूजन, लोकजगार, लोकरंजनी,अनुष्ठाान जैसे तुलसी चौरा लोक मंचों को निर्देशित कर उन्हें संरक्षण प्रदान कर रही हूँ

7. मेरे द्वारा नवोदित कलाकार आज आकाशवाणी, दूरदर्शन के अतिरिक्त रामायण मानस मंच से लेकर लोक कला मंच/गम्मत साज आदि महारत हासिल कर, भरथरी ढ़ोलामारू, विभिन्न गाथाओं की प्रस्तुतिकरण से दर्शकों का स्वस्थ मनोरंजन के साथ जीवकोपार्जन कर रहे हैं।

8. प्रतिवर्ष 2 निःशुल्क लोक कला शिविर का उद्देश्य नये कलाकार गए्ना और उन्हे लोककला से अवगत करना ताकि नई पीढ़ी छत्तीसगढ़ की लोक कला को जाने समझे और उसका विस्तार करें। नई पीढ़ी को हस्तांतरित करना मेरा उद्देश्य है।

6- vkidk n|x ftyk d fdu dykdkjk u lcl T;knk viu dk; l iHkkfor fd;k g\

मैं रजनी रजक, लोक गाथा ढ़ोलामारू की निर्देशिका इस भावना से लोककला, लोकनाट्य के प्रचार प्रसार के लिए प्रयासरत हूँ कि –

कोशिश कर हल निकलेगा, आज नहीं कल निकलेगा

अर्जुन की तीर सा सध, मरूस्थल में भी गंगाजल निकलेगा।

विशेष – मेरी सम्मान की श्रृंखला में

वर्तमान में भारत सरकार द्वारा महामहित राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविद के कर कमलों "नारी शक्ति सम्मान", ढझेलामारू लोक गाथा गायन के लिए विशेष रू‍प से मिला। यह भारत सरकार का छत्तीसगढ़ के महिलाओं के लिए कलाकारों के लिए एक अनुपम उपहार है।

nhid pnzkdj ls lk{kkRdkj ¼ykdjax vtqZUnk½

"लोकरंग छत्तीसगढ़ की सुप्रतिष्ठित ख्याति छत्तीसगढ की सीमाओं को पार कर देश के अन्य कई प्राप्तों तक पहँच चुकी है। कलाकारों और सहयोगियों में उमंग उत्साह और उर्जा बराबर बरकरार है। लोकरंग के दर्शकों की भीड़ भी ख्याति के अनुपात में लगातार निरंतर बढ़ती जा रही है। निस्संदेह इन सबका मूल कारण है वह जूनून, स्वप्न, स्वभाव और उदार व्यवहार जो दीपक चन्द्राकर के व्यक्ति का अभिन्न अंग है। अर्जुन्दा के विख्यात मालगुजार परिवार में 12 मार्च सन् 1955 में जन्म लेने वाले दीपक जी को कलागत संस्कार उनके परिवार से मिला।" अपनी स्वास्थ्यगत सीमाओं के बावजूद वे अत्यंत हिम्मती और हौसले से परिपूर्ण है।

सुप्रसिद्ध लोक सांसकृतिक संस्था के संचालक संरक्षक, लोककला ग्राम अर्जुन्दा के संस्थापक संचालक एवं संरक्षक तथा अतिविशिष्ट उपलब्धियों एवं पुरस्कार से सम्मानित श्री दीपक चंद्राकर जी से मेरी विस्तृत चर्चा हुई जिससे लोकरंग के सांस्कृतिक महोत्सव में प्रर्दशन उसकी अतिविशिष्ट प्रस्तुतियाँ जो देश के शीर्षस्थ व्यक्तियों के समक्ष हुई है, से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्वर्णिम स्थान बनाने वराली यह सांस्कृतिक संस्था छत्तीसगढ़ को लोककला के क्षेत्र में विश्व में अपनी विशिष्ट एवं सर्वोत्तम पहचान प्रदान कर रहा है। दीपक जी द्वारा आयोजित 13 जून से 27 जन 2018 तक के निःशुल्क लोकगीत, पंथी एवं गम्मत कार्यशाला लोकरंग परिसर अर्जुन्दा में था जिसमें शोध सामग्री संकलन के अभिप्राय हेतु मैं वहाँ उपस्थित हुई। गायन वादन के मधुर स्वर से मन तक तार अनायास ही झंकृत हो गये। बाह्य द्वारा ही एक समृद्ध संस्था की परिचय दे रही थी। बाह्य द्वारा का शिल्प एवं सौंदर्य मनमोहक था जैसे ही मैने वहाँ प्रवेश किया दीपक जी ने अत्यंत सहजता सरलता आतिथ्य भाव की मिश्रित भंगिमा से मेरा स्वागत किया। वहाँ जो मधुर लोक गीत जो दूर से ही कर्णप्रिय लग रहे थे वाद्ययंत्र की अनुगूंज बरबस ही मन को आनंद विभोर कर देने वाली थी। एकांत में मधुर कंड की मिसृत स्वर लहरियों और नृत्य की थापें छत्तीसगढ़ की समृद्ध संस्कृति की सुंगध एवं रिमझिम वर्षा का अहसास दे रही थी। भीड़ में किसी आयोजन के बीच की उस प्रस्तुति का अनुभव एवं एकांत में कला की कार्यशाला के उस परिसर की

आनंदानुभूति का अन्तर स्पष्ट रूप से मुझे सोचने पर मजबूर कर रहा था कि लोककला का वह आंगन अपने मानों स्वर शिरोमणी मंजूषा एवं मलय में विलिप्त वाद्यताल, घुघरूओं की तान, कलाकारों की सरलता सहजता एवं समर्पण की वह सौंधी महक छत्तीसगढ़ को प्रदत्त अनुपम देन की साक्षी है। कला कौशल का वह आंगन आसमान के नीचे आकाश की ऊँचाई प्रदान कर रही थी। एक सांस्कृति रस प्रवाह मन को तृप्त कर रही थी। इस कलात्मक लोकरंग परिसर के भीतर अलग अलग उपयुक्त कार्नरों पर माँ सरस्वती की मूर्ति, हनुमान जी की प्रतिमा, छत्तीसगढ़ महतारी की दो अलग अलग छबियों वाली मूर्तियाँ तथा छत्तीसगढी संस्कृति से संबंधित अन्य कई आकर्षक मूर्तियाँ अलग–अलग जगहों में शोभायमान है। एक कोने में विराट आकार में नटराज भगवान की मूर्ति स्थापित की गई है। इस दर्शनीय परिसर को समय–समय पर अनेक लोग आते हैं परिसर का प्रवेश द्वारा अत्यंत कलात्मक और चित्ताकर्षक है।

दीपक जी से मेरी बातचीत के दौरान उन्होने यह बताया कि लोक रंग के लिए चार मार्गदर्शक सूत्र निर्धारित किये गये हैं– 1. लोकरंग अपनी माटी से जुड़ने की आकुल पुकार है। 2. लोकरंग नृत्य, गीत, नाट्य और गम्मत ही नहीं लोक जीवन का संस्कार है। 3. लोकरंग सांस्कृतिक गगन की शीतल सुखद बयार है। 4. लोकरंग छत्तीसगढ की लोकमंचीय कलाओं का लघु संसार है। मैने दुर्ग जिले के अनेक लोक मंचीय संस्थाओं का भ्रमण किया सभी में कुछ न कुछ खूबियाँ अवश्य ही है किन्तु अर्जुन्दा के इस बड़े लोकमंच की बात कुछ अलग ही है। जहाँ पर अनेकों लोक नाट्यों का मंचन हुआ एवं देश के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भी वहाँ के लोकमंचीय कार्यक्रमों को देखा है।

सिर्फ वहाँ कमी थी तो केवल द्रष्टा की सशुल्क फूहड़ता का दिग्दर्शन करने वाली इस भौतिक संस्कृति में निःशुल्क सुलभ लोकसंस्कृति की इस कार्यशाला में नदी में गोता लगाने वाले अल्पसंख्यक है यह अत्यंत चिंता का विषय है।

यह तो हुई सूर–ताल लय और कलाकारों की बात। कलाकारों के प्रवास का स्थान स्वच्छ वं सुविधाजनक है। वह मंच एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में जीवंत चित्र प्रस्तुत कर रही थी।

इस समय मेरे अतिरिक्त ऐसी कला की कार्यशाला में कोई भी मौजूद नही था गॉव कस्बे के ऐसे कलाकार जिन्हें जन्मजात प्रतिभा सौगात में मिली है, निस्पृह भाव से कला में डूबे कलाकार के हौसले को देखकर ऐसा लग रहा था कि न जाने कितने बड़े दर्शक दीर्धा के लिए वे अपनी कला समर्पित कर रहे हैं।

लोकरंग केवल लोकनृत्य, गीत संगीत और नाटक का ही केन्द्र नहीं बल्कि ऐसा मंदिर है जहाँ साधना की लहरें निरंतर बहती है। योग और ध्यान यहां के कलाकारों की दैनिक दिनचर्या का एक अंग है। सांस्कृतिक क्रियाकलाप, कलाकारों की सहजता सरलता, अनुशासन उनकी संस्था के प्रति प्रतिबद्धता का पारंपरिक स्वरूप विखेरने न पाये इसके लिए नये कलाकारों के साथ श्री दीपक जी का आत्मिक एवं अनुशासनपूर्ण व्यवहार को मैने वहाँ देखा सभी नये पुराने कलाकार मिल–जुल कर कार्य कर रहे थे। दीपक जी एक कुशल नेतृत्वकर्ता हैं वहाँ मैने इस बात का अनुभव किया। प्रतिदिन 6 घंटे की मेहनत से अपने आपको परिमार्जित करते हैं। (छत्तीसगढी लोक सांस्कृतिक जीवन के स्पंदन)

चंदैनी गोंदा, सोनहा बिहान जैसी कालजयी सांस्कृतिक कृतियों का इतिहास सुनहले पन्नों में दर्ज है। मुझे वहाँ के भौतिक वातावरण, जमीन से जुड़े कलाकारों की निष्ठा, लगन कलाकारों के प्रवास के स्थान एवं कार्य प्रशिक्षण की कार्यशाला को देखकर हर्ष हुआ कि निःसंदेह छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति की सांस को ऊर्जावान बनाने में दीपक जी एवं उनके लोकरंग का स्थान निर्विवाद संस्कृति संस्थानों के विशेष रूप रस लोकरंग अर्जुन्दा का नाम गर्व से लिया जा सकता है।

वार्तालाप के दौरान श्री दीपक जैन ने यह भी बताया कि कुछ लोग कुछ दिन रहकर चले जाते हैं कुछ विवशता होती है किंतु अच्छे कलाकारों से समझाकर उन्हें उनकी कला के प्रति संवेदनशीलता एवं जागरूकता का पाठ पढ़ाकर वापस भी लाया गया है। एक संस्था को सोनहा विहान से मंचीय कलायात्रा की विधिवत शुरूवात करने वाले दीपक जी के लिए विषम परिस्थितियों के बीच ऐसे कला मंच को जीवंत रखना आसान कार्य नहीं है फिर भी लोकरंग की आन बान शान में कोई व्यावधान न आये, इसके लिए वे दृढ़ संकल्पित है।

सांस्कृतिक साधकों ने छत्तीसगढ़ कला जगत के लिए जो कुछ किया उसकी मिशाल नहीं। उनकी परंपरागत पतवारों को थामने और मजबूत बनाने का दायित्व लोकरंग ने उठाया है।

यहाँ के कलाकार लगातार रिहर्सल करते हैं यह परिसर वाद्ययंत्रों लोक कंठों की है की स्वरलहरियों एवं घंघरू की आवाज से गुंजायमान रहता है।

वास्तव में छत्तीसगढ़ का सर्वाधिक चर्चित एवं प्रसिद्ध लोकमंच है। जिसे श्री रामहृदय तिवारी जी का मार्गदर्शन मिलता रहा और इसकी प्रतिष्ठा एवं ख्याति में तिवारी जी के अभूतपूर्व योगदान को स्वंय दीपक चंद्राकर मानते हैं। वे बातचीत में में अपने कला गुरू के सम्मान तथा सन 1993 से निरंतर लोकरंग के स्वरूप व अस्तित्व की गमक, पल्लवित और पुष्पित बरगदीय स्वरूप में उनके अनूठे सहयोग की सराहना करते नहीं थकते। ग्रामीण युवा कलाकारों की सामूहिक कला साधना का सचमुच साध्य केन्द्र है। अनुशासन और मर्यादा कला की मांग है जो वहाँ के कलाकारों में कूट–कूट का भरी हुई है। छत्तीसगढ़ की कला के मूल स्वरूप का संरक्षण केन्द्र की अभिकल्पना लोकरंग परिसर में साकार होती है यह मुझे अनुभव हुआ। कला साधना का यह रंग और अधिक निखरता ही चला जाये यह मेरी कामना है। मैं दीपक जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की बात तो सुधिजन जानते हैं मैंने भी पूर्व में उनके कार्यो को किताबों के माध्यम से पढ़ा है किन्तु पहली बार साक्षात्कार के दौरान उन्हें नजदीक से जानने एवं समझने का मुझे अवसर मिला। उनके सपनों और कर्मो का आंगन जिसका मैने प्रत्यक्ष रूप से रसास्वाद किया है जिस कुछ अनुभव को बांट रही हूँ।

इस तरह स्पष्ट है कि बालोद जिले के सांस्कृतिक नगरी अर्जुन्दा ने छत्तीसगढ़ी लोक कलाओं के लोकपरंपरिक की स्वरूप आत्मा को आधुनिक उद्यम के सहारे अक्षुण्य रखा है। इसकी सुगंध से तृप्त पारखी जनमानस ने इसका आस्वादन कर देश दुनिया भर में उसकी ख्याति पताका फहराने में उनका अभूतपूर्व योगदान दिया हैं। यहाँ न केवल पात्र अपितु उनके संस्कार भी गढ़े जाते हैं प्रतिदिन योगा में मयदीपक जी एवं सीाी पात्र संलग्न रहते हैं एक कर्मशील, कर्मठ, कार्य अनुशासन, समर्पित एवं संवेदनशील व्यक्तिव के धनी दीपक जी से यही आशा है कि वे जिस

प्रकार से कलाकारों के साथ मैत्रीपूर्ण एवं आत्मीय व्यवहार से इस आंगन को समृद्धि प्रदान कर रहे हैं वैसा आगामी समय में भी होता रहे।

मैने वहाँ पुरानिक साहू, सत्कार पटेल, धेवर यादव देवेन्द्र रामटेके, सुनील साहू, निर्मला देवदास, लक्ष्मण साहू, राजू साहू, राजेश साहू सतीश साहू यशवंत ठाकुर, विजय पाटिल, प्रदीप साहू, कौशल यादव सामी, गोरे, भोला साहू, नेा मानिकपुरी, लक्ष्मी नान्हे, धनेश्वरी साहू, प्रीति विश्वकर्मा, रोशनी निषाद, संतोष देवांगन रवि देशमुख, रितेष देवांगन, निर्मला देशमुख, योगेश देशमुख, चम्मन देवदास, संतुराम देवांगन, किरण साहू, देवेयवरी देवदास, मनोज गंधर्व, दिलीप निषाद ुगल किशोर चोरे? भीखम साहू सनत सोनी, खेमलता भुवार्य तथा हेमलता केशरिया से साक्षात्कार किया तथा उस समय कार्यशाला के प्रशिक्षित कलाकार गोविंदा साहू, अजय साहू, दीपेश साहू, भनेश्वर साहू यादव, धमेश्वर साहू, दिलेश पटेल दिनेश वर्मा, सुमित यादव, लिखेश्वर दिल्लीवार, रूपेश साहू, योगेन्द्र साहू, दिलीप यादव सोनू साहू, छोटू साहू, राजेश निषाद, धनेश्वर साहू, राखी पटेल ज्योति पटेल, कीर्ति भुवार्य रानी निषाद, प्रीती निषाद खिलेश्वरी वर्मा, भूमिका किसान वर्षा देवदास, संजय वर्मा, सोहन मानकपुरी दिनेश यादवइ त्यादि भी मुलाकात हुई। अंचलों गांव के युवकों में जन्मजात प्रतिभा को चिन्हित कर उसे कला के सांचे में गढ़ने और मंच में उतारनें का एक संयम समर्पित एवं सल प्रयास एक निष्ठ कला का उपासक ही कर सकता है। समर्पित काम और लगन से परिवेष्ठित आंगन का नाम है लोकरंग।

छत्तीसगढ का जनजीवन अपने पारंपरिक कला रूपों के बीच ही साँस ले सकता है। समूचा अंचल एक ऐसा कलागत लयात्मक संसार है जहाँ जन्म से लेकर मरण तक जीवन की सारी हलचलें लय और ताल के धागे में गूंथी हुई है।

सभी कलाकार संतुष्ठ थे। मैं जब वहाँ पहुँची तब मध्यान्ह के भोजन का समय हो चुका था किंतु फोन से मेरी पहली ही बार दीपक जी से बात हुई कि वहाँ पहुँचने में मुझे थोड़ा समय लग रहा है उन्होने कार्यशाला जारी रखी तथा दीपक जी एवं सभी कलाकारों का व्यवहार भी अत्संत प्रभावकारी था। मैने भव्य मंच को देखा एवं कलाकारों के रहने का स्थान स्वच्छ एवं ग्रामसुलभ व्यवस्था से परिपूर्ण है।

QkVk xkQ

लोकरंग अर्जुन्दा कार्यशाला में लोकनाट्य का एक दृश्य

लोकरंग अर्जुन्दा के नवोदित कलाकार (जिला बालोद)

लोकरंग अर्जुन्दा में संरक्षक दीपक चन्द्रकार उनके संस्था के कलाकार के साथ मेरा छायाचित्र

लोकरंग अर्जुन्दा के नाचा पार्टी के कलाकार

लोकरंग अर्जुन्दा का रंगमंच मंच जहाँ अनेक लोकनाट्य अभिनित किये गये

लोकरंग अर्जुन्दा के नवोदित कलाकार (जिला बालोद)

छत्तीसगढ़ी लोकनृत्य गौरा (नवोदित कलाकार)

छत्तीसगढ़ी कलाकार समूह (नवोदित कलाकार)

छत्तीसगढ़ी लोककला महोत्सव, भिलाई, 2019

छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा का एक दृश्य

छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा का एक दृश्य

छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा का एक दृश्य, राजनांदगांव

भिलाई इस्पात संयंत्र के मुख्य कार्यपालन अधिकारी द्वारा लोककलाकारों का सम्मान

लोक महोत्सव में छत्तीसगढ़ी लोककला का एक दृश्य

छत्तीसगढ़ का पंथी नृत्य (नवोदित कलाकार)

लोक रंग अर्जुन्दा की लोकनाट्य कार्यशाला में मेरी सहभागिता

लोक महोत्सव, भिलाई में दूरस्थ क्षेत्रों के कलाकारों की सहभागिता (एक दृश्य)

lanHk xzFk

1. छत्तीसगढ़ कोश, डॉ. गीतेश अमरोहित, वैभव प्रकाशन, रायपुर
2. दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ. एन.सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
3. बस्तर प्रकृति व संस्कृति, रामकुमार बेहार, छत्तीसगढ शोध संस्थान, रायपुर
4. छत्तीसगढ लोकधर्मी पंडवानी, महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन, दुर्ग (छ.ग.)
5. धान के कटोरा, जीवन यदु, श्री प्रकाशन, दुर्ग (छ.ग.)
6. छत्तीसगढ दर्शन, हरप्रसाद निडर, श्री प्रकाशन, दुर्ग (छ.ग.)
7. कला परंपरा छत्तीसगढ के तीज त्यौहार, डॉ. डी.पी. देशमुख, वैभव प्रकाशन, रायपुर
8. छत्तीसगढ इतिहास, संस्कृति और परंपरा डॉ. तृषा शर्मा, वैभव प्रकाशन
9. छत्तीसगढ साहित्य दशा और दिशा, नन्दकिशोर तिवारी, वैभव प्रकाशन, रायपुर
10. छत्तीसगढ एक भौगोलिक अध्ययन, डॉ. विजय कुमार तिवारी
11. हिमलया, पब्लिशिंग नागपुर मुबई
12. छत्तीसगढ अतीत की अनुगूंज, वसंत वीर उपाध्याय, छत्तीसगढ हिंदी ग्रंथ अकादमी, रायपुर
13. छत्तीसगढ के रियासतों में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास
14. छत्तीसगढ गीत, जमुना प्रसाद कसार, श्री प्रकाशन दुर्ग
15. संदर्भ छत्तीसगढ, ललित सुरजन, जयसन अफसेट प्रा. लि., रायपुर
16. पद्मश्री, झांपी, जनुमानप्रसाद कसार, श्री प्रकाशन
17. देवार गीतों का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. निशार शुक्ला, ग्लोरियन पब्लिकेशन रायपुर
18. पंडवानी परम्परा और प्रयोग डॉ. पी.सी. लाल यादव, वैभव प्रकाशन 3
19. छत्तीसगढी लोक साहित्य का अध्ययन डॉ. शंकरदयाल शुक्ला, वैभव प्रकाशन

20. इप्टा, महत्व हबीब तनवीर, विनोद शंकर शुक्ल, हबीब तनवीर और उसके कलाकार, जनवरी 2003, रायपुर पृ.7
21. प्रसाद कमला, कलावार्ता, पृ. 1
22. शुक्ल, प्रयाग, रंग प्रसंग जुलाई–सितम्बर 2004, पृ.21
23. (स) प्रसाद, कमला कलावार्ता, अभिजीत कुमार मंडल, हबीब तनवीर के रंगमंचीय आयाम, अंक–103, भोपाल पृ. 150
24. (स) प्रसाद, कमला कलावार्ता, सुशील त्रिवेदी, मैने विदेश में अपने देश को पहचाना, जनवरी, भोपाल 1984, पृ. 7
25. – वही –, पृ. 7
26. प्रसाद कमला, कलावार्ता, पृ. 1
27. (स) प्रसाद, कमला कलावार्ता, सुशील त्रिवेदी, मैने विदेश में अपने देश को पहचाना, जनवरी, भोपाल 1984, पृ. 7
28. – वही –
29. (स) प्रसाद, कमला कलावार्ता, हबहीब तनवीर, ए लाइफ इन थियेटर, जनवरी, भोपाल अंक 103, पृ. 22
30. इप्टा, महत्व हबीब तनवीर, रायपुर. 13–18 जनवरी, 2003, पृ. 3
31. आठले, उषा वैरागकर, छत्तसीगढ़ लोकसाहित्य और रंगकर्म, पृ. 5
32. पलीवाल, रीतारानी, रंगमंच : नया परिदृश्य, पृ. 5
33. शुक्ल, प्रयाग, रंग प्रसंग, देवेन्द्र राज अंकुर, अनवरत रंग–यात्रा के पचास साल जनवरी–जून, 1999, नई दिल्ली, पृ. 116
34. शुक्ल, प्रयाग, रंग प्रसंग, जुलाईनसिंतम्बर, 2004, पृ. 24
35. जैन नेमिचंद, तीसरापाठ, पृ. 25–26
36. शर्मा, कुंजबिहारी, छत्तीयगढ़ हिंद रंगमंच, विनोद शुक्ल छत्तीसगढ़ में हिंदी रंगमंच की विकास यात्रा, रायपुर, पृ. 26–27
37. मिश्र, विश्वनाथ, भारतीय नाट्यशास्त्र और आज का रंगमंच, पृ. 318
38. अग्रवाल महावीर, छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य : नाचा, पृ. 111
39. प्रसाद, कमला, कलावार्ता, पृ. 3

40. शुक्ल, प्रयाग, रंग प्रसंग, अंक 4
41. रस्तोगी, गिरीश, रंगभाषा, पृ. 93
42. प्रतिभा, अग्रवाल, हबीब तनवीर एक रंग–व्यक्तित्व, पृ. 47
43. शुक्ल, प्रयाग, रंग प्रसंग, जनवरी–मार्च 2001, पृ. 121
44. छत्तीसगढ़ी लोकनाट्यों में शास्त्रीय तत्व, डॉ. शैलजा चंद्राकर (शोध ग्रंथ)

IMPACT FACTOR GIF 2.1468

शोध-संप्रेषण

शोध एवं अनुसंधान विकास केंद्र
रायपुर, छत्तीसगढ़

त्रैमासिक अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल
International Peer Reviewed Refereed Journal

शोध एवं अनुसंधान के लिए समर्पित अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल
International Research Journal for Research & Research Activities

ISSN 097- 6459

अंक : 29 वर्ष : 8 संख्या : 3 जुलाई-सितंबर, 2019

• समीक्षक एवं संपादक मंडल •

प्रमुख संरक्षक
डॉ. चित्तरंजन कर
पूर्व अध्यक्ष, साहित्य एवं भाषा
अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल
विश्वविद्यालय, रायपुर

संपादक
डॉ. राजेश दुबे
प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय महाविद्यालय,
कोहका-नेवरा (तिल्दा)
रायपुर, (छत्तीसगढ़)

प्रधान संपादक
डॉ. सुधीर शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कल्याण स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, भिलाईनगर
(छत्तीसगढ़)

संपादक : हिन्दी
डॉ. श्रीराम परिहार
खण्डवा

संपादक : शिक्षा संकाय
डॉ. तृषा शर्मा
सहा. प्राध्यापक (शिक्षा)

संपादक : विश्व एवं
अनुवाद साहित्य
डॉ. हेमराज सुंदर
महात्मा गांधी अध्ययन पीठ,
पोर्टलुईस, मॉरीशस

संपादक : अंग्रेजी
डॉ. प्रमोद शुक्ला
जगदलपुर (छत्तीसगढ़)

संपादक : कृषि
प्रो. मनहर आडिल
सेवानिवृत्त प्रोफेसर
इंदिरा गांधी कृषि
विश्वविद्यालय, रायपुर
(छत्तीसगढ़)

संपादक : समाजविज्ञान संकाय
डॉ. कृष्णवीर सिंह
प्राध्यापक
जयपुर, राजस्थान

संपादक : विज्ञान संकाय
डॉ. वी.के. गुप्ता
विभागाध्यक्ष (गणित)
शासकीय माधव विज्ञान
महाविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.)

संपादक : विधि
मुकेश कुमार मालवीय
सहायक प्राध्यापक
लॉ स्कूल, बनारस हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. शिप्रा बेनर्जी
प्राध्यापक (गृहविज्ञान)
शास.दू.ब. महिला महाविद्यालय,
रायपुर (छत्तीसगढ़)

सलाहकार मंडल

- डॉ. प्रमोद शर्मा (नागपुर)
- डॉ. मुन्ना पांडेय (गोरखपुर)
- डॉ. अरुण होता (कोलकाता)
- डॉ. सुशील कुमार शर्मा (आईज़ोल मिजोरम)
- डॉ. परविन्दर कौर (जम्मू)
- डॉ. आलोक शुक्ला (रायपुर)
- डॉ. रामनारायण पटेल (दिल्ली)
- डॉ. रवीन्द्र कात्यायन (मुंबई)

संपादकीय पता
वैभव प्रकाशन
सागर प्रिंटर्स के पास, अमीनपारा चौक,
पुरानी बस्ती, रायपुर (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : 0771-4038958, मो. 094253- 58748

मूल्य : एक प्रति : 100 रु.
आजीवन : 5000 रु. पांच वर्ष-2000
सदस्यता शुल्क : 1000 रु. (एक वर्ष)
आलेख संपर्क : 094253-58748
e-mail : shodhsampreshan36@gmail.com

ISSN 097- 6459

शोध-संप्रेषण

त्रैमासिक अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल

अंक : 29 वर्ष : 8 संख्या : 9 जुलाई-सितंबर, 2019

अनुक्रमणिका

1.	MIGRATION AND URBANIZATION IN SAHARSA CITY, BIHAR	Dr. Birendra Prasad Yadav	05
2.	प्रजातंत्र का आधार : पंचायती राज	डा.निशु सिन्हा एवं प्रोफेसर आभा आर पाल	09
3.	लतीफ घोंघी के व्यंग्य में शैलीय प्रभाव	डॉ. श्रद्धा हिरकाने, डॉ. सुधीर शर्मा श्रीमती मनोरमा चन्द्रा	13
4.	स्वतंत्रतापूर्व छत्तीसगढ़ी काव्य का विकास	डॉ. सुनीता शशिकांत तिवारी	17
5.	विस्थापन के बीच संस्कृति एवं विलुप्त होती जनबोलियाँ	डॉ. मेनका त्रिपाठी	20
6.	हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता और डॉ. मोहनदास नैमिशराय का रचनात्मक योगदान	डॉ कोमल सिंह शार्वा, डॉ. सुधीर शर्मा उत्तम कुमार बंजार	24
7.	मन्नू भंडारी के उपन्यासों में विविध विमर्श के स्वर	अर्चना गायतोण्डे	31
8.	लोक साहित्य में लोकोक्तियों की परंपरा (छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. (श्रीमती) प्रतिमा मिश्रा	36

ISSN 097- 6459

लोक साहित्य में लोकोक्तियों की परंपरा
(छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. (श्रीमती) प्रतिमा मिश्रा
प्राध्यापिका,
महिला महाविद्यालय, भिलाई

लोकोक्ति लोक साहित्य का सौंदर्यपूर्ण उपादान है। लोक जीवन द्वारा अर्जित वह पारंपरिक अनुभव सम्पदा जो लक्षणा अथवा व्यंजना के माध्यम से संतुलित शब्दों में अभिव्यक्ति पाती है और संबंधित कथ्य पर बल देकर उसे प्रमाणिक बनाती है यह किसी भी विषय पर उपलब्ध एक परीक्षित प्रतिक्रिया है।

मानव को अपनी जीवन यात्रा में कुछ ऐसी अनुकृतियाँ होती है जो शब्दों का सुंदर परिधान धारण कर लेती हैं और उसी रूप में लोगों के द्वारा स्वीकार्य हो जाती है। लोक मानस में यह कूट–कूट कर भरी है एवं युगों–युगों तक अपनी काल सीमा से दूर लोगों की जुबान पर चढ़ जाती है। ये चूँकि ये अनुभूत सत्य होते हैं इसलिए तर्क, विचार, भाव, विश्वास से संपन्न होते हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इन्हें ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र कहा है। छत्तीसगढ़ी लोकोक्तियाँ छत्तीसगढ़ के इतिहास को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

छत्तीसगढ़ के साहित्य लोकोक्तियों का अक्षय भंडार है। चाहे सावन की काली घटाएँ हो या लहलहाते धान के खेत की मेड़ हो, जेठ की तपती दुपहरी हो या कड़कती ठंड के ओस हो, तीज त्यौहार या मड़ई हो अथवा देवर भौजाई की ठिठोली हो। सामाजिक कार्यकलाप हो या राजनैतिक, आर्थिक सांस्कृतिक गतिविधि हो प्रत्येक अवसर के साथ लोकोक्तियाँ जुड़कर अपनी विशिष्टता सत्यता एवं भाषा में चमत्कार उत्पन्न करती रही है।

छत्तीसगढ़ के साहित्य लोकोक्तियों का अक्षय भंडार है। चाहे सावन की काली घटाएँ हो या लहलहाते धान के खेत की मेड़ हो, जेठ की तपती दुपहरी हो या कड़कती ठंड के ओस हो, तीज त्यौहार या मड़ई हो अथवा देवर भौजाई की ठिठोली हो। सामाजिक कार्यकलाप हो या राजनैतिक, आर्थिक सांस्कृतिक गतिविधि हो प्रत्येक अवसर के साथ लोकोक्तियाँ जुड़कर अपनी विशिष्टता सत्यता एवं भाषा में चमत्कार उत्पन्न करती रही है।

छत्तीसगढ़ी के मनुष्य समूह के आचार–विचार व्यवहार, जीवन दृष्टि, जीवन–जगत, श्रद्धा–भक्ति, इत्यादि से जुडत्री लोकोक्तियों को अनेक बिन्दुओं में विभाजित किया जा सकता है।

प्रकृति से संबंधित लोकोक्तियाँ

छत्तीसगढ़ हरे भरे वनांचल क्षेत्र नदी पहाड़ी से समृद्ध है। आकाश, बादल, वर्षा, पानी, पेड़–पौधे जंगल से संबंधित अनुभव लोकोक्तियों में व्यक्त है। बादल से संबंधित लोकोक्ति का एक उदाहरण है :–

'जौन गरजा थे तौन बरसे नहिं
(जो बादल गरजता है बरसता नहीं)।

आकाश से संबंधित लोकोक्तियाँ

'अपन मरे बिना सरग नई दिखय'
(अपना काम स्वयं करने से ही पूर्ण होता है)।
'सरग देखके गगरी फोरत है'
(अनिश्चित भविष्य की आशा में वर्तमान को बिगड़ना)।

वर्षा से संबंधित

'संझा के झरी बिहिनिया के झगरा'
(शाम से शुरू होने वाली वर्षा रात भर होती है तथा सुबह का झगड़ा दिन भर चलता है)।

पानी से संबंधित

'पानी पिए छान के गुरू बनाये ज्ञान कै'
(बीमारी से बचाव के लिए छानकर पानी पीना चाहिए एवं कुछ सीखने के लिए श्रेष्ठ गुरू का चयन करना चाहिए)।

नदी से संबंधित

'गंगा नहाय ले गदहा कपिला नइ बनै'
(अर्थात मंदबुद्धि वाला व्यक्ति बुद्धिमान नहीं बन सकता)।
'पहाड़ के गिरे पथरा के घाव'
(किसी व्यक्ति पर एक साथ दो–दो मुसीबतें आना)।
"पहार पर दुरिहा ले सुघ्घर दिखथे'
(पहाड़ दूर से सुंदर लगते हैं अर्थात कोई भी कार्य दूर से सरल लगते है किन्तु करने पर जटिलता का बोध होता है)।
'रन मां बाम्हन बन मां पीपर'
(युद्ध भूमि में ब्राम्हण तथा जंगल में पीपल अर्थात युद्ध भूमि मैं पीपल अर्थात पूज्य मानने के कारण युद्ध में ब्राम्हाण एवं जंगल काटते समय पीपल को छोड़ा जाता है)।
'एक जंगल मां दू ठिन बाघ नई रहैं'
(एक जंगल में दो बाघ नहीं रहते अर्थात् एक स्थान पर दो शक्तिशाली नहीं रह सकते)।

कृषि से संबंधित लोकोक्तियाँ

कृषि प्रधान देश में कृषि से संबंधित लोकोक्तियाँ की भरमार है। अपने अनुभूत सत्य को कृषि से संबंधित कार्यो के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है जैसे –

'कुल बिहावै कन्हार जौतै'
(अच्छे कुल में विवाह एवं खेती कन्हार जमीन में करना चाहिए)।
'डार के चूके बेंदरा अऊ असाढ़ के चूकै'
(डाल से चूकने वाले बंदर और किसान असाढ़ से चूकने वाले किसान का संभलना मुश्किल होता है)।
'खातू पराय ते खेती, नई त नदिया के रेती'
(खाद के बिना खेत नदी के रेतीले मैदान सा अनुपयोगी होता है)।
'धान पान अउ खीरा ये तीनों पानी के कीरा'
(धान–पान और खीरा के पैदावार के लिए पर्याप्त पानी की आवष्यकता होती है)।

इस प्रकार एक कृषक कृषि उपकरण खेतिहार पशु फसल के माध्यम से कृषक जीवन की अंतरंग गतिविधियों के अनुशीलन की नई दिशाओं की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

विश्वास अंधविश्वास नीति संबंधी लोकोक्तियाँ

'ईश्वर आत्मा माया धर्म–कर्म भाग्य नीति उपदेश अंधविश्वास संबंधी अनुभूत सत्य इस प्रकार की लोकोक्तियों में समाहित है–

'काम ले करम दान ले धरम'
(काम करने से भाग्योदय होता है दान से पुण्य मिलता है)।
'मिरचा नून आगी, डीठ उतर के भागी'
(मिर्च और नमक को आग में घुमाकर डालने से नजर उतर जाती है)।
'गुरू गोसाइयाँ एकेच आय'
(गुरू और भगवान एक ही है)।
'रूपया ल रूपया कमाथे'
(रूपया पैसा वाला ही और अधिक धनाड्य हो सकता है)।
'जेखर लाठी तेखर भंइस'
(शक्तिशाली का सब प्राप्त होता है)।

शारीरिक अंगों से संबंधित लोकोक्तियाँ

शरीर के विभिन्न अंगों के साथ–साथ अंग–भंग वाले शरीर से संबंधित लोकोक्तियाँ भी है यथा–

'मूड के भौंव कपार'

(सिर का ही दूसरा नाम कपाल है), अर्थात एक ही बात का अस्तित्व।

'अंधरा में कनवा राजा'

(मूर्खो के बीच कम ज्ञान वाले का बोलबाला)।

गृह से संबंधित लोकोक्तियाँ

छत्तीसगढ़ी रहन–सहन, रीति–रिवाज, खान–पान भोजन इत्यादि की जानकारी गृह संबंधी लोकोक्तियों से प्राप्त होती है यहाँ रसोई के पात्र द्वारा कहा जा रहा है –

'रठिया न लोटिया, भोकट के गौरिया'

(अर्थात निर्धन होकर भी संपन्न कहलाना)।

'आपन कारन मालिया जिमावें खीर'

(अर्थात् अपने कार्य सिद्धि के लिए व्यक्ति निम्नकोटि के व्यक्ति की भी खुशामद करता है)।

शिक्षा संबंधी लोकोक्तियाँ

भिन्न–भिन्न स्वभाव, व्यवहार एवं मनोवृत्तियाँ वाले मानव समाज के लिए

शिक्षा के रूप में अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं यथा –

'छोट कुन कहिनी सरी रात उसनिंदा'

(साधारण काम के लिए बहुत अधिक परेशान होना)।

'दुरिहा के ढ़ोल सुहावन'

(दूर से चीजे अच्छी लगती है)।

सामाजिक मान्यताओं से संबंधी लोकोक्तियाँ

रिश्ते–नाते–विवाह, अतिथि इत्यादि मान्यताओं से संबंधित लोकोक्तियाँ भी प्रचलित हैं यथा–

'नाच न आये मड़वा टेड़गा'

(अपने दोश को छुपाने के लिए किसी कार्य से संबंधित वस्तु में दोश बताना)।

'घर कथे बनाके देख, बिहाब कथे करके देख'

(घर बनाना एवं विवाह करना आर्थिक रूप से खर्चीले कार्य है)।

पशु–पक्षी एवं कीड़े–मकोड़े से संबंधी लोकोक्तियाँ

प्राणी जगत में पशु–पक्षी एवं कीड़े–मकोड़े का अस्तित्व मानव जीवन से परे नहीं है उनके गुण–दोष एवं विशेषताओं को लोकोक्तियों के द्वारा व्यक्त किया गया है–

'सॉप के काटे सोवै, बीछी काटे रोवे'

(सॉप के काटने पर नींद आती है बिच्छू के काटने पर दर्द होता है)।

'पूस बरी कीरा परी'

(पूस महीने में बड़ी बनाने से कीड़ा लगता है)।

अन्य लोकोक्तियाँ

'मघा के बरसे अउ दाई के परसे'

(मघा नक्षत्र की वर्षा एवं माता के परोसने की तृप्ति अलग है)।

'जेठ चले पुखाई तव सावन धुर्रा उड़ाई'

(यदि ज्येष्ठ माह में पूर्व की हवा चलती है तब सावन माह में वर्षा की संभावना रहती)।

'तन बर नई ए लता जाय बर कलकत्ता'

(साम्थ्र्य से बढ़कर दिखावे के लिए कार्य करना)।

'कहाँ राजा भोज कहाँ भोजवा तेली'

(राजा एवं सामान्य व्यक्ति में क्या समानता करना)।

वास्तव में लोक साहित्य में लोकोक्ति एक चमत्कार, रंजन, वाकजाल, समस्या और समाधान इत्यदि को इंगित करता है, इनमें छत्तीसगढ़ की माटी की सुगंध भी है और यह संस्कृति की धरोहर भी है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. छत्तीसगढ़ विकास पथ की ओर, एन.डी.आर. चन्द्रा, भूपेन्द्र पटेल, नई दिल्ली, 2003.
2. बस्तर की लोकोक्तियाँ, लाला जगदलपुरी हिंदी ग्रंथ अकादमी रायपुर
3. छत्तीसगढ़ लोक साहित्य, अर्थ और व्याप्ति, डॉ. अनुसूया अग्रवाल, शताक्षी प्रकाशन रायपुर
4. लेक संस्कृति और इतिहास, बद्री नारायण, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
5. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य और रंगकर्म, डॉ. उषा वैरागकर आठले, श्रीप्रकाशन, दुर्ग, 2006

■■